अगले पाँच साल

(नवभारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक घटनाओं का क्रांतिकारी चित्रण)

लेखक
आचार्य जी० एस० पथिक

प्रस्तावना-लेखक
वेंकटेशनारायण तिवारी
सदस्य भारतीय संसद्

१९५२
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६
मूल्य ५)

प्रकाशक :
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. अंग्रेज जब आए.
२. भारत में राष्ट्रीय शिक्षा.
३. स्वराज्य की माँग.
४. हमारी स्वतंत्रता और समाज-सुधार.
५. बारदोली का सत्याग्रह.
६. सुभाषचन्द्र बोस का नेतृत्व.
७. सुलगता काश्मीर.
८. अंग्रेज जादूगर.
९. लोकतंत्र शासन-व्यवस्था.
१०. कांग्रेस के पचास वर्ष.
११. आज का भारत.

मुद्रक :
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
१० दरियागंज, दिल्ली

अपने अनुज

प्रो० रमाशङ्कर शुक्ल 'हृदय'

की स्मृति में

भारत, जो राष्ट्रों में वस्तुतः शूली पर चढ़ा, इस मृत्यु-पाश से अब अपने नव-उत्थान के प्रभात में फिर से उठ खड़ा हुआ है,—वह अमर, गौरवशाली और सदा तरुण रहने वाला है और वह दिन दूर नहीं जब स्वाभिमानी और स्वावलम्बी, शक्तिशाली और स्वतंत्र, एशिया का दीप्तिमान तेज और संसार का मंगल-प्रदाता, अमर संदेश-वाहक भारत तुरन्त ही प्रकट होगा।

—देवी एनी बिसेंट

(अतीत की भविष्यवाणी चरितार्थ रूप में)

—लोकतन्त्र और एकाधिकार-सत्ता के राज्यों में अंतर नेताओं के अभाव का नहीं है, बल्कि लोकतन्त्र की उस शक्ति का है, जो अपने नेताओं को, बिना हत्या खूंरेज़ी के, बदल देती है। राज्य-शासन को शान्तिमय तरीकों से परिवर्तित करने की शक्ति ही लोकतन्त्र का प्रधान रूप है।

—बेवरिज

—लोकतन्त्र का अर्थ यह नहीं है कि 'मैं उतना अच्छा हूँ, जितने तुम हो, बल्कि तुम उतने अच्छे हो, जितना मैं हूं।'

—थियोडोर पार्कर

—साम्यवाद ग्रहण करने वाले देश का प्रधान लक्ष्य, अपने यहाँ सोवियट एकाधिकार—डिक्टेटरशिप स्थापित करने का होता है। वे इसके लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। साम्यवादी नेता हर एक देश में कम्युनिज़्म के विस्तार के लिए अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम का एक अंश भी बिना परित्याग किये उसे नए रूप में प्रकट करते हैं—

'स्थायी शांति के लिए, जनता के लोकतन्त्र के लिए।'

—वाल्टर कोलरज

प्रस्तावना

श्री जी० एस० पथिक ने 'अगले पाँच साल' नामक अपनी पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का अवसर देकर मुझे सम्मानित किया, इसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ, क्योंकि मेरी निश्चित सम्मति में श्री पथिक जी की किसी रचना के लिए किसी दूसरे से प्रस्तावना लिखवाने की आवश्यकता नहीं है। नए लेखक के सम्बन्ध में भले ही ऐसा करना अनुचित न समझा जाय परन्तु पथिक जी तो उन साहित्यकारों में हैं जिन्होंने कई दशकों तक हिन्दी की सेवा की है। वह इस देश के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार हैं। 'अगले पाँच साल' के पहले उनकी मँजी हुई लेखनी से हिन्दी में कम-से-कम ग्यारह राजनीतिक ग्रंथ निकल चुके हैं। उनके देखने से ही पाठक को अनुमान हो सकता है कि पथिक जी की दृष्टि कितनी व्यापक, विस्तृत और समतुलित है। जैसी अनेक विषयों में उनकी गाढ़ी अभिरुचि है, उतनी ही मँजी हुई उनकी लेखनी है। उन अनेक विषयों के विवेचन की जो बात पथिक जी को कहनी है, उसे वह इतनी सरल और सुबोध भाषा में कह सकने की सामर्थ्य रखते हैं कि पाठक को अप्रयास उसे समझने और हृदयंगम करने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती है। पथिक जी का ज्ञान महज़ किताबी नहीं है, जीवन के क्षेत्रों में सक्रिय काम करने के कारण उन्हें जो अनुभव हुए हैं, उनकी बदौलत उनका किताबी ज्ञान निखर गया है। इसलिए मुझे पूर्ण आशा है कि पथिक जी की इस नई रचना से हिन्दी-भाषी पाठक भरपूर लाभ उठायँगे।

पुस्तक जितनी आवश्यक है, उतना ही अधिक उसका महत्त्व है। 'आवश्यक' को मैंने इसलिए कहा, क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि भारत के भाग्य का बहुत-कुछ अंश में निपटारा अगले पाँच साल करेंगे। अतएव प्रत्येक भारतवासी का यह धर्म है कि बड़े ध्यानपूर्वक वह उन समस्याओं

को जानने और समझने की चेष्टा करे, जिनका सामना उसे अगले पाँच सालों में करना पड़ेगा। यदि इन समस्याओं को जानने और समझने की हमने चेष्टा न की, तो हमें अपनी इस भूल का भयंकर परिणाम भोगना पड़ेगा। देश का उत्थान या पतन देशवासियों की कार्य-कुशलता पर अवलम्बित है, और कार्य की कुशलता तभी सम्भव है, जब समस्या के रूप और उसके हल करने के साधनों का विवेचन हम ठीक-ठीक कर सकें। पथिक जी ने इन्हीं समस्याओं की ओर हम सबका ध्यान आकर्षित किया है।

ये समस्याएँ क्या हैं, इस प्रश्न का उत्तर जहाँ पथिक जी की पुस्तक में आपको मिलेगा वहाँ उनके हल करने के साधनों का विवेचन पथिक जी ने अपनी इस पुस्तक में दे दिया है। यह संभव है कि उनके सब विचारों से मैं या आप सहमत न हों, पर पथिक जी स्वयमेव यह पसंद न करेंगे कि उनका पाठक स्वाधीनचेता न हो। इस पुस्तक का महत्त्व इसमें है कि यह हमें अपने देश की समस्याओं पर विचार करने के लिए विवश कर देती है। जो लेखक अपनी कृति के द्वारा किसी विषय-विशेष की ओर अपने पाठक में अभिरुचि उत्पन्न कर दे वही सफल कृति है, इस अर्थ में पथिक जी की यह रचना महत्त्वपूर्ण है और मैं इसी दृष्टि से इसका हृदय से स्वागत करता हूँ।

नई दिल्ली,
२३/११/५२

वेंकटेशनारायण तिवारी
सादस्य भारतीय संसद्

विषय-सूची

अगले पाँच साल

१

आग की लपटों में

हिन्दुस्थान में अंग्रेजी राज्य उस आदमी के समान था जो हाथी की पीठ पर तो चढ़ गया, किन्तु यह नहीं जानता था कि नीचे किस तरह से उतरे। अंग्रेजों के लिए हिन्दुस्थान एक ऐसा रत्न था कि जिसके बल पर यह गौरव-पूर्वक कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता। मगर सबके दिन एक-से नहीं रहते। दैवयोग से सन् १९४७ एक ऐसा वर्ष आया, जब कि भारत की राष्ट्रीयता ने इस देश से अंग्रेजों के पैर उखाड़ दिए। उन्हें विवश होकर यहाँ से भागना पड़ा। वे लाचार थे, क्योंकि दूसरा और कोई उपाय नहीं था।

अंग्रेजों ने हिन्दुस्थान को ऐसी निर्बल अवस्था में छोड़ा कि जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता। उन्होंने चारों ओर से जलती हुई ज्वालामुखियाँ खड़ी कर दीं। इन नाजुक परिस्थितियों के उत्पन्न करने में उनका यह इरादा था कि यह देश कभी संगठित रूप में अपने पैरों पर खड़ा न हो सके, और उस अवस्था में उन्हें अधिक मजबूती से इस देश में लौटना पड़े। उनकी यह कूटनीति सदा से रही कि जिस देश को उन्होंने आज़ादी दी, उसका उन्होंने बाँट-बखेर किया। इस अंग-विच्छेद के द्वारा उन्होंने अपनी सत्ता किसी-न-किसी रूप में कायम रखी। हमने देखा कि अमेरिका, मिश्र, आयरलैंड और फिलस्तीन को स्वतन्त्रता प्रदान करते समय उन्होंने दो पार्टियाँ खड़ी करके उन देशों का अंग-विच्छेद किया। अमेरिका को स्वतन्त्र करने पर कनाडा को ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बनाया, मिस्र की

स्वतन्त्रता घोषित करते समय उससे सूडान पृथक् किया, और आयरलैंड को स्वतन्त्रता प्रदान करने पर उसके भी दो टुकड़े किये जिससे कि अलस्टर ब्रिटिश पक्ष का एक अलग देश बन गया। अंग्रेजों के हटने के पूर्व फिलस्तीन का भी वक्षस्थल चीरा गया।

मगर अंग्रेजों ने हिन्दुस्थान का केवल दो टुकड़ों में—विभाजन ही नहीं किया, बल्कि उसके परिणामस्वरूप इस देश में आग लगाने वाली कई विकट समस्याएँ उत्पन्न कीं। पाकिस्तान का निर्माण होगा, इसकी आशा स्वयं जिन्ना तक को नहीं थी। उनका दाँव-पेच तो हिन्दुस्थान की समूची राजनीति में मुसलमानों के लिए विशिष्ट अधिकार प्राप्त करना था। मगर लार्ड माउंटबेटन ने अंग्रेजों के हित के लिए मिस्टर जिन्ना के कान में क्या कहा और पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कान में क्या कहा, इसका किसी को कोई पता नहीं। जो लोग अपना स्वार्थ साधते हैं, वे हर एक के सामने ऐसी तसबीर प्रस्तुत करते हैं, जिससे कि उनका हित प्रकट होता हो और अंग्रेज उनके लिए ही हर तरह से कुर्बान हो रहे हों। मुसलमानों को भले ही लूला-लँगड़ा पाकिस्तान मिला हो, किन्तु जो हिस्सा मिला, वह पैदावार की दृष्टि से सम्पन्न है। परन्तु हिन्दुस्थान के हाथ से एक वह हिस्सा छिन गया, जो सारे देश के लिए अनाज की खदान था, और दूसरे वे दो हिस्से भी निकल गए, जिनके उत्पादन से हिन्दुस्थान के कल-कारखाने चलते थे। अंग्रेजों की इस करतूत से उनके पैर हटाते ही संकट के पहाड़ खड़े हो गए कि खाने को अनाज कहाँ से आए, कपड़ा तैयार करने के लिए रुई कहाँ से प्राप्त की जाय, और पूर्वीय बंगाल के जिस पाट की रफतनी से हिन्दुस्थान करोड़ों रुपए विदेशों से प्राप्त करता था, वह पाट कहाँ से आए ? नतीजा यह हुआ कि उनके हटते ही लोगों को खाने और पहनने के लाले पड़ गए। इस देश के लोगों को, जो दो सौ वर्षों से गुलामी के पिंजरे में बन्द थे, स्वतन्त्रता का कोई अनुभव नहीं हुआ। उनकी अवस्था उस पक्षी से भी गई-बीती हो गई, जो राजमहल में सोने के पिंजरे में बन्द रहने और मेवा आदि मधुर फल खाने पर भी सदा यह कामना करता है कि कब वह वन में जाय, और

वृक्षों के कच्चे-पक्के फल खाकर नदी का पानी पिये। मगर इस देश के लोग दासता में इतने बँध गए कि वे फिर पिंजरे में जाना अपने लिए बेहतर मानते हैं। उन्होंने इस भूखी स्वतन्त्रता की भर्त्सना करके अंग्रेजों के शासन को अपने लिए वरदान प्रकट किया। अलबत्ता इस तरह के लोगों ने यह नहीं सोचा कि जिन अंग्रेजों की वे इतनी तारीफ करते हैं वे ही इस देश में अन्न और कपड़े का अकाल पैदा कर गए हैं।

यह आग उन ज्वालामुखियों में विस्फोट करती है, जिन्हें अंग्रेज चारों ओर से खड़ी कर गए।

अंग्रेज हिन्दुस्थान की हालत उस दुशाले की तरह करके गए, जिसमें कई सौ छेद थे। उन्होंने क्या किया; हिन्दुस्थान की कई सौ रियासतों को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता के साथ सभी रियासतें स्वतन्त्र घोषित की जाती हैं। उनका अब ब्रिटिश साम्राज्य से कोई संबंध नहीं है। उनके साथ की सब संधियाँ खत्म हुईं। अंग्रेजों ने उन्हें आजाद छोड़ दिया कि वे चाहे जैसे विचरें। उनकी इच्छा हो तो हिन्दुस्थान में मिलें, या पाकिस्तान में अथवा स्वतन्त्र रहें। देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के बीच में नरमेध शुरू हो गया था। फिर रियासतों का प्रश्न इतना विकट था कि यदि समय रहते न सम्हाला जाता, तो सारे देश में अराजकता फैल जाती, देश छोटे-बड़े टुकड़ों में बँट जाता। अंग्रेज यह देखना चाहते थे कि हमारी स्वतन्त्रता कितने दिनों का तमाशा है। इस बीच में कुछ नरेशों ने अपने स्वतन्त्र संघ बनाने की ओर भी कदम बढ़ाया। मगर उस लौह-पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने जिस कौशल से राजाओं के हाथ से राज-सत्ता छीनी, उसने अंग्रेजों के मुँह पर कड़ा थप्पड़ मारा। भारत के इस चाणक्य के आगे ब्रिटिश कूटनीति को पैरों तले रौंदना पड़ा। सब राजों-महाराजों के मुकुट खिसक पड़े, और अधिक विनाश से बचने के लिए उन्होंने अपने लिए यह श्रेयस्कर समझा कि वे अपनी रियासतें सौंप दें। कुछ ऐसी रियासतें थीं, जो पाकिस्तान और अंग्रेजों के बहकाने में रहीं। हैदराबाद,

जूनागढ़ और भूपाल में बगावतें पैदा की गईं। जूनागढ़ के लोकमत ने पाकिस्तान को बता दिया कि हवा का रुख किस ओर है, और योगोपियनों के संकेतों पर चलने वाले हैदराबाद के फोड़े को सरदार पटेल ने उस समय चीरा, जब कि वह सड़ गया था। इन परिस्थितियों से भूपाल के नवाब भी ढीले पड़ गए।

ये पिछले चार वर्ष इतने नाजुक थे कि जरा सी असावधानी से ही स्वतंत्रता छिन सकती थी। इन सब रियासतों के साथ काश्मीर का प्रश्न भी हल हो जाता। पर लार्ड माउण्टबेटन के इशारे से उसका मामला राष्ट्संघ में पेश किया गया। फलतः अंग्रेज और अमेरिकनों के स्वार्थों ने उसे विकट भूचाल के रूप में खड़ा कर दिया। यह एक ऐसी समस्या है कि जिससे शांति और व्यवस्था को खतरा पहुँच सकता है। काश्मीर की रक्षा के लिए भारत का धन, जन और सम्पत्ति सब-कुछ बेशुमार लगी हुई है। इसके निपटारे के लिए दोनों ओर से संघर्ष-जैसी स्थिति है। यदि कदाचित् युद्ध हुआ तो सारे हिन्दुस्थान में उसकी लपटें फैल जायँगी।

मगर हिन्दुस्थान आज एक ही खतरे के बीच नहीं है। अंग्रेजों के समय हिन्दुस्थान की रक्षा-सीमा केवल सीमा-प्रांत का इलाका था। मगर आज तो राजस्थान से लेकर पूर्वी पंजाब, तिब्बत और नेपाल की सीमाएँ, चीन और ब्रह्म देश तथा पूर्वी पाकिस्तान की सीमाएँ—इतना लंबा क्षेत्र है कि, सब ओर से देश को हर समय युद्ध का खतरा है। तिब्बत में कम्युनिस्ट चीन ने पैर जमा लिए हैं और वह हिमालय में वहाँ तक बढ़ना चाहता है, जहाँ हिन्दुओं का बद्रीनाथ का मंदिर है। काश्मीर का लद्दाख तिब्बत में शामिल होने के लिए उत्सुक है, नेपाल का एक वर्ग, जो हिन्दुस्थान की रक्षा का प्रहरी है, कम्यु-निज्म की ओर बढ़ रहा है। अतएव हिन्दुस्थान के मस्तक का यह देश अशांति-पूर्ण अवस्था में है। बीच-बीच में विद्रोह की लपटें उठती हैं। आसाम की सीमा पर बाहरी आक्रमणों का खतरा हर समय खड़ा है। ब्रह्म देश की सर-कार अपने यहां कम्युनिज्म को दबाने में असफल रही,तो वहाँ के साम्यवादी भारत की सीमाओं पर कब शांति से बैठेंगे। वे तो अवसर की प्रतीक्षा में हैं।

फिर भी यदि कदाचित् चीन पर आक्रमण हुआ तो पूर्व में युद्ध के बादल उमड़ने पर भारत उससे बच न सकेगा। भारत के लिए चीन की मित्रता बड़ी मूल्यवान है। इसलिए चीन के युद्ध में पड़ने पर भारत को भी शामिल होना पड़ेगा। इधर काश्मीर के मसले के लिए पाकिस्तान मुस्लिम देशों का सहयोग प्राप्त करने की ओर बढ़ रहा है। यद्यपि यह कहा जाता है कि मुस्लिम देश इस मामले में निरपेक्ष हैं। मगर यह कहाँ तक ठीक है, यह कहा नहीं जा सकता। मुस्लिम रियासतों की आपस में तनातनी हो, किन्तु गैर-मुस्लिम देश के सामने वे सब एक कतार में खड़ी हो जाती हैं। चीन, सुदूरपूर्व और मध्य-पूर्व के देशों में जो बगावतें हो रही हैं, उथल-पुथल हो रही हैं, कहना न होगा कि उस आग के बीच में हिन्दुस्थान खड़ा है।

माना कि हिन्दुस्थान की सेना सुदृढ़ है, जबर्दस्त है, किंतु यदि उसकी आंतरिक अवस्था मजबूत नहीं हुई तो यह देश दबी हुई बारूद पर खड़ा हुआ कहा जायगा। देश में शक्तिशाली शासन-व्यवस्था होनी चाहिए, जो प्रति-क्रियावादी शक्तियों को दबा सके, अन्यथा हमने देखा कि मिस्र के शासन में कितनी तेजी से उलट-फेर हुए। इस समय देश में जहाँ भूख का सवाल इतना जबर्दस्त है कि जिसका हल न होने पर ही चीन में राज्य-क्रांति हुई, वहाँ हम बाहर के अनाज से कब तक देश में विद्रोह की आग को दबा सकेंगे? इसके लिए आर्थिक क्रान्ति द्वारा नए समाज की रचना अपेक्षित है। दक्षिण भारत में कम्युनिज्म का प्रसार, और तोड़-फोड़ तथा बंगाल आदि में उनकी बमबाजियाँ अशांति की प्रतीक हैं। इसके सिवा नये राज्य-निर्माण करने की कल्पनाएं ऐसी चीजें हैं, जो देश की एकता को समाप्त कर देंगी और पुराने इतिहास की पुनरावृत्ति करेंगी। पंजाब में सिख नये राज्य की माँग करते हैं, यदि इस भावना से कोई सूबा भारत की सीमा पर बना, तो सोचिए कि उसका क्या परिणाम होगा? यदि दक्षिण में नये-नये प्रान्तों की रचना के सिवा कम्युनिस्टों ने कदाचित् कोई स्वतंत्र राज्य कायम किया तो उससे सारे देश में अशांति फैल सकती है। इधर राजे-महाराजे फिर अपनी सत्ता कायम करने की उधेड़-बुन में जब-तब उमड़ पड़ते हैं। राजस्थान के प्रति-

क्रियावादी राजे-महाराजे और जागीरदार पाकिस्तान तथा विदेशियों से मिलकर आगे बढ़ने में आज भी पीछे नहीं हैं। उनके काम अन्दर-ही-अन्दर आग सुलगा रहे हैं।

इन शोलों और अंगारों के बीच में से हम आज भी गुजर रहे हैं। वस्तुतः हमारी यात्रा का अब आरंभ हुआ है। सदियों की दासता ने हमारे जीवन का रस सोख लिया है और स्वतन्त्रता के उपरान्त जो वस्तु हमारे हाथ आई, वह हिंदुस्थान का कंकाल-मात्र है। इस कंकाल को नए रक्त और मांस से युक्त करके उसमें यौवन की रूह फूँकने की जिम्मेदारी आज के समाज पर है। समस्याएँ अनेक हैं और प्रायः उनमें से प्रत्येक ऐसी है, जिसका हल रातों-रात हो जाना चाहिए। यह अहंकार व्यर्थ है कि कोई एक दल तथा वर्ग इस काम को अंत तक पूरा कर सकता है।

हमें आगे बढ़ने पर इस बात का ध्यान रखना है कि जिस हिंदुस्थान को हमने स्वतंत्र किया है, उसे हम किस रूप का निर्माण करने वाले हैं। क्या यह बुद्ध, अशोक, गांधी और जवाहरलाल का हिन्दुस्थान होगा अथवा उन लोगों का होगा जो बुद्ध, अशोक, गांधी और जवाहरलाल की परम्परा में विश्वास नहीं करते। प्रत्येक देशवासी को यह समस्या हल करनी है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने तईं लूथर के समान यह कहे—'यहाँ मैं खड़ा हूँ, मैं इसके विपरीत नहीं चल सकता।'

२
इस लाश को उतार फेंको

जब टर्की आजाद हुआ, तब उसके उद्धारक वीर कमालपाशा ने उसकी काया ही पलट दी। वे यह जानते थे कि उसके चोगे में पैबंद लगाने से उनका देश संसार के समुन्नत देशों के समकक्ष खड़ा न हो सकेगा। इसलिए उन्होंने उसे उतार फेंका। उन-जैसे निर्भीक और साहसी राजनीतिज्ञ का यह कार्य था कि एक कट्टर मुस्लिम देश में राज्य-शासन को धर्म से मुक्त किया ? अपने देश से खिलाफत का हटाना उनका बड़ा निर्भीकतापूर्ण कार्य था। उन्होंने उस तूफान को सहकर अपने देश को उससे भी आगे बढ़ाया। उन्होंने देश में प्रचलित अनेक अंध-विश्वासों और जराजीर्ण रूढ़ियों को नष्ट करके राष्ट्र में नवीन क्रांति उत्पन्न की। उनके आदेश से महिलाओं का बुर्का हटा, भाषा का रूप बदला, वेश-भूषा में परिवर्तन हुआ और अन्य राष्ट्रों के नए रीति-रिवाज कायम हुए। खिलाफत के विनाश के उपरांत ये परिवर्तन धर्म-ध्वजियों के लिए जले घाव में नमक छिड़कने के समान थे। इसका नतीजा यह हुआ कि टर्की इतना बलशाली बन गया कि कोई उसकी ओर आँख नहीं उठा सका। वह मुस्लिम देशों में तो अग्रणी हुआ ही, किंतु योरप के किसी देश से पीछे नहीं रहा।

संसार सोचता था कि चीन वर्षों के युद्ध के उपरांत खड़ा न हो सकेगा। मगर आज उसने संसार को आश्चर्य में डाल दिया। युद्ध से बाहर निकलते ही, उसके नेतृवृंद ने राष्ट्र की ऐसी कौन सी समस्या है, जिसका हल नहीं किया। उन्होंने आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से चीन राष्ट्र का नवीन संगठन किया। वहाँ के किसान और मजदूर जमीन और कल-कारखानों के मालिक बने।

इतनी तेजी से नये चीन के विधायक माओ ने अपने समूचे राष्ट्र को इतना समुन्नत बनाया कि उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि कल वह युद्ध में पड़ा था। द्वितीय महायुद्ध से झुलसे हुए योरप के अनेक देश आज भी उठ नहीं सके, किन्तु चीन अपने बल पर स्वावलम्बी हुआ और आज वह अपने पैरों पर खड़ा है। वह संसार की शक्तियों से आज भी युद्ध में मोर्चा ले रहा है। उसकी महान् सफलता का कारण यह है कि उसने पुराने सड़े-गले आवरण को एक-बारगी बदल दिया। समस्त चीनियों को एक समान दर्जे पर खड़ा किया गया। आर्थिक भेद-भाव के सभी तत्त्व मिटा दिए गए। विदेशियों की पूँजी, उद्योग और व्यापार पर राष्ट्र का अधिकार हुआ। और उनके स्वामियों को पासपोर्ट दे दिया गया कि वे अपने देश में जायँ और भविष्य में किसी देश को न लूटें-खसोटें। इसी प्रकार वहाँ के नेताओं ने अपने देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को भी खत्म कर दिया और बिना किसी मुआवजे के चीनी पूँजीपतियों और उद्योगपतियों तथा जमींदारों के धन,सम्पत्ति और जमीनों पर राष्ट्र का अधिकार कायम किया। चीन के नेता अपने देश के नवनिर्माण के लिए किसी देश के आगे हाथ पसारने नहीं गए। उन्होंने अपने देश के समस्त साधन जुटाकर खाद्य पदार्थ और कच्चे माल के उत्पादन तथा सहकारी आधार पर नए उद्योगों के निर्माण में आश्चर्यजनक उन्नति की। इससे पूर्व खाद्य पदार्थ के आयात ने चीन की आर्थिक रीढ़ तोड़ दी थी,किंतु आज वह केवल स्वावलम्बी ही नहीं है, बल्कि अन्य देशों को भी वह अपने देश का माल निर्यात करने में समर्थ है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश के शासन की बागडोर ग्रहण करने से पूर्व यह घोषित किया था कि खाद्य पदार्थों और वस्त्रों को जमा करने वाले चोर-बाजार वालों को लटका दिया जायगा। मगर चीन में माओ के शासन ने सभी प्रकार का सट्टा-फाटका बन्द कर दिया, क्योंकि इसके द्वारा कुछ लोग बिना परिश्रम किये ही धनी बनते हैं। इसके ही द्वारा चीजों में अनुचित तेजी-मंदी आती है। उन लोगों को मूल्य निर्धारण करने तथा घटाने-बढ़ाने का क्या अधिकार है, जो उसके उत्पादक नहीं हैं। इसके सिवा हमारे नेता जवा-हरलाल की आकांक्षा के अनुसार चीन में माओ के शासन ने चोर-बाजार का

व्यापार करने वाले और चीजों को जमा करने वालों को फाँसी पर लटका दिया और उन्हें खत्म कर दिया। परिणाम क्या हुआ ? चीन में न तो कोई किसान माल जमा करता है और न वह उसे ऊँचे भावों में बेचता है और न वहाँ के व्यापारी ही चोर बाजार में कोई माल बेचते हैं। किसी का साहस ही नहीं होता। राज-कर्मचारी भी इस प्रकार के सामाजिक अपराध पर मृत्यु-दण्ड के भागी होते हैं। चीन ने उन प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को मिटा दिया, जो राष्ट्र को पीछे धकेलते हैं। चीन में सभी धर्मों के लोग हैं। पर आज वे सब नई भावनाओं के प्रतीक हैं। चीन के एक बालक से पूछिए कि कनफ्यूशियस के सम्बन्ध में उसके क्या विचार हैं, तो वह यह कहेगा कि वह चीन का महान् दार्शनिक और तत्ववेत्ता था, किन्तु आज के युग में उसकी उपयोगिता नहीं है।

इस तसवीर के सामने हम अपने देश को रखें तो हमें हताश होना पड़ता है। भारत स्वतन्त्र हुआ। इसके पूर्व हमने जो बड़े-बड़े सपने देखे थे, अपने देश का जो नक्शा हमने खींचा था, आज हम उस दिशा में देश को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सके। हमारा राष्ट्र उसी करार पर खड़ा है, जहाँ आज से पहले खड़ा था। जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्रान्ति नहीं आ पाई। समाज का वही पुराना रूप-रंग बना है। अंध-विश्वास और रूढ़ियां समाज के गले तक घिरी हुई हैं। प्रतिक्रियावादी राजे-महाराजे, जमींदार, जागीरदार और पूंजीपतिवर्ग पूर्व के समान समाज के वक्षस्थल पर तांडव कर रहा है। ये सब शक्तियां राष्ट्र को उठने नहीं देना चाहती हैं। लोकतन्त्र और नागरिकता के मौलिक अधिकारों की ओट में वे अपनी जड़ें मजबूत करने में लगी हैं। व्यापारी-वर्ग हर प्रकार के शोषण में लगा हुआ है और उसके जीवन से ही राष्ट्र का भयानक नैतिक पतन हुआ है। उनके ही कृत्यों से छोटे-बड़े सभी वर्ग के लोग भ्रष्टाचार में डूब गए। इस अनाचार का सभी क्षेत्रों में विपरीत प्रभाव पड़ा। उससे कोई वर्ग अछूता नहीं बचा। आज प्रश्न यह है कि किस को दोष दिया जाए, गांव में अनाज भरा पड़ा रहता है, सरकार मांगती है तो लोग इन्कार करते हैं, पर वही धनियों के लिए ऊँचे भावों में बिकता है।

व्यापारी भ्रष्टाचार को व्यापार का अंग मान बैठे हैं और अपन स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे छोटे-बड़े राज-कर्मचारियों को पैसों से खरीदते हैं। यद्यपि सरकारी कर्मचारी भी पाप करता है, किन्तु वह धनी नहीं बनता, उसके काम से व्यापारी और उद्योगपति धन कमाते हैं। पर उनका कुत्सित प्रभाव छोटे-से-छोटे काम करने वालों पर भी पड़ता है। इस प्रकार देश के जीवन में यह रोग इतना बढ़ गया कि उससे कोई तबका न बच सका।

देश के विधान में मौलिक अधिकार हमारे लिए आदर्श हैं; किन्तु प्रश्न यह है कि वे हमारी प्रगति के मार्ग में बाधक नहीं होने चाहिएं। हम साहस पूर्वक नये मार्ग पर चलकर उन शक्तियों को बे-दर्दी से खत्म कर दें, जो राष्ट्र की प्रगति में बाधक हैं। इस भ्रष्टाचार का नाश तब तक न होगा, जब तक कि अनेक व्यक्ति कठोर दण्ड न पायेंगे या राज्य ऐसे लोगों की सारी सम्पत्ति जब्त न कर लेगा। भ्रष्टाचार करने वाला चाहे किसान हो या जमींदार, या व्यापारी तथा उद्योगपति अथवा छोटे-बड़े सरकारी नौकर---सबको कड़ी सजा जब तक नहीं मिलेगी, तब तक हमारा राष्ट्र आगे न बढ़ पायगा। इस प्रकार के लोग सहसा कानून के शिकंजे में नहीं आते।

आज देश स्वतन्त्र होने पर इन प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की वजनदार लाश का भार उठाकर चलने में सर्वथा असमर्थ है। यदि हमें अपने देश का नव-निर्माण करना है, तो इस लाश को उतार फेंकने के अतिरिक्त हमारे लिए और कोई उपाय नहीं है। इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों के कारण आज भी देश मुर्दा बना हुआ है। ये तत्त्व हमारी प्रगति को असंभव बना देने वाली जबर्दस्त लाश हैं। अन्य प्रगतिशील देशों ने इन तत्त्वों को एकबारगी खत्म कर दिया। वहाँ न तो देशी पूँजीपति हैं और न विदेशी, जो राष्ट्र को चूस सकें। और न जमींदार तथा सामंत हैं, जिनका जमीन पर अधिकार हो। उन देशों ने सबको खत्म करके एक नए समाज की रचना की। हम इस रचना में पिछड़ गए। यही कारण है कि इस देश के कोटि-कोटि मानवों को स्व-तन्त्रता का प्रकाश नहीं मिला। आर्थिक दृष्टि से नए समाज की रचना होने

पर ही स्वतन्त्रता का सूर्य अपनी असली आभा से सारे देश में चमकेगा।

यह कदम उठने पर ही लोगों की व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना नष्ट होगी। तब लोग अपने कर्त्तव्य को अनुभव करेंगे। देश की स्वतन्त्रता तो बैंक के समान है। हम उसमें से उसी अनुपात से रुपए निकाल सकते हैं, जितना कि हम उसमें जमा करते है। इसके विपरीत यदि हम यह सोचें की स्वतन्त्रता हमारे बिना प्रयत्न किये ही हमें सब-कुछ प्रदान करेगी, तो वह एक मिथ्या प्रवंचना है।

नए समाज की रचना में सभी प्रगतिशील दलों को सम्मिलित होकर अग्रसर होना चाहिए। बिखरी हुई शक्तियों से राष्ट्र का नव-निर्माण न हो सकेगा। हमारा यह देश खाक में न मिले और सम्भवतः विधाता की यह इच्छा है कि वह विकसित हो तो हममें वह चेतना उत्पन्न हो कि जिससे हम नव भारत का निर्माण करने मे समर्थ हों। हम यह दृढ संकल्प करें और यह प्रण लें कि हम स्वतन्त्रता की चेतना रखने वाले कभी पथ-विमुख न होंगे और न अपने कर्त्तव्य से च्युत होंगे। हम यह सोचें कि अब अवसर आ गया है कि हम निश्चय पूर्वक शान्तिमय क्रांति की ओर आगे बढ़ें। देश के प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क और हृदय में उसकी पहली चोट पहुँचे। अब सपनों का वक्त जाता रहा, यह तो केवल काम करने का समय है। प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति और भावनाएँ ही राष्ट्र में नए सूर्य का उदय करेगी।

३

पाकिस्तान का जिहाद

पाकिस्तान का निर्माण इस उद्देश्य से किया गया था कि दोनों देश मित्रता-पूर्वक रहेंगे। आए दिन के साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिए भारत का अंग-विच्छेद हुआ था। मगर पिछले चार वर्षों में पाकिस्तान के कारनामों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह कहाँ खड़ा है। दोनों देशों में आधारभूत मतभेद सिद्धान्तों का है।

भारत और पाकिस्तान—दोनों देशों में जाति, भाषा, अर्थ-व्यवस्था और संस्कृति में पूरी समानता होने के कारण परस्पर भ्रातृत्व, पूर्ण विश्वास तथा मैत्री होनी चाहिए। भारत में मुसलमानों की आबादी अब भी ३ करोड़ ६ लाख है, और पाकिस्तान में उनकी संख्या ६ करोड़ ५० लाख है। पाकिस्तान की अधिक जनसंख्या पूर्वीय बंगाल में है, और वहाँ के हिन्दू और मुसलमान दोनों की भाषा बंगला है। इस दृष्टि से पाकिस्तान में बंगला-भाषा-भाषियों की संख्या भारत की अपेक्षा अधिक है और भारत में पाकिस्तान की अपेक्षा उर्दू पढ़ने और लिखने वालों की संख्या अधिक है। इसके सिवा कला, संगीत और जीवन की अन्य अनेक बातों में—दोनों में बड़ी समानता है। धर्म की भिन्नता होने पर भी दोनों की एक मिश्रित संस्कृति है। मगर इन चार वर्षों में पाकिस्तान ने इस एकता पर पानी फेर दिया।

एक ओर भारत में धर्म-निरपेक्ष शासन है, तो दूसरी ओर पाकिस्तान के शासन का आदर्श इस्लाम है। वह साम्प्रदायिक नीति का अनुयायी है और उसने अपने हिंसात्मक मनोभाव का प्रदर्शन काश्मीर में किस नृशंसता

से किया, भारत से शत्रुता के ख़याल से उसने काश्मीर में अपने सहधर्मियों को ही मौत के घाट उतारा और पश्चिमी पाकिस्तान में एक भी हिन्दू को नहीं रहने दिया और पूर्वीय पाकिस्तान से भी उनका निष्कासन किया। ये सब काम उसने भारत के विरुद्ध निरंतर जिहाद का नारा लगाकर किये। पाकिस्तान का निर्माण ही इसी आधार पर हुआ है कि वहाँ विभिन्न सम्प्रदाय के लोग भ्रातृ-भाव और साथी नागरिकों के समान नहीं रह सकते।

यह मतभेद नया नहीं है। वह तो पाकिस्तान के जन्म से पहले से विद्यमान है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने २९ जुलाई १९५१ को जो पत्र लिखा उस में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि बदकिस्मती से पाकिस्तान के नेताओं ने जुदे-जुदे धार्मिक सम्प्रदायों के बीच मतभेद तथा भेद-भाव फैलाने का बराबर प्रयत्न किया। यह आशा की गई थी कि विभाजन के बाद संभवत: उनकी यह भावनाएँ दूर हो जायँगी, और दोनों पड़ौसी देशों के बीच निकटतम सहयोग का संबंध स्थापित होगा, किन्तु दु:ख का विषय है कि पाकिस्तानी अधिकारियों ने साम्प्रदायिक घृणा को प्रोत्साहन देने की नीति का अनुगमन किया। धार्मिक मदांधता को राजनीतिक अस्त्र के रूप में उपयोग किया गया। पाकिस्तान के शासकों ने रचनात्मक प्रयत्न करने की अपेक्षा जिहाद के युद्ध को तरक्की दी, जो पाकिस्तान की धार्मिक राजनीति का जहर है। उसने दोनों देशों के बीच में कभी-कभी इतनी ख़तरनाक हालत पैदा की कि यदि भारत न सँभला रहता तो दोनों देशों का सर्वनाश होता।

विगत दो वर्षों से पाकिस्तान में जिहाद की भावना को प्रचार द्वारा सींचा गया। पाकिस्तान के समाचार-पत्र, सरकारी रेडियो के गीत, और गजलें तथा भाषण इस भयानक प्रचार के साधन बने। भारत के सम्बन्ध में मनगढ़ंत कहानियों का प्रचार किया गया कि भारत के मुसलमानों पर अत्याचार होते हैं और मसजिदें ढा दी गई हैं। स्कूलों के लिए इतिहास की नई किताबें लिखी गईं जिनमें उन ख़ूनी विजेता—महमूद गजनी, और चंगेज खाँ-जैसे आक्रान्ताओं का यशोगान किया गया और चंगेज खाँ को

मुसलमान बताया गया, जब कि दर असल में वह मुसलमान नहीं था और उसने जितने अधिक मुसलमानों की हत्या की उतनी सारे इतिहास में कभी किसी ने नहीं की। मध्य पूर्व के मुसलिम देशों के लोगों की भावनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर तथा मनगढ़ंत समाचारों से प्रभावित करके यह दिखाने का प्रयत्न किया गया कि समस्त मुसलिम संसार पाकिस्तान के अच्छे और बुरे कामों के समर्थन में है। इस प्रकार के प्रचार तथा निरंतर धर्मांधतापूर्ण अपीलों और मुसलमानों के फतवों के कारण पाकिस्तानी अपनी विचार-शक्ति भी खो बैठे। ऐसे उत्तेजनापूर्ण वातावरण में पाकिस्तानियों में यह विश्वास उत्पन्न करना कठिन नहीं था कि भारत पाकिस्तान पर हमला करने वाला है। उनके लिए यह आश्चर्य नहीं था यद्यपि अवशेष आजकल का संसार इस बात पर आश्चर्य-चकित था कि पाकिस्तान में इत्तिहाद के नाम पर खूनी नारे लग रहे हैं। कहा गया कि 'इंशा अल्लाह, अपने दुश्मनों के खून से हम अपनी प्यास बुझायँगे। हम काफिरों का भेजा तोड़ देंगे। हम दुनिया की सतह से काफिरों का नामो-निशान मिटा देंगे।'

पाकिस्तान में अबाध रूप से जिहाद का कुत्सित प्रचार हुआ और अल्लाह के नाम पर वहाँ हत्या तथा नाश करने का प्रोत्साहन दिया गया। पाकिस्तान के इस काम से भारत में अल्लाह के मानने वाले भारतीय नागरिक अत्यंत भयभीत हुए और उनके नेताओं ने यह इज़हार किया कि पाकिस्तान की यह उत्तेजना इस्लाम के महान् पैगम्बर की शिक्षा के खिलाफ है। पर पाकिस्तान इन हरकतों से पीछे नहीं हटा। भारत ने बड़ी शान्ति से पाकिस्तान के जिहाद के बढ़ते हुए तापमान पर नज़र रखी। जब सितम्बर १९५० में सर ओवन डिक्सन ने अपना यह मत प्रकट किया कि सन १९४७ में पाकिस्तान की सहायता से काश्मीर पर हुआ आक्रमण अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन है, तो उसने अपने इस आन्दोलन में अधिक तेजी ला दी। भारत ने जब सुरक्षा-परिषद् में इसकी शिकायत की, तो पाकिस्तान ने उल्टा धमकी-भरा रुख अपनाया। उसने अपनी सेनाएँ भारत की सीमा पर लाकर खड़ी

कर दीं और काश्मीर की हद्दबन्दी-सीमा-पंक्तियों को तोड़ना और आक्रमण करना शुरू कर दिया। पाकिस्तान के मनसूबों को धराशायी करने के लिए भारत ने सुरक्षा की दृष्टि से कुछ सेनाएँ पाकिस्तान के नज़दीक भारतीय सीमाओं पर खड़ी कर दीं। इसके साथ ही भारत ने पाकिस्तान को बार-बार यह भी सचेत किया कि काश्मीर पर हमला भारत पर हमला समझा जायगा और इससे दोनों देशों के बीच पूरा युद्ध छिड़ जायगा।

भारत के इस रक्षात्मक कार्य से पाकिस्तान-सरकार को जिहाद की आग को प्रज्वलित करने का अवसर मिला। पाकिस्तान ने ऊँचे शिखरों से यह चिल्लाया कि भारत उस पर आक्रमण करने वाला है, किन्तु उसकी वास्तविक भावनाएँ उसके नए रूप से प्रकट हुईं, जो उसने तने हुए घूँसे को दिखाकर कीं। इसके साथ ही, युद्ध की गर्मी लाई गई, पाकिस्तान में ब्लैक-आउट हुए, युद्ध-सम्बन्धी आर्डिनेंस जारी किये गए और रज़ाकार तथा अनसार आदि को सैनिक-शिक्षण दिया गया। इस उत्तेजना के बीच में भारत ने बार-बार घोषित किया कि उसकी सेनाएँ सुरक्षा की दृष्टि से खड़ी की गई हैं। युद्ध करना भारत का उद्देश्य नहीं है। भारत तो यह चाहता है कि दोनों देश संयुक्त रूप में यह घोषणा करें कि वे युद्ध नहीं करेंगे। मगर पाकिस्तान इसके लिए कभी आगे नहीं आया। तानाशाही घूँसा प्रदर्शन करने वाले मियाँ लियाकतअली की मृत्यु के उपरांत एक बार भारत ने फिर अपनी सदाशयता का परिचय दिया।

मगर पाकिस्तान अपनी जगह पर खड़ा है। उसके नेता पाकिस्तान में मुस्लिम-जन-संघ की जमात का निर्माण कर रहे हैं। इसके सिवा शरणार्थियों की अरबों रुपए की सम्पत्ति का पाकिस्तान कभी कोई निपटारा नहीं कर सकेगा। पाकिस्तान में संगठित कम्पनियों का भारत ने मुआवजा चुकाया, किन्तु भारतीय कम्पनियों को पाकिस्तान ने एक पाई नहीं दी। शरणार्थियों की सम्पत्ति न मिलने पर भारत और पाकिस्तान के बीच में स्थायी शान्ति होने के बजाय सदा उत्तेजना कायम रहेगी। पाकिस्तान से आए हुए लाखों व्यक्तियों को कैसे शान्त किया जायगा। इसके सिवा कई लाख हिन्दू पूर्वी

बंगाल से भारत में शरणार्थी बनकर आए, किंतु अभी तक देश न उनके लिए जमीन की माँग नहीं की। मगर जितने हिन्दू पूर्वी बंगाल में बचे हैं, वे वहाँ कितने दिनों तक रह सकेंगे ? वहाँ वे कैसी दयनीय अवस्था में हैं। यदि पाकिस्तान से सब हिन्दू वापिस आ जाते हैं तो यह प्रश्न उपस्थित होगा कि भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य होते हुए भी उतने गैर-हिन्दुओं को वहाँ भेजे। आबादी के इस परिवर्तन से भारत की धर्म-निरपेक्षता में कोई आँच नहीं आती। पाकिस्तान की नींव धर्मान्धता पर कायम है। उसे इस ओर आगे बढ़ाने में अमरीका और अंग्रेज हर प्रकार से सहायक हैं। वे उसकी पीठ पर हैं। ऐसी अवस्था में आने वाले वर्षों में दोनों देशों के बीच की शत्रुता कम होगी या उल्टी आग भड़केगी ? पाकिस्तान के भीतर और बाहर भारत के विरुद्ध जिहाद की भावना कम होने की अपेक्षा जोरों पर है। वहाँ युद्धोन्माद किसी प्रकार कम नहीं है। पाकिस्तान के लोगों में विषाक्त भावनाएँ अनेक साधनों से बढ़ाई जा रही हैं। एक 'जोशे जिहाद' चल-चित्र में पाकिस्तानियों को सेना में भरती होने के लिए आह्वान किया गया कि वे मुजाहिदों की फौज में भरती हों। एक मुजाहिद लोगों को जिहाद के लिए आह्वान करता है, क्योंकि जिन लोगों पर मुसलमानों ने एक हजार वर्ष से भी ज्यादा शासन किया और जिन से असंख्य मुसलमानों की कुर्बानी के बाद यह मुल्क—पाकिस्तान छीना गया। भारत की जनता के सामने गंभीर धमकियाँ दी जाती हैं। एक मुस्लिम नेता मौलाना गुलाम अब्बास एक चित्र में भारत की पापी आँखों को निकालकर अपने पैरों के नीचे कुचलते हैं। फिर एक मुजाहिद अपने परिवार को संकेत करता है कि न केवल रावी, चनाब, बल्कि दरियाए गंगा और जमना भी उन्हीं की हैं, क्योंकि वे उन कासिम, गजनवी और गौरी की औलाद हैं जिन्होंने इस दुश्मन को जीता, गुलाम बनाया, और अपने पैरों तले रौंदा। पाकिस्तान भारत के लिए सदा के लिए खतरा है।

पाकिस्तान न केवल भारत के प्रति उपेक्षा वृत्ति रखता है, किन्तु वह उसका घोर शत्रु बनता जा रहा है। वहाँ का शासन और नेतृ-वृन्द काफिर भारत का कुफ्र दूर करने के लिए जिहाद की भावनाएँ भरता है। इस्लाम

का अर्थ शांति है, किंतु उसके पाकिस्तानी अनुयायी तलवार की नोक से शांतिपूर्ण भारत के साथ मुकाबला करना चाहते हैं। वे फिर भारत में गाजियों की अजानें गुंजित करने की कामना करते ह। नौ सौ वर्ष पूर्व की पुरानी सल्तनत कायम हो या न हो, लाल किला पाने के लिए दिल्ली के निकट पानीपत में फिर पाकिस्तानी मुसलमान युद्ध लड़ सकें या नहीं; किंतु उनका यह घातक प्रचार लोगों को मजहबी जनूनी बनाता है। उससे दो पड़ोसी देशों में घृणा के बीज पैदा होते है। भारत जो अपने महान् आदर्श और लक्ष्य से नई दिशा में अग्रसर होना चाहता है, पाकिस्तान के ये कृत्य उसके मार्ग में रोड़े खड़े होते हैं। भारत के सदाशयतापूर्ण व्यवहार पर भी पाकिस्तानी नेतागण उस पर दुष्ट आँखें निकालकर उसे रौंदने की बात करने में पीछे नहीं रहते हैं। वे हर मोर्चे पर भारत को नीचा दिखाने और क्षति पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखते। हमने पाकिस्तान के अपमानों का कड़वा घूंट पीकर भी उस की युद्धोन्मत्त चालों का अनुकरण नहीं किया। वे हमारे नेता की आँखें निकालकर उसे रौंदना चाहते हैं और दमिश्क में बैठे कासिम के स्वामी की तरह वे हमारी पुत्रियों को घोड़ों के पीछे बांधकर सड़कों पर घसीटने की जो भी कामना करें; किंतु हम इस उत्तेजनापूर्ण वातावरण में भी पथ-भ्रष्ट न होंगे। हम अन्याय के आगे तो अपना सिर कभी न झुकायेंगे, किंतु इन्सानियत की खोपड़ियों पर फतह और नफरत के मीनार कभी खड़े न करेंगे।

४

काश्मीर : सुलगता ज्वालामुखी

काश्मीर भारत के लिए एक जलता हुआ सवाल है । उसके निर्णय पर ही भारत, पाकिस्तान और समस्त एशिया की शान्ति निर्भर है । पिछले चार वर्षों से उसके निपटारे का प्रश्न अधर में लटका हुआ है । भारत के स्वतन्त्र होने पर पाकिस्तान यह देखकर झुँझला उठा कि सभी रियासतें उसमें शामिल हो रही हैं । जिस तरह का वातावरण उत्पन्न किया गया था, उससे न तो अंग्रेजों को विश्वास था और न पाकिस्तान को ही, कि सारी रियासतें भारत की गोद में चली जायँगी । उससे पहले पाकिस्तान न इस कोशिश में कोई कसर नहीं रखी थी कि राजस्थान, हैदराबाद, गुजरात, उत्तर प्रदेश, और मध्य भारत की अनेक हिन्दू-मुस्लिम रियासतें उसमें शामिल हों । इस प्रकार सारे भारत में उसकी राज-सत्ता फैल जायगी । पर जब यह दांव-पेंच नहीं चला,तब उसने सीमाप्रांत के कबाइलियों को मज़हब के नाम पर उकसाया कि वे काश्मीर को जाकर लूटें-खसोटें, और वहाँ बेशुमार धन-दौलत प्राप्त करें । इसके साथ वे उस मुल्क को आज़ाद करें, जहाँ के लाखों मुसलमान एक हिन्दू-नरेश के शासन में तकलीफ झेल रहे हैं । इस एक तीर से उसने दो काम बनाने चाहे, पहले तो उसे उन कबाइलियों को शान्त करना था, जो पाकिस्तान से बगावत के लिए खड़े थे, और जिन्हें अंग्रेज-सरकार प्रति वर्ष प्रायः करोड़ रुपए देती थी । उस समय पाकिस्तान के पास इतना धन नहीं था कि वह उन लोगों में बाँटता । दूसरे इस यकायक आक्रमण से काश्मीर पाकिस्तान के हाथ में आ जाएगा । काश्मीर बेखबर था । इसके पहले

उसने काश्मीर को रसद भेजना बन्द कर दिया था। वहाँ की प्रजा बड़ी संकटजनक स्थिति में थी। ऐसी स्थिति में कबाइलियों के साथ पाकिस्तानी भेड़िये काश्मीर में घुस आए और कत्ले-आम किया। हिन्दू और सिख ही नहीं अपने ही दीन के निराश्रित नर-नारियों को उन्होंने बड़ी बेरहमी से भूना। इन अत्याचारों की बड़ी दर्दनाक और लम्बी कहानी है। ये आक्रान्ता श्रीनगर के नज़दीक तक आ गए थे। उन्होंने काश्मीर को चारों ओर से घेर लिया था। ऐसी स्थिति में काश्मीर-नरेश और शेख अब्दुल्ला ने भारत से सहायता की माँग की। उन्होंने घोषित किया कि काश्मीर भारत में शामिल होता है। मगर भारत-सरकार ने सहायता देते हुए—काश्मीर का भारत में शामिल होना अस्थायी रूप से स्वीकार किया। भारत को यह कहना पड़ा कि काश्मीर की जनता का मत प्रकट होने पर वह अंतिम रूप में शामिल होगा। भारत का यह निर्णय इस आधार पर था कि उसने जूनागढ़ के मामले में नवाब के फैसले के खिलाफ प्रजा के मत को प्रधानता दी थी। इसके बाद देखते-देखते भारत की सेनाएँ हवाई जहाजों से काश्मीर के लिए दौड़ पड़ीं और उस आन-बान के मौके पर शत्रु को परास्त किया। भारतीय सेनाओं ने भारतीय सेनानायकों के नेतृत्व में जो प्रथम बार सफल युद्ध किया, वह इतिहास की अमर घटना है। पर्वतीय प्रदेशों में यह युद्ध भयंकर और संकटजनक होते हुए भी उन्होंने सभी मोर्चों पर शत्रु सेना को लगातार हराया। शत्रु-सेना में कबाइली और पाकिस्तान की सुसज्जित सेना थी। शत्रु के कब्जे से बहुत-सा देश छीन लिया।

कबाइलियों की शक्ति निर्जीव पड़ गई थी। वे मोर्चे से हटने लगे थे। सुतरां पाकिस्तानी स्वय-सेवक और पाकिस्तानी सेना केवल लड़ रही थी। भारत के लिए अंतिम विजय सामने खड़ी थी। केवल कुछ दिनों की बात रह गई थी। भारतीय सैनिक बड़े उत्साह से बढ़े चले जा रहे थे। ऐसे समय में भारत ने काश्मीर के प्रश्न को राष्ट्र-संघ में उपस्थित किया और जिसके निर्णय से उसे यकायक युद्ध बन्द कर देना पड़ा। इस युद्ध-बन्दी से भारत की सारी कोशिशों पर तुषार-पात गया। सारी सेना हत-प्रभ हो गई। किसी को खयाल

नहीं था कि भारत-सरकार कभी ऐसी राजनीतिक गलती करेगी, क्योंकि हर अवसर पर यह एलान किया गया था कि हम काश्मीर की एक-एक इंच जमीन से शत्रु को खदेड़कर दम लेंगे ।

उस दिन से आज तक काश्मीर के प्रश्न पर सुरक्षा-परिषद् में विचार हो रहा है । राष्ट्र-संघ के निर्देशक युद्ध की सीमाबंदी पंक्ति पर तैनात किये गए । जब राष्ट्र-संघ के प्रतिनिधियों ने काश्मीर के युद्ध का मौके पर अध्ययन किया, तब पाकिस्तान को यह मंजूर करना पड़ा कि उसकी सेनाएँ भी युद्ध में शामिल थीं, किन्तु उसने कहा कि इसमें उसका उद्देश्य अपने देश की रक्षा करना था। भारत राष्ट्र-संघ में इस शिकायत को लेकर गया था कि पाकिस्तान ने एक पड़ोसी देश पर आक्रमण कि.ा है, इसलिए उसे आक्रान्ता घोषित किया जाय और उससे कहा जाय कि वह काश्मीर खाली कर दे । मगर इस सवाल को टालकर अंग्रेज और अमेरिकनों के गुट ने भारत और पाकिस्तान को एक समान स्तर पर ला खड़ा किया ।

एशिया में काश्मीर एक ऐसे केन्द्रीय स्थान में स्थित है, जो सैनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है । वह रूस, चीन और अफगानिस्थान की सीमा पर फैला हुआ है। इसके सिवा वह भारत के मस्तक पर आसीन है। इन देशों पर नियंत्रण के लिए वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसका गिलगित---एशिया में सबसे जबर्दस्त सैनिक नाका है । इसलिए अंग्रेज और अमेरिकनों ने काश्मीर के निर्णय में खुले तौर पर पाकिस्तान का साथ दिया।

इस लम्बे समय में कितने कमीशन आए, कितने लोगों ने काश्मीर का निरीक्षण किया और कितनी बड़ी-बड़ी रिपोर्टें तैयारकीं,कि उनका कोई ओर-छोर नहीं। विश्व की शायद ही किसी समस्या पर इतना वाद-विवाद हुआ हो, और लम्बी-चौड़ी रिपोर्टें तैयार की गई हों। अंत में सर ओवन डिक्सन ने अपनी रिपोर्ट में पाकिस्तान को आक्रान्ता--हमलावर स्वीकार किया; किन्तु इस दृष्टि से राष्ट्र-संघ ने कोरिया के समान कोई कारंवाई नहीं की।

इधर यह रवैया रहा, दूसरी ओर काश्मीर अपने नव-निर्माण की ओर बढ़ता गया। उसके नेता शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर के नव-उद्धार के लिए

बड़े-बड़े संकट झेले। वे अनेक बार जेल गए। वे काश्मीर की आत्मा हैं। वे महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी हैं और एशिया के एक निर्भीक मुस्लिम नेता हैं। साम्प्रदायिकता से वे कोसों दूर हैं। उन्होंने घोषित किया कि भारत के पक्ष में काश्मीर का निर्णय होना इस देश की हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर निर्भर है। काश्मीर के मुसलमानों को महसूस हो कि भारत वास्तव में एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। उन्होंने कहा कि यही एक चाबी है, जिससे काश्मीर भारत में मिल सकता है। शेख अब्दुल्ला और उनके साथियों ने स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया कि काश्मीर पाकिस्तान में कभी शामिल नहीं होगा। काश्मीर का प्रश्न मजहब और जाति का नहीं है, वह राजनीतिक और आर्थिक है। काश्मीर का नव-निर्माण जाति-भेद के आधार पर नहीं है। वहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाइयों में कोई भेद-भाव नहीं है। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में वह दिनोंदिन आगे बढ़ा है। उन्होंने काश्मीर में जमींदारी-प्रथा का अंत करके किसानों को जमीनों का मालिक बनाया। इस प्रकार वे काश्मीर के जन-जन के सच्चे देवता बन गए। काश्मीर के निर्धनों को काम देने के लिए उन्होंने छोटे-बड़े अनेक धंधों का नव-निर्माण किया, जिससे लोगों का स्वावलम्बी जीवन व्यतीत हो।

इस सबके अलावा काश्मीर में नई राजनीतिक चेतना के लिए विधान-परिषद् की स्थापना की गई कि काश्मीर की जनता अपने देश के लिए शासन-विधान तैयार करे। निर्वाचित सदस्य इस परिषद् के प्रतिनिधि हुए। इस प्रकार लोक-मत की परीक्षा इस निर्वाचन के द्वारा हुई। इस परिषद् ने घोषित किया कि काश्मीर के युवराज भावी काश्मीर के प्रथम वैधानिक प्रधान होंगे। सुतरां वे प्रथम नागरिक होंगे। इसके साथ ही भारत के साथ सम्मिलित होने की स्पष्ट घोषणा की गई।

डाक्टर फ्रैंक ग्राहम काश्मीर के मामले में राष्ट्र-संघ के मध्यस्थ हैं, उन्होंने भारत और पाकिस्तान के मतभेदों को बहुत कम करने की कोशिश की। मगर मूल तथ्यों तक वे नहीं पहुँच सके। फ्रैंक ग्राहम का झुकाव भी पाकिस्तान की ओर रहा और जनरल डेवर की सैनिक सिफारिशों को

करांची में तोड़-फोड़ दिया; क्योंकि उसमें कहा गया था कि तीन बटालियन के सिवा पाकिस्तान की समस्त सेना का विलीनीकरण किया जाय और आजाद काश्मीर की सेना चार बटालियन से अधिक न हो।

पाकिस्तान काश्मीर के मसले के लिए अपने को पश्चिमीय युद्ध-प्रिय देशों को बेच चुका है। सर मुहम्मद जफरुल्ला खाँ ने अपने इस मक़सद को हासिल करने के लिए अमेरिकन और अंग्रेजों का हर मामले में साथ दिया। पर जब उन्होंने देखा कि जिहाद का नारा निर्जीव हो गया, तब यह आवाज बुलन्द की कि पाकिस्तान स्वतन्त्र मत का मार्ग प्रशस्त करने के सभी प्रश्नों पर पंच-निर्णय मानने के लिए तैयार है और उन्हें इसमें भी कोई एतराज नहीं है कि इस मत-गणना के अवसर पर विदेशी सेना रहे। अपने इस स्वार्थ के लिए उन्होंने अनेक वैदेशिक प्रश्नों पर अमेरिकन और अंग्रेजों का यहाँ तक साथ देना शुरू किया कि वे मिस्र के स्वेज नहर और ईरान के तेल के मामले में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज तक न उठा सके। उनके इन्कार न करने पर यह प्रकट सत्य है कि गिलगित अमेरिकनों को सैनिक नाकेबन्दी के लिए सुपुर्द कर दिया गया।

अमेरिकन, अंग्रेज और पाकिस्तानियों की इन हरकतों से जो रूस काश्मीर के मामले में उदासीन-सा था, उसने खरी-खरी बातें प्रकट कीं। उसने कहा कि पश्चिमीय देश अपने सैनिक स्वार्थों के लिए काश्मीर का निपटारा नहीं होने देते हैं। इस पर अंग्रेज और अमेरिकनों के चेहरे पीले पड़ गए और वे तिलमिला उठे।

अंग्रेज-अमेरिकनों की यह भी मंशा है कि काश्मीर का बँटवारा कर दिया जाय। जम्मू भारत को दे दिया जाय। काश्मीर का जो हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में है, वह पाकिस्तान के अधिकार में रहे। इसके सिवा काश्मीर की घाटी पर मत ले लिया जाय अथवा वह राष्ट्र-संघ के अधिकार में रहे। इस निर्णय से भी पाकिस्तान की इच्छाओं की पूर्ति होती है। पाकिस्तान का कहना है कि उसकी आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से काश्मीर का उसमें शामिल होना अनिवार्य है। काश्मीर की नदियों का पानी पाकिस्तान

की जिन्दगी और मौत का सवाल है।

मगर भारत के लिए भी काश्मीर सैनिक महत्व रखता है। यदि काश्मीर पाकिस्तान में शामिल होता है, तो भारत की रक्षा का खतरा आज से अधिक बढ़ जाता है। भारत एक प्रकार से घिर जाता है। इसके अति-रिक्त काश्मीर के लोक-मत का निर्णय हर हालत में अशांति पैदा करने वाला होगा। यदि यह निर्णय भारत के प्रतिकूल हुआ, तो सोचिए काश्मीर में हिन्दुओं की क्या अवस्था होगी ? पश्चिमी पाकिस्तान के समान वे भी शरणार्थी बनकर भारत में लौटेंगे। और, भारत ने काश्मीर के नव निर्माण में इन वर्षों में जो करोड़ों रुपए की पूँजी लगाई और ऋण दिए, वे सब साफ़ हो जायँगे। राष्ट्रीय मुसलमान भी भागते फिरेंगे या सीमान्त गांधी के समान जेलों में सड़ेंगे। इसके सिवा भारत के हिन्दुओं में एक ज्वालामुखी प्रतिशोध के लिए धधकेगा। भारत-सरकार जानती है कि काश्मीर के मामले में भारतीय लोक-मत कितना प्रबल है। अनेक बार यह साफ़ कह दिया गया कि काश्मीर का प्रश्न राष्ट्र-संघ से वापस ले लिया जाय और अंतिम रूप से घोषणा कर दी जाय कि काश्मीर भारत का स्थायी अंग है। इस अनिश्चित अवस्था का रुख देखकर लद्दाख के लामा को यह घोषित करना पड़ा कि यदि काश्मीर भारत में शामिल होता है तो वह उसके साथ है, अन्यथा उसके लिए यह मार्ग होगा कि वह तिब्बत में मिल जाय।

काश्मीर के प्रश्न पर शान्तिपूर्ण निर्णय सम्भव नहीं है। यदि राष्ट्र-संघ का जबर्दस्त फैसला थोपा गया, तो काश्मीर उसे नहीं मानेगा और विद्रोह की आग फैल जायगी। उस समय काश्मीर एक नया कोरिया बन जायगा।

काश्मीर कदाचित् भारत में शामिल हुआ तो भी पाकिस्तानियों का तूफान खत्म न होगा। उनकी आगजनी सदा जारी रहेगी।

भारत को काश्मीर के मामले में दृढ़ता पूर्वक सामना करना है।

काश्मीर भारत के लिए एक सुलगता ज्वालामुखी है, न जाने उसके शोलों से भारत को कब युद्ध-ग्रस्त होना पड़े ?

लद्दाख पर साम्यवादियों की आँखें गड़ी हैं। परिस्थितियाँ ऐसी तेज़ी से बदल रही हैं कि जहाँ एक ओर लद्दाख वर्तमान शासन से असंतुष्ट होने के कारण चीन में शामिल होने के लिए आतुर है, वहाँ अब शेख़ अब्दुल्ला काश्मीर का स्वतन्त्र अस्तित्व रखने की बात करते हैं। उनका कहना है कि चूंकि भारत में साम्प्रदायिता के तत्त्व जोर पकड़ रहे हैं, इसलिए काश्मीर में भारत का संविधान पूर्ण रूप से जारी नहीं हो सकता। इसलिए उसका भारत से सम्बन्ध सीमित रूप में है। उन्होंने जम्मू के हिन्दू नेताओं से भी यह कहा कि यदि वे चाहें तो इस प्रदेश को एक स्वतन्त्र अंग बना सकते हैं। कहना न होगा कि जम्मू में हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियों ने पूरा जोर पकड़ा है। पर इस सबके साथ उन्होंने यह स्पष्ट घोषित किया कि काश्मीर पाकिस्तान में कदापि सम्मिलित न होगा, आगे वह भले ही भारत और पाकिस्तान के बीच का अंग बना रहे। वह इन दोनों देशों को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र का सन्देश देना चाहता है। वह प्रेम की शक्ति से दोनों देशों में मैत्री स्थापित करने में अपनी पूरी शक्ति लगायगा। इस दृष्टि से शेख़ अब्दुल्ला साम्यवाद के प्रभाव में किस ओर जा रहे हैं, इसका निष्कर्ष करना कठिन है। पर यह सच है कि काश्मीर आर्थिक और सैनिक दृष्टि से एशिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह एशिया की शांति की चाबी है।

५

पख्तूनों का विकट मोर्चा

'यह पठानिस्तान है, पख्तूनिस्तान हमारा है, वह पठानों का है, पख्तूनों का है, दूर हटो, दूर हटो, ऐ ग़ैर मुल्क वालो'—आज यह बुलन्द आवाज़ सीमाप्रान्त के बाहर के सारे इलाके में गूंज रही है। कबाइलियों का इलाका आज भयानक युद्ध की स्थिति में है।

पठानों का संघर्ष आज का नहीं है। उनके युद्ध का एक लम्बा इतिहास है। अंग्रेज जब हिन्दुस्थान में आए, उस समय उन्हें अफ़ग़ानों से लड़ना पड़ा। तब अफ़ग़ानिस्तान के साथ अंग्रेजों के कई युद्ध हुए। अन्त में सीमाप्रान्त पर अंग्रेजों का राज्य कायम हुआ, और उसकी सरहद 'ड्यूरेंड रेखा' मानी गई। इस ड्यूरेंड रेखा के बाहर का पर्वतीय देश जो अफ़ग़ानिस्थान और सीमा प्रान्त के मध्य का है, अनधिकृत देश माना गया—अर्थात् उस पर दोनों राज्यों में से किसी का अधिकार नहीं है। मगर इस अनधिकृत प्रदेश के कबाइलियों और पठानों ने ड्यूरेंड रेखा को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सदा समूचे देश की माँग जारी रखी।

हमने क्या देखा, अंग्रेजों के डेढ़-दो सौ वर्षों के शासन में यह इलाका एक क्षण के लिए भी शान्त नहीं रहा। अंग्रेज कभी भी इस इलाके से बेखबर रहकर सुख की नींद नहीं सो सके। उन्होंने अंग्रेजों से सदा माँग की कि पठानों का सारा देश उनका है, और उसे वे छोड़ दें। मगर अंग्रेजों ने इस ड्यूरेंड रेखा पर अपनी सेनाएँ खड़ी करके इन पख्तूनों को सदा कुचलने की कोशिशें कीं। तोपों और गोलियों के बल पर भी जब वे वीर पठान नहीं हटे, तब उन्हें सांत्वना देने का प्रयत्न किया गया। उनके जिरगों के

सरदारों को खिराज बाँटे गए। उन सबकी वार्षिक रकमें बाँध दी गईं। इस अवस्था में अंग्रेजों को हर साल डेढ़-दो करोड़ रुपए खर्च करने पड़ते। मगर इन अनुदानों के पाने के बाद भी पठानी इलाका सुलगता ही रहा और उसमें आग की लपटें निकलती रहीं।

इस पहाड़ी देश में अंग्रेजों की फौजें और उनके बम सदा बेकार रहे। यकायक छापा मारने पर स्त्री, पुरुष और बच्चों का कत्ल हुआ और उनके बलिदानों से जो भूमि रक्त-रंजित हुई, उससे उस देश के लोगों में अपने देश की स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होती गई। उन्होंने न तो कभी इस्लाम के नारे लगाए, और न कभी जातीयता के। धर्म और जाति की दृष्टि से अफग़ानिस्थान और पख्तूनों में कोई भेद नहीं, दोनों एक ही धर्म के अनुयायी और एक ही पठान जाति के हैं। अंग्रेजों ने जब-जब शान्ति की चर्चा के लिए हिन्दुस्थान के मुस्लिम नेताओं को भेजा, तो उन्हें सदा मुँह की खानी पड़ी। उन्होंने साफ कहा कि वे न तो अफग़ानिस्थान के लिए मरने के लिए तैयार हैं और न हिन्दुस्थान के मुसलमानों के लिए। वे तो अपने देश की स्वतन्त्रता चाहते हैं। यह आज़ादी उनका क़ुदरती अधिकार है और इसे वे हासिल करके रहेंगे। दुनिया की कोई भी ताकत उन्हें अपने इस रास्ते से नहीं हटा सकती।

मगर भारत के स्वतन्त्र होने के पहले सीमाप्रांत की धारा-सभा में उन पठानों का बहुमत था, जो कांग्रेसी थे। भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में इस प्रान्त के दो योद्धा खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ और उनके अनुज डॉक्टर ख़ान साहब महात्मा गांधी के नज़दीक आए। अब्दुल ग़फ्फार खाँ के जीवन में जो परिवर्तन हुआ, उससे वे इस देश में महात्मा गांधी के उपरान्त अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गए। एक पठान, जो कल तक हिंसा और खूँरेज़ी में विश्वास करता था, अहिंसा का अवतार बन गया। देवता और पैग़म्बर से बढ़कर वह उनका उपासक बना। वे मन, वचन और कर्म से अहिंसा के महान् व्रती बने। एक बार गांधी जी भले ही अहिंसा से डिग जाते, मगर ख़ान अब्दुल ग़फ्फार खाँ उससे कभी डिगने वाले नहीं थे। इसी महत्ता के

कारण संसार ने उन्हें 'सीमान्त गांधी' घोषित किया।

उन्होंने सीमान्त प्रदेश में अपनी अहिंसक सेना खड़ी की, और उस शक्तिशाली पठानी प्रदेश को अहिंसा का अनुयायी बना दिया। सारा प्रदेश कांग्रेसी बन गया। ख़ान बन्धु और उनके सहस्रों अनुयायियों की कुर्बानियां स्वतन्त्रता के युद्ध के इतिहास में अपना अमर स्थान रखती हैं। इन पठानों की राष्ट्रीयता ने भारत के मुसलमानों का सिर नीचा कर दिया।

देश की स्वतन्त्रता घोषित होने के पूर्व अंग्रेज-राजनीति ने पंजाब और सीमाप्रान्त में पैंतरे खेले। उन्हें भय था कि यदि सीमाप्रान्त में ख़ान बन्धुओं का नेतृत्व कायम रहा, तो वह पाकिस्तान में कभी नहीं मिलेगा। इसलिए उसने मियाँ अब्दुल कयूम खाँ को प्रादेशिक धारा-सभा का प्रधान मंत्री बनाया, और वे सब षड्यन्त्र किये, जिससे कि ख़ान बन्धुओं की शक्ति क्षीण हो जाय।

विभाजन के समय जोर-ज़बर्दस्ती और मज़हब के नाम पर मत लिया गया और नतीजा यह हुआ कि वह प्रान्त जो सारे देश के साथ कंधे-से-कंधा भिड़ाकर लड़ा और जिसके नेता सारे देश के आशास्थल बने, और हमारे वे प्यारे नेता हमसे बिछुड़ गए। सारी आकांक्षाओं पर तुषार-पात हो गया। क्या से क्या हो गया। ये वंदनीय राष्ट्रीय नेता सम्प्रदायवादी और प्रतिक्रियावादी मुस्लिम लीगी भेड़ियों के सामने बलि के बकरे के समान छोड़ दिए गए। पाकिस्तान का निर्माण होने पर उन्होंने सीमाप्रान्त के पठानों की स्वायत्तता की माँग की। बस फिर क्या था, उन्हें राजद्रोही घोषित करके जेलों के सींखचों में बंद कर दिया गया और उनके साथ उनके हज़ारों साथी भी ठूँस दिए गए। आज चार वर्ष होने आए, ये वीर आत्माएँ जेलों में पड़ी सड़ रही हैं।

इस देश का हृदय तड़प उठा, भारत के वे राष्ट्रीय नेता, जिन्होंने ख़ान बंधुओं के साथ वर्षों काम किया, बेबस हो गए। उनके दिलों में जो जख्म पैदा हुआ, वह आज भी बना हुआ है। उनके हाथ में उनकी मुक्ति का कोई भी साधन नहीं रहा। पठान भी इसे जानते हैं और सारा संसार जानता है कि

सीमाप्रान्त के मामले में भारत कितना बेबस है। अन्तर्राष्ट्रीय नियम भारत को लाचार करते हैं कि वह पाकिस्तान के अंदरूनी मामले में कोई छेड़-छाड़ न करे। इस सम्बन्ध का कोई प्रयत्न युद्ध होगा। पर इतना होने पर भी भारत के नेताओं ने जब कभी खान बन्धुओं के प्रति अपने हृदय की वेदना प्रकट की, तो पाकिस्तान की सरकार ने उसे हमारी साजिश और षड्यन्त्र माना।

इधर कबाइलियों और अहमदियों को चेतना हुई कि काश्मीर के युद्ध में पाकिस्तानी सरकार के फेर में उनमें से हजारों के कैसे प्राण गए। तब वे युद्ध-क्षेत्र छोड़कर वापस लौट आए। इसके बाद सारे कबाइली इलाके में पाकिस्तान-सरकार के विरुद्ध भीषण मोर्चा खड़ा हुआ।

इस कबाइली इलाके में पख्तून-सरकार की स्थापना हुई। उसने माँग की कि पंजाब के बाहर के समस्त पठानों के इलाकों को आत्म-निर्णय का अधिकार दिया जाय। जाति, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान और कबाइली इलाका एक देश है और उसका स्वतन्त्र निर्माण होना चाहिए। जिस प्रकार पाकिस्तानी मुसलमानों ने आत्म-निर्णय के आधार पर, अपने देश का निर्माण किया, वही अधिकार पख्तूनों का भी है। इस देश के निर्माण के बाद वे पाकिस्तान के साथ सहयोग से रहेंगे।

पख्तूनों की इस माँग का अफगानिस्थान ने समर्थन किया। उसने कहा कि ड्यूरेंड पंक्ति कभी किसी को मंजूर नहीं हुई, वह अंग्रेजों का जोर-जबर्दस्ती का फैसला था और उसका सदा विरोध किया गया। इधर सीमा प्रांत में पाकिस्तान की सरकार का घोर दमन जारी है, उधर उसने इन पिछले दिनों में बीसों बार पख्तूनों पर गोलाबारी की। बमों से बीसियों लोगों को भूना। यह बमबाजी अफगानिस्थान के नजदीक तक हुई, जिससे अफगानी पठान भी उसके प्रहार से नहीं बचे। आज अफगानिस्थान की सारी शक्ति इस इलाके के लोगों की आजादी के लिए लगी हुई है। अफगानिस्तान से कबाइली इलाके तक तूफान उठ खड़ा हुआ है। धन-दौलत देने और समझाने-बुझाने पर भी यह आग नहीं बुझेगी। पख्तून अपने देश की आजादी के लिए जीने-मरने के लिए तैयार हैं। उनका आज बड़ा ज़बरदस्त संगठन है।

इस मसले में अंग्रेज पाकिस्तान के समर्थक हैं। उनका कहना है कि ड्यूरेंड रेखा तक पाकिस्तान का वैध अधिकार है, उसे कोई शक्ति नहीं छीन सकती। अतएव पाकिस्तान अपने इन्हीं अंग्रेज और अमेरिकन साथियों के बल पर पख्तूनों को कुचल देना चाहता है। मगर अफग़ानिस्थान चुप नहीं बैठेगा। आज वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली नहीं है। रूस उसकी मदद पर है। यदि यह प्रश्न पाकिस्तान ने दूरदर्शिता से हल नहीं किया, तो यह संघर्ष विकट रूप धारण करेगा। अफग़ानिस्थान और रूस पख्तूनों के मददगार होने पर भारत की सीमा पर एक भीषण विस्फोट होगा। उसकी लपटें कहाँ-कहाँ तक न फैलेंगी। कैसी नई क्रान्ति होगी।

पर जो-कुछ हो, भारत की सहानुभूति सभी पीड़ित देशों के साथ है। उसने यूरोप और अमेरिका के देशों की मैत्री तथा अमैत्री की परवाह न करके उनकी मुक्ति का निर्भीकतापूर्ण समर्थन किया।

प्रश्न तो यह है कि पाकिस्तान मज़हब के नाम पर काश्मीर पर अधिकार चाहता है, जब कि उसके सहधर्मी अपनी स्वतन्त्रता के लिए उससे अलग हुआ चाहते हैं। पाकिस्तान को यकीन है कि काश्मीर के मुसलमानों के हाथ में कुरान देने या खुदा की शपथ कराने पर कि ये काफिर के साथ रहेंगे या दीन के मानने वालों के साथ—इस बिना पर वह भोले मुसलमानों को अपनी ओर सहज में खींच लेगा। मगर इन पख्तूनों से वह क्या कहेगा? उसके मुस्लिम भ्रातृ-भाव के पंजे में अभी तक न तो ये पख्तून आए और न अफग़ानिस्थान ही।

पाकिस्तान मुस्लिम राष्ट्रों के सहयोग से पख्तूनों का सवाल दबा देना चाहता है। इधर पख्तून लगातार तैयारी में लगे हैं। वे एशिया के सभी स्वतन्त्र देशों में अपनी आवाज़ पहुँचा रहे हैं। पख्तूनों का मामला राष्ट्र-संघ में आने पर उसे रूस, अफग़ानिस्तान और कई अन्य स्वतन्त्र देशों का पूरा समर्थन प्राप्त होगा। पाकिस्तान शक्तिशाली है। किन्तु वह पख्तूनों को नेस्त-नाबूद नहीं कर सकता। एक शताब्दी का युद्ध यों ही शान्त नहीं हो जायगा। पाकिस्तान थैलियों के मुँह खोलकर पख्तूनों को

खरीदना चाहता है, पर क्या वह इसमें सफल होगा। पख्तूनों का इतिहास नहीं कहता कि वे दब जायेंगे। काश्मीर के उपरांत यह दूसरा ज्वाला-मुखी है, जो पाकिस्तान को सुख की नींद न सोने देगा।

चाहे खुला विद्रोह हो या युद्ध, पख्तून अपनी स्वतन्त्रता के लिए पाकिस्तान से भिड़ने को तैयार है। वे इस प्रश्न पर कोई समझौता नहीं चाहते। पाकिस्तान की बड़ी-से-बड़ी सेना, इस पर्वतीय प्रदेश में पख्तूनी दलों का सामना करने में असमर्थ है। वह कभी उन्हें परास्त नहीं कर सकेगा।

खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ पठानों की स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु का सामना कर रहे हैं। न तो कबाइली और न सीमाप्रान्त का लालकुर्ती दल पाकिस्तान से कोई शत्रुता रखता है। उनका कोई यह प्रयत्न नहीं है कि पश्चिमी पाकिस्तान का अस्तित्व न रहे। सीमांत गांधी पाकिस्तान के प्रति वफ़ादार रहने को तैयार हैं, किन्तु वे पठानों के लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं, उनकी यह स्वतन्त्रता पाकिस्तान के अन्तर्गत हो या बाहर।

भारत के देश का विभाजन स्वीकार करने से पठानों में बड़ा क्षोभ है। उनका कहना है कि भारतीय नेताओं ने हमें और हमारे नेताओं को किन भेड़ियों के सामने छोड़ दिया। उन्हें हमें मुस्लिम लीगियों का शिकार न बनाना था।

पर आज वीर पठान बिखरे हुए नहीं हैं, वे संगठित हैं, सुसज्जित हैं, और दासता से मुक्ति चाहते हैं।

निर्बल के बल राम

६

नेपाल की अराजकता

हिमालय के निचले भू-भाग में नेपाल भारत का एक महत्त्वपूर्ण प्रहरी प्रदेश है। कम्युनिस्ट चीन आदि देशों से वह घिरा हुआ है। अनेक शक्तियों की उसकी ओर ललचाई हुई आँखें लगी हैं। इन सब दृष्टियों से वह भारत की सुरक्षा का जबरदस्त नाका है। यह राज्य उत्तरी बिहार से लगा हुआ है। रक्सौल से ट्रेन नेपाल के सीमावर्ती नगर वीरगंज को जाती है।

पिछले काल तक नेपाल में रानाओं का निरंकुश शासन था। नेपाल का प्रधान शासक शासन में कभी हस्तक्षेप नहीं कर पाता था। वह तो मूर्तिमंत रहता था। कहा जाता है कि वह वर्ष में एक बार बाहर निकलता था। योगी अरविन्द के सम्बन्ध में भी यही बात थी कि वे वर्ष में जब-तब बाहर आकर लोगों को दर्शन देते थे। अतएव नेपाल का प्रधान मंत्री, जो महाराज कहलाता था, वास्तविक शासक था। इसके सिवा जापान के सम्राट् के समान नेपाल के महाराज भी जनता के लिए ईश्वर-तुल्य थे। इन्हीं भावनाओं के कारण वहाँ की प्रजा बाहरी दुनिया से बेखबर रही और अत्याचारों की चक्की में पिसती रही।

मगर समय बदलता है, जिस नेपाल की जनता को घोर अंधकार में रखा गया था, वह भारत के स्वतन्त्र होते ही सजग हो उठी। प्रजा विद्रोही हो गई। उसने राज्य-शक्ति का सशस्त्र मुकाबला किया। एशिया में यह महत्त्वपूर्ण राज्य-क्रान्ति हुई। राज्य-सत्ता में हस्तक्षेप करने से नेपाल के महाराज त्रिभुवनसिंह प्रजा की माँगों के समर्थन में दिल्ली भाग खड़े हुए। इसके उपरान्त नेपाल की राज-सत्ता और विद्रोही प्रजा में सशस्त्र युद्ध हुआ।

सारे संसार का ध्यान इस ओर खिंच गया। उस समय कई महान् राष्ट्रों ने अपने स्वार्थों के लिए नेपाल में कूदने का अवसर देखा। एक अर्से से कम्युनिस्ट तत्त्व नेपाल में पैदा हो चुका था। अतएव उसका ध्यान चीन तथा रूस की ओर था। पाकिस्तान ने भी चाहा कि उसे भी वहां प्रवेश करने का मौका मिले। नेपाल की सत्ता किधर भी फिसल सकती थी, यदि कुछ भी जनता उसके साथ होती। उसने षड्यंत्र करने और विद्रोह दबाने में कोई कसर नहीं की। राजवंश के एक छोटे बालक को भागे हुए महाराज की गद्दी पर बिठाया। मगर अन्त में अपनी हार की संभावना देखकर नेपाल के प्रधान मंत्री को दिल्ली में आकर नेपाली जनता के प्रतिनिधियों से समझौता करना पड़ा। भारत-सरकार ने निरपेक्ष रूप में इस काम में हर प्रकार से योग दिया। वह नेपाल के युद्ध में तटस्थ रही। अन्त में नेपाल के महाराज पुनः गद्दी पर बैठे। भारत ने नेपाल की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की। उसने कभी यह आकांक्षा नहीं की कि नेपाल भारत का एक अंग रहे। यद्यपि पाकिस्तान ने यह आरोप लगाया कि भारत की साजिशों से नेपाल में गृह-युद्ध हुआ और वह अन्य रियासतों के समान इसको अपने में मिलाना चाहता था। नेपाली नेताओं ने पाकिस्तान और अंग्रेजों को मुँहतोड़ उत्तर दिया कि नेपाल के संबंध में भारत ने सच्ची नीयत से सहयोग दिया।

नेपाल में शासन के लिए संयुक्त मंत्रि-मंडल बना। नेपाल-नरेश की वैधानिक सत्ता करार दी गई और मन्त्रि-मंडल महाराज की अपेक्षा प्रजा के प्रतिनिधियों के प्रति जिम्मेदार हुआ। स्वतन्त्र विधान के लिए विधान-परिषद् बनाई गई। भारत और नेपाल---दोनों स्वतन्त्र देशों के रूप में संधि हुई। इसके द्वारा दोनों ने एक दूसरे की महत्ता स्वीकार की। जो विद्रोही थे, उन में से अधिकांश ने युद्ध का परित्याग किया और नए राज्य शासन में सहयोग दिया। राजनीतिक नेताओं ने वहाँ लोकतन्त्र शासन की नींव डाली। मगर मंत्रि-मंडल के राणा फिर भी समय की गति को पहचान न सके। अतएव राणाओं को मन्त्रि-मंडल में से हटना पड़ा और जनता के प्रतिनिधियों का

विशुद्ध मंत्रि-मंडल बना। जो राणा प्रधान मंत्री थे, उन्होंने सत्ता ही नहीं छोड़ी, प्रत्युत नेपाल से भी भाग खड़े हुए।

इतने पर भी नेपाल की राजनीति में क्रांतिकारी भाव रखने वाले लोग संतुष्ट नहीं हैं। इन विद्रोहियों की काफी बड़ी संख्या है, और वे जब-तब सिर उठाते हैं। नेपाल के नए शासन को इन विद्रोहियों का कई बार सामना करना पड़ा। नेपाल की संधियाँ विदेशी राष्ट्रों से भी हुई हैं। अंग्रेज और अमेरिकन संधियों द्वारा यहाँ के प्राकृतिक साधनों का उपयोग करने की फिराक में हैं। जहाँ नेपाल एशिया का एक महत्वपूर्ण सैनिक नाका है, वहाँ नए उद्योगों के लिए भी उसकी उपयोगिता कुछ कम नहीं है। पर जो कुछ हो नेपाल के प्रगतिशील शासन में कोई भी विदेशी सत्ता नेपाल पर अधिकार नहीं कर सकती। औद्योगिक मामलों में भले ही समानता के आधार पर वह विदेशियों से सहयोग प्राप्त करे।

पर क्या ऐसा हो सकता है कि जो नेपाल भारत की सुरक्षा का सैनिक नाका है, वह किसी ओर बह जाय। नेपाल की हालत नाजुक बनाने के लिए अनेक शक्तियाँ काम कर रही हैं। नेपाल की वर्तमान शासन-सत्ता निर्बल-सी है। वह भावी संघर्ष का भारत के सहयोग के बिना सामना न कर सकेगी। यह इसलिए कहना पड़ता है कि नेपाल के अन्दर और बाहर विद्रोही दल मौजूद हैं, वे कई बार उठ चुके हैं, फिर सफल भले ही न हों। किन्तु उनकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है। विदेशी स्वेच्छासेवक और विदेशी अस्त्र-शस्त्र इन बागियों को मिल गए, तो वे भयानक संघर्ष करने से बाज न आयँगे।

विरोधी तत्वों का दमन यकायक कभी संभव नहीं है। दूर क्यों जाया जाय, हम अपने घर में और घर के नजदीक क्यों न देखें। दक्षिण और हैदराबाद में जो कम्युनिस्ट वर्ग पैदा हुआ, वह क्या दबाए से दब सका। उल्टे उसने बाहरी चोगा शांति का पहनकर धारा-सभाओं पर कब्जा किया। ब्रह्म देश की सरकार अपने बाग़ियों को आज तक नहीं दबा सकी। कहा जाता है कि उसे उन्हें दबाने में कई वर्ष लगेंगे। सारांश यह कि जो देश उथल-पुथल की सीमा पर खड़े हैं, उनमें नेपाल की सैनिक महत्ता सर्वाधिक है।

उसमें ज़रा-सी बत्ती लगने से सारे भारत को खतरा है।

यदि आने वाले दिनों में क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथ में नेपाल के शासन की बागडोर आई, तो वे कम्युनिस्टों से हाथ मिलाए बिना न रहेंगे। उस अवस्था में नेपाल का कम्युनिस्ट होना, भारत को उससे बचने के लिए एक चुनौती होगा। तब बिहार और उत्तर प्रदेश—भारतीय संघ के दो बड़े राज्यों में साम्यवाद फैले बिना न रहेगा।

समय बड़ी तेजी से बदल रहा है। भारत के सिवा नेपाल के दाएँ-बाएँ कम्युनिस्ट शक्तियाँ उसे अपनी ओर खींच लेना चाहती हैं। मानव के मनोविचारों में परिवर्तन होते देर नहीं लगती। नेपाल की आर्थिक अवस्था अभी इतनी पिछड़ी हुई है कि वह सभी दिशाओं में पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता। भारत-सरकार ने नेपाल को आर्थिक सहयोग देना स्वीकार किया है। भारत का यह हाथ इसलिए बढा कि वह अपनी आर्थिक प्रगति कर सके। कारण, आर्थिक संकटों के बीच में ही विनाशकारी तत्त्व जन्म लेते हैं। भारत इस दृष्टि से सजग है। यदि वहाँ विरोधी तत्त्व और बाहरी शक्तियाँ उपद्रव मचायँ, तो इस देश का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपनी सैनिक शक्ति द्वारा हस्तक्षेप करके राज्य को अपने अधिकार में कर ले। भारत की सीमा पर किसी प्रकार की अशांति उसके लिए खतरा है। जिस प्रकार कम्युनिस्ट चीन ने तिब्बत पर अपना अधिकार कर लिया और वह इस सिलसिले में और भी आगे बढ़ आया, उसी प्रकार नेपाल पर भी भारत का हर प्रकार से अधिकार है। जब तक वहाँ की अवस्था शांतिपूर्ण ढंग से कायम रहे, और वैधानिक शासन कायम हो, तब तक वह उसके लिए एक स्वतन्त्र देश है। पर अशांति की अवस्था में भारत का उस पर अधिकार रहेगा। यह देश सहन नहीं कर सकेगा कि उस पर ऐसे वर्गों का अधिकार हो जाय जिनका अभाव उसके भू-भाग के अंतरंग तक पड़े। तब तो यह देश हर समय नए खतरे में रहेगा।

अतएव नेपाल और भारत—दोनों देशों के लिए यह वांछनीय है कि नेपाल में अराजक तत्त्व न रहें।

नेपाल के कई विद्रोही नेता लाल चीन में पहुँच गए हैं। कम्युनिस्टों की गुप्त टोलियाँ नेपाल में यत्र-तत्र फैल गई हैं। ये शक्तियाँ नेपाल में तिब्बत की ओर से प्रवेश करके शासन को पलट देना चाहती हैं। इन तत्त्वों से सामना करने के लिए आवश्यक है कि नेपाल में नव विकास हो। नेपाल की नई सेना केवल जनता की सेना न हो; बल्कि वह हर प्रकार से सुसज्जित हो। उसकी यह तैयारी दोनों देशों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है, कारण दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित हैं। नेपाल भारत से हर प्रकार की सहायता की माँग कर सकता है। आज दोनों ही मित्रता के गहरे बंधनों में बँधे हुए हैं। नेपाल के समृद्ध होने पर ही वह अपने यहाँ आंतरिक शांति स्थापित कर सकेगा। बिना समृद्धि के यह कुछ संभव नहीं है। समृद्धि शांति के समान अविभाजित है। यदि नेपाल अपनी समस्याएँ हल न कर सका, तो आने वाले वर्ष बतायँगे कि नेपाल किधर जायगा। नेपाल कोरिया बनने का रुख अख्तियार कर रहा है। नेपाल में यद्यपि नेपाली कांग्रेस का शासन है, किंतु वहाँ की लोकप्रिय संस्था कम्युनिस्ट पार्टी हो गई है। नेपाल भारत का दास तो आज तक नहीं रहा, पर चीन को तो वह सदियों तक भेंट देता रहा है। नेपाल की जनता क्षुब्ध है, और वह निकट भविष्य में विद्रोह का दाँव खोज रही है। चीन और भारत में जो भी मैत्री हो, किंतु चीन का लक्ष्य तो नेपाल के मार्ग से भारत में साम्यवाद लाकर अंग्रेज और अमेरिकनों की प्रधानता को मटियामेट करना है। यदि भारत अमेरिकन और अंग्रेजों के इशारों पर चलेगा तो चीन कोरिया की भाँति नेपाल को सहायता पहुँचाकर भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल कर देगा। नेपाल में कोई ऐसा घर नहीं है, जिसका एक-न-एक व्यक्ति सेना में न हो।

७

एशिया में युद्ध के बादल

बीसवीं शताब्दी के गत दो वर्ष एशिया के रण-क्षेत्रों में युद्ध की प्रतिध्वनियों में व्यतीत हुए। विश्व के इतिहास में यह काल एशिया के नाम से सदा चिर स्मरणीय रहेगा। यद्यपि संसार के अन्य देशों में भी परिवर्तन हुए, किन्तु उनमें एशिया सर्वप्रधान रहा। उसने संसार के समाचारों में प्रति दिन पहला स्थान ग्रहण किया—और वह समाचार यही कि साम्राज्यवाद की शव-शय्या की अखीरी कीलों पर हथौड़े मारे जा रहे हैं।

इस संबंध में समस्त गौरव उन चीनियों को है, जिन्होंने अपने देश को ही मुक्त नहीं किया, बल्कि एशिया-खंड के अन्य छोटे-बड़े देशों को भी प्रेरणाएँ दीं कि वे उठ खड़े हों, और अपनी गुलामी की जंजीरें तोड़ दें। इंडोनेशिया, वीटनाम, फिलीपाइन और मलाया तथा इंडोचीन आदि देशों के वीर योद्धाओं ने लड़कर यह बता दिया कि अब एशियायी जनता गुलाम बनाकर नहीं रखी जा सकती। अभी हार हुई हो या जीत यह कोई प्रश्न सामने नहीं है, इन संघर्षों से योरप के साम्राज्यवादी जान गए कि वे अब नहीं टिक सकते। एशिया के ये देश योरोपीय साम्राज्यवादियों की जबरदस्त जागीरें हैं। इन सब देशों में ऐसी चीजें उत्पन्न होती हैं कि योरप और अमेरिका के देश उन्हें छोड़ना नहीं चाहते।

मलाया का रबर और टिन संसार की बहुमूल्य उत्पत्ति है। ऐसे ही भिन्न-भिन्न उत्पादन दूसरे देशों में भी हैं। यदि एक साम्राज्यवादी देश की सत्ता किसी देश से हटे भी, तो दूसरे किसी-न-किसी रूप में उस पर टूट पड़ते हैं। अतएव इन देशों पर आँच न आय, वहाँ साम्यवाद न फैले, इस

दृष्टि से अनेक योजनाएँ परिणत की जा रही हैं। अटलांटिक समझौते के समान प्रशांत महासागर के समझौते करने की ओर कदम बढ़ाया गया। परन्तु भारत के आगे न आने पर इस प्रयत्न में कोई जान नहीं आने पाई।

एशियायी देशों में भारत का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह एक धुरी देश है। स्वतन्त्र होने पर भारत ने अपनी स्थिति का अनुभव किया, और तभी से उसने एशियायी देशों का नेतृत्व किया। उसने यह उद्घोषित किया कि उसे यह आकांक्षा नहीं है कि वह कोई नेतृत्व का सेहरा आगे बढ़कर बाँधे। उसका काम तो पीड़ित देशों के उद्धार के लिए हाथ बँटाना है। अपनी यह आवाज वह सदा बुलन्द रखेगा। इस काम में वह किसी की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का कोई खयाल न करेगा। भारत की यह धारणा है कि एशियायी देशों की स्वतन्त्रता में उसकी अपनी स्वतन्त्रता निहित है। उसने निर्भयतापूर्वक इंडोनेशिया की स्वतन्त्रता का समर्थन ही नहीं किया, अपितु उसे सक्रिय सहयोग दिया। इस काम में भारत को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इंडोनेशिया स्वतन्त्र हुआ और वह भारत का सच्चा हितैषी बना। कम्युनिस्ट चीन का सर्वप्रथम भारत ने समर्थन किया। ब्रह्म देश के साथ, जो भारत का निकटस्थ पड़ोसी है और जिसकी शान्ति में भारत की शान्ति है, भारत के सुलूक कुछ कम नहीं हैं। इसके सिवा भारत ने कोरिया युद्ध में कतई भाग नहीं लिया। फिर जापान पर अमेरिका ने अपने समर्थकों द्वारा जो संधि लादी, उससे भी भारत सहमत नहीं हुआ। अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और अन्य यूरोपियन शक्तियों का सुदूर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व के देशों में किसी भी रूप में प्राधान्य एशिया की स्वतन्त्रता में बाधक है।

मलाया में जो भयानक विद्रोह हुआ, वह क्षणिक काल के लिए दब गया, किंतु वहाँ आग लगी हुई है। यद्यपि वहाँ अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा जा चुका है, किंतु कम्युनिस्ट तत्त्व फिर भी मौजूद हैं। वे मार्ग की प्रतीक्षा में हैं। अंग्रेज जान लें कि मलाया पर वे अधिक काल तक अधिकार रख सकेंगे, यह कभी संभव नहीं है। इस बार जो आग भड़केगी, वह केवल मलाया तक ही नहीं रहेगी, बल्कि उसका व्यापक रूप होगा। समस्त सुदूर

प्रदेश लाल हो उठेगा, और उस समय अंग्रेजों को दूसरी जगहों के समान उल्टे पैर भागना पड़ेगा।

कोरिया में आग लगी हुई है और यदि वहाँ राष्ट्र-संघ के प्रतिनिधियों से कोई समझौता नहीं हुआ, तो आज का युद्ध सारे सुदूर पूर्व को घेर लेगा। अमेरिका नये चीन को नहीं मानता है। वह फारमोसा को नहीं छोड़ना चाहता है। इधर ग्रेट ब्रिटेन, जो चीन में नये शासन को मानता है, किंतु वह अमेरिका का पिछलग्गू है। विदेशों के लिए सभी देश एक समान नीति रखते हैं, फिर चाहे अमेरिका हो, या ग्रेट ब्रिटेन तथा रूस। सभी बाहरी देशों को अपना अंगीभूत बनाकर रखना चाहते हैं। पर सजग एशिया किसी भी पक्ष के हितों के लिए अब अपनी गरदनें नहीं कटवाना चाहता है।

अभी तक कोरिया में अमेरिकन अधिक तीव्रता से पेश नहीं आए क्योंकि उन्होंने जाना कि जहाँ इस काम में ग्रेट ब्रिटेन उनका साथ नहीं देगा, वहाँ दूसरे सभी एशियायी देशों में प्रलय मच जायगी। पर अब ग्रेट ब्रिटेन अमेरिका के अधिक नज़दीक आ गया है। इधर जब तक चीन पर सैनिक आक्रमण की जो धमकी दी जाती है वह एशिया में युद्ध की ज्वाला को भभका देने वाली है। यह युद्ध चीन तक ही सीमित नहीं रहेगा, बल्कि उससे समस्त एशिया में लाल लपटें फैल जायँगी। अमेरिका अपने इस मनसूबे में आगे बढ़ने का अवसर न पाता, किंतु इंग्लैंड में युद्ध-प्रिय चर्चिल के प्रधान मन्त्री होने पर भविष्य में क्या कुछ न हो जाय। इसलिए सुदूर पूर्व में आग फैलने में देर नहीं लगेगी। इस स्थिति के प्रति भारत ने गहरी चिन्ता प्रकट की। उसने योरोपियन देशों को तत्काल सचेत किया कि कदाचित् वे चीन पर आक्रमण करेंगे, तो उससे भारत पर खतरा पहुँचे बिना नहीं रहेगा। उस अवस्था में भारत चुपचाप बैठा न रह सकेगा।

स्वतन्त्रता देश पर बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ लाती है। वह कोई आसान चीज नहीं है। उसे कायम रखने के लिए देश को हर समय सजग रहने की आवश्यकता है। भारत संसार में शांति का एक-मात्र अग्रदूत है। अपनी आंतरिक परिस्थितियों के कारण वह एशियायी देशों में काम नहीं कर

सका है, किंतु फिर भी उसकी शक्तियाँ प्रत्येक देश की आजादी के लिए लगी हुई हैं। वह महसूस करता है कि इन देशों की मुक्ति हुए बिना स्थायी शान्ति संभव नहीं है।

इस प्रकार सारा सुदूरपूर्व बेचैन है, सभी देश विद्रोह की करवटें ले रहे हैं। ब्रह्म देश में कम्युनिस्ट कब शान्त होंगे, इसे वहाँ की सरकार भी नहीं कह सकती। ब्रह्म देश की सरकार भी साम्यवादी विचारों की है, किंतु वह कम्युनिस्ट नहीं है। वहाँ एक अच्छे भाग में कम्युनिस्टों से संघर्ष जारी है। मलाया, वियटनाम, इंडोचीन आदि देशों में विद्रोही—साम्यवादी शासन को उलट देना चाहते हैं। इसके लिए चाहे दिन हों, या मास अथवा साल—सुदूरपूर्व देशों में परिवर्तन रुक नहीं सकते।

अब मध्यपूर्व की ओर दृष्टिपात करिए। यहाँ अरब देशों से हुतात्माओं ने साम्राज्यवादी बन्धनों के विरुद्ध अपना झंडा उठाया। ईरान, मिस्र, टयूनीशिया, और अन्य देशों के अरबों ने अपने से शक्तिशाली दमन-कर्त्ताओं को चुनौती दे दी है। आज मध्यपूर्व पर किसी का भी प्रभाव बर्दाश्त नहीं है। वह तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए नये रण-क्षेत्र को परिवर्तित करने में बड़ी तेजी से आगे आ रहा है। ईरान का तेल का प्रश्न, और मिस्र की स्वेज नहर की स्वतन्त्रता और टयूनीशिया की आजादी के विद्रोह में, स्वतन्त्रता के संग्राम में कितने अनगिनत लोगों के अब तक प्राण गए। उनकी शुमार करने की कोई प्रतीक्षा में नहीं है। इन देशों के लोग अधिक-से-अधिक बलिदान करने को तैयार हैं। वे पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहते। इन देशों ने निश्चय कर लिया कि वे स्वतन्त्र होकर रहेंगे। साम्राज्यवाद के विरुद्ध बाग़ी एशिया हमारे समय से सबके महान् युद्ध में, जो युद्ध शान्ति और स्वतन्त्रता का है, शक्तिशाली ताकत है। अरब देश ऐसा बारूदखाना है कि जिसमें बत्ती लगने पर सारा संसार जल उठेगा। मिस्र के बादशाह फारूक का राज-गद्दी का परित्याग और ईरान के शाह का मुसाद्दिक से दबने की घटनाएँ प्रकट करती हैं कि हवा का रुख किधर है?

इस दिशा में एशियायी देशों की एकता अधिक वांछनीय है। उनकी आपस की फूट से शत्रुओं के पैर मजबूत रहेंगे। यदि सारे अरब देश एक कतार में खड़े हों तो बाहरी शक्तियों का यह साहस न होगा कि वे उन में से किसी का शोषण करने में समर्थ हों। मध्य-पूर्व के देश भले ही इस्लाम के अनुयायी हों; मगर देश की राजनीति में मजहब और भिन्न-भिन्न संप्रदायों का कोई खयाल न किया जाय। देश की राजनीति मजहब से परे विशुद्ध होनी चाहिए। यह प्रकट है कि अरब-क्षेत्र के अनेक मुस्लिम देशों ने मजहब को कोई स्थान नहीं दिया है, किंतु फिर भी वे पूर्णतया उससे बच नहीं सके हैं।

इधर भारत का पड़ोसी पाकिस्तान इन मुस्लिम देशों पर नेतृत्व करने की धुन में है। उसे भारत का नेतृत्व खटकता है। पर भारत ने इस सम्बन्ध में अपनी शोभनीय विनम्रता प्रकट की कि वह नेतृत्व नहीं चाहता, अपितु अपनी सेवाओं द्वारा उनके उद्धार की कामना करता है। इसलिए उनका संगठन धार्मिक आधार पर अनेक संकटों का कारणभूत होगा। इसलिए पाकिस्तान का नेतृत्व सर्वथा निंदनीय है कि इस्लाम के आधार पर मुस्लिम देशों का संगठन हो। पर यदि इस्लाम के भ्रातृत्व की भावना पाकिस्तान में कदाचित् विशुद्ध होती, तो अफगानिस्थान और पाकिस्तान दो सहधर्मी देशों में कभी तनाव न होता। सीमाप्रान्त के पठान, और अफगानिस्थान भी तो मुसलमान हैं। जो पाकिस्तान इस्लाम के भ्रातृत्व का महान् आदर्श रखता है, उसने अपने निकटवर्ती सहधर्मियों पर किस बिरते पर गोला-बारूद की। काश्मीर में उसने अपने हाथ अपने सहधर्मियों के खून से रँगे। ऐसा देश धर्म के नाम पर मुस्लिम देशों को बरगलाय तो वह केवल अपना अहित नहीं करेगा, बल्कि समस्त मुस्लिम देशों को ले डूबेगा। यह प्रकट है कि पाकिस्तान मुस्लिम देशों का संगठन भारत के विरुद्ध करना चाहता है। मगर मुस्लिम देश भी अपना भला-बुरा सोचने की शक्ति रखते हैं। आज वे नये युग के साथ चल रहे हैं।

इन मुस्लिम देशों को यह भली भाँति मालूम है कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है, उसके शासन में सभी जातियाँ और वर्ग एक समान

स्थान रखते हैं । इस के सिवा भारत की कभी यह आकांक्षा नहीं है कि किसी देश पर उसकी सत्ता कायम हो । भारत की इस स्थिति के प्रति अनेक जाग्रत मुसलिम देश चेतना रखते हैं, भारत ने जोरों से ईरान और टयूनीसिया का समर्थन किया, मगर पाकिस्तान अपने इन मुस्लिम देशों के पक्ष में इसलिए आवाज नहीं उठा सका कि कहीं अमेरिकन और अंग्रेज उससे अप्रसन्न न हो जायें। उनके सहयोग पर ही काश्मीर का मामला उसके पक्ष में हल होना संभव है। अतएव एशिया की भूमि में पाकिस्तान जैसे देशों की अवस्था उसके नव-निर्माण में कितनी जबर्दस्त रुकावट है । वह तो विघटन और युद्ध के लिए चुनौती है । जहाँ अरब देश अपना स्वतन्त्र निर्माण करने में लगे हैं, और वे यूरोपियनों को भगा देना चाहते हैं, वहाँ पाकिस्तान उन्हीं यूरोपियनों का पिछलग्गू है । भारत के लिए पाकिस्तान का यह कदम सदा खतरे पैदा करने वाला है । उसकी तो यह कोशिश है कि न केवल पाकिस्तान के एक-एक मुसलमान के दिल में भारत के खिलाफ जहर फैले, बल्कि अपने राजदूतों द्वारा वह सभी देशों में यह विषाक्त वातावरण उत्पन्न कर देना चाहता है । इन देशों की सबल पृष्ठभूमि पर पाकिस्तान अपने को इस स्थिति में लाना चाहता है कि जिससे उसका आक्रमण भारत में सफल हो। यद्यपि इस देश का यह खयाल है, कि उसके विरुद्ध मोर्चा लेने के लिए वह जो भी तैयारियाँ करे, किंतु मुस्लिम देश उसका साथ न देंगे। पर इतने पर भी भारत इस ओर से बेखबर नहीं है ।

ईरान को तो अंग्रेज भून डालते, यदि उसकी पृष्ठभूमि पर सोवियत रूस का हाथ न होता। एशिया के प्रश्नों में रूस के प्रत्यक्ष रूप में आगे न आने पर भी वह सभी देशों के प्रति अपनी सद्कामना रखता है। वह यह भली भाँति जानता है कि जिस दिन मध्य-पूर्व और सुदूर पूर्व से अंग्रेज, अमेरिकन और यूरोपियन शक्तियों के पैर उखड़ गए, उस दिन संसार का नक्शा ही बदल जायगा। तब इन यूरोपियन देशों की शक्तियाँ सदा के लिए क्षीण हो जायँगी ।

एशिया के नेतृत्व में तीन जन-नेता हैं---मार्शल स्टेलिन, माओ और पंडित जवाहरलाल नेहरू। तीनों ही निर्भीक, स्पष्टवादी और सच्चे राजनीतिज्ञ हैं। पर इन सबमें पण्डित जवाहरलाल का नेतृत्व एशिया के लिए आशा-स्थल है।

आने वाले एशिया के युद्ध के लिए ये देश आह्वान देने वाले हैं। पीड़ित देशों की स्वतन्त्रता का युद्ध निश्चित है। एशिया का कोई भी देश गुलाम नहीं रहना चाहता। अतएव आज भारत के नेतृत्व की परीक्षा है कि राष्ट्र-मंडल की सुनहरी जंजीरें और रक्त चूसने वाले डालर कहीं उसके हाथ न बांध दें और वह एशियायी जनता के नेतृत्व में आगे बढ़ने से रुके। चाहे इस देश को अन्न मिले या न मिले या नये उद्योग-धंधों के लिए भी ऋण मिले या न मिले, पर वह इस बिना पर अपनी स्वतन्त्रता नहीं बेच सकता है। भारत आर्थिक क्षेत्र में अपनी शक्तियों से आगे बढ़ेगा, किंतु इस आधार पर उसका बलवान बनना भी श्रेयस्कर न होगा कि उसकी समृद्धि से एशिया के दूसरे देश गुलाम बने रहें।

यह तो भारत के अपने हित में है और इसलिए उसे एशियायी देशों की सहायता का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए। चीन और एशियायी देशों की स्वतन्त्रता भारत की स्वतन्त्रता की सबसे जबर्दस्त गारंटी है। एशिया के आगे वाले गौरवपूर्ण संघर्ष में, भारत कभी पैर पीछे नहीं रखेगा। वह अपनी सारी शक्ति स्वतन्त्रता और शान्ति में लगायगा।

आज एशिया खंड के सभी देश उत्सुकता पूर्वक उसकी ओर आंख लगाए हुए हैं।

८

विश्व-व्यापी महा युद्ध कब होगा ?

आज सारा विश्व दो भागों में बँटा हुआ है। एक भाग में अमेरिका, योरप के पश्चिमी राष्ट्र तथा उनके समर्थक देश हैं तो दूसरे भाग में सोवियट रूस और उसके अधीनस्थ देश हैं। अमेरिका से समानता का मोर्चा लेने वाला रूस एक शक्तिशाली देश बन गया है। संसार के सभी देश किसी-न-किसी एक गुट में हैं। अमेरिका की यह आकांक्षा है कि अधिकाधिक संसार उसके ब्लाक में आ जाय। यह होने पर ही रूस निर्बल हो जायगा। इस प्रकार विश्व रंगमंच के दो महान् खिलाड़ी अमेरिका और रूस के मध्य आज संघर्ष मचा है। इन दोनों देशों की मुठभेड़ संसार के एक-एक हिस्से में है। अमेरिका ने रूस को पछाड़ देने के लिए अपना कारूँ का खज़ाना खोल दिया है। उसके अनगिनत डालर पश्चिमीय योरप और एशिया तथा अफरीका आदि देशों में बिखेरे जा रहे हैं। अमेरिका के धन-राशि बहाने का अर्थ है कि संसार के देश कम्युनिज्म से बचे रहें और कोई देश सोवियट दल में न जा पाय। यह स्थिति बड़ी संघर्षजनक है।

अमेरिका की अपनी सैनिक तैयारी बड़ी जबर्दस्त है। उसने बेशुमार एटम बम और हाइड्रोजन बम तैयार किये। युद्ध-सम्बन्धी नए-नए हवाई जहाज और सैनिक सामान का उसे कोई अभाव नहीं है। अपनी सुरक्षा के लिए वह संसार के सभी सैनिक नाकों पर किलेबन्दी करने में लगा है। पर इतना ही नहीं, अपने गुट के बड़े-बड़े देशों को भी युद्ध के साज सामान में तैयार होने के लिए वह आगे बढ़ा रहा है। वह दूसरे देशों को

आर्थिक सहायता औद्योगिक निर्माण के लिए इतनी अधिक नहीं देता, जितनी कि---युद्ध-सामग्री से देश के सुसज्जित होने के लिए। यह बढ़ा-होड़ बड़ी जबर्दस्त और भयानक है। यद्यपि संसार के अनेक भागों में छोटे-बड़े युद्ध हो रहे हैं, किंतु यह ठंडा युद्ध संसार को अत्यन्त बेचैन किये हुए है। इस ठंडे युद्ध से एक दिन युद्ध की भयंकर ज्वालाएँ फूट निकलेंगी।

पर आश्चर्य तो यह है कि एक ओर शान्ति की पुकार है, तो दूसरी ओर युद्ध की तैयारी। संसार के महा देशों का यह कथन है कि जब तक प्रत्येक देश सैनिक तैयारी में अधिक-से-अधिक सुसज्जित न होगा, तब तक शान्ति स्थापित न हो सकेगी। यह बारूद की शान्ति क्या शान्ति की वास्तविक तैयारी है। जब संसार को शान्ति अभीष्ट है, तब यह सैनिक तैयारी क्यों और किस लिए है। घर में आग और घास का ढेर एकत्र करने पर क्या यह सोचा जा सकता है कि वह बिना जले बचेगा। यदि घर में शान्ति रखनी है तो फिर आग और घास एकत्र करने की क्या आवश्यकता है? यह तो प्रत्यक्ष युद्ध की तैयारी है।

किसी देश के पास जीवन-निर्वाह तथा अपने औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त धन न हो, किंतु आज उसे फिर भी अपने समस्त व्ययों में कमी करके युद्ध की तैयारी में अपार धन-राशि लगानी पड़ती है। उदाहरण के लिए ग्रेट ब्रिटेन को लीजिए। वहाँ की सरकार धन के अभाव में लोक कल्याण की अनेक योजनाएँ खत्म कर देती है, किंतु सैनिक पदार्थों की तैयारी में कोई कमी नहीं करती है।

योरोपियन देशों के ठंडे युद्ध से संसार में गहरी अशान्ति फैल रही है। उसमें उपयोग आने वाली सामग्री के कारण मानव के दैनिक उपयोग की चीजों में दिन-ब-दिन तेजी आ रही है। युद्ध की तैयारी के लिए भिन्न-भिन्न देशों की सारी सामग्री बटोर ली जाती है। उदाहरण के लिए युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिए रुई की खरीद होने पर संसार के बाजारों में रुई की कमी पड़ गई। यही अवस्था अन्य उपयोगी चीजों की है। यह प्रकट है कि इतनी भारी सैनिक सामग्री का उपयोग युद्ध के लिए नहीं तो फिर

किसके लिए है ।

यूरोप के युद्धप्रिय नेता अमेरिकन युद्ध-योजनाओं को आशीर्वाद दे रहे हैं । अमेरिका के साथ ये सब देश उन्मत्त हो यही सोचते हैं कि जो आगे आयगा, उसे मसोस देंगे ।

तब फिर तीसरे महायुद्ध में देरी किसलिए है ? जिस इंग्लैंड की रीढ़ दूसरे महायुद्ध के उपरान्त टूट गई है और उसका वैभव उससे छिन गया, वह आज भी खड़े होने की अवस्था में नहीं है । वह नये युद्ध के लिए सुसज्जित होने में तो लगा है,किंतु यह सोचता है कि इस निर्बल अवस्था में खड़े होने पर वह मर मिटेगा । यही अवस्था योरप के अन्य देशों की है । मार्शल-योजना के द्वारा जितने देश सम्पन्न हुए, वे युद्ध मोल लेने की स्थिति में नहीं हैं ।

मगर इतने पर भी सोवियट रूस से कहीं भी छेड़-छाड़ होने पर पश्चिमीय देश आगे बढ़ सकते हैं । सोवियट रूस और चीन के विरुद्ध तेजी से एटम की आग अटलांटिक या पेसेफिक महासागर से सुलगाई जा सकती है । इसके लिए एक नए पर्ल हारबर की रचना योरप तथा एशिया में कहीं भी की जा सकती है । कोरिया में जिस प्रकार राष्ट्र-संघ के नाम पर सेनाएँ लड़ीं, उसी प्रकार आगे भी उसके नाम पर लड़ेंगी । इस युद्ध में अमेरिका और योरप के पश्चिमीय देशों का स्वार्थ है, किंतु उसके पर्दे में यह युद्ध लोक-तन्त्र की रक्षा के लिए होगा । इस प्रकार अमेरिकन सैनिक राष्ट्र-संघ का पट्टा बाँधकर युद्ध में कूदेंगे ।

अगला युद्ध युद्धगत राष्ट्र राष्ट्र-संघ के रंग मंच पर से लड़ेंगे । अमेरिका जानता है कि राष्ट्र-संघ में उसका अक्षुण्ण बहुमत है । अनेक देश उसके साथ हैं । इस प्रकार राष्ट्र-संघ द्वारा लोक-तन्त्र युद्ध की स्वीकृति होने पर अमेरिका आक्रांता के रूप में युद्ध का संचालन करेगा ।

इस आधार पर युद्ध-संचालन के लिए संयुक्त मोर्चा निर्धारित किया गया है । इसे तुरन्त कार्यरूप में परिणत करने के लिए राष्ट्र-संघ की समिति ने यह निश्चय किया कि उस के सभी सदस्य देश सैनिक तैयारी

करें, और युद्ध-सामग्री जुटायें जो राष्ट्र-संघ के उपयोग में आ सके।

इस दृष्टि से सभी सदस्य देश अपने विधान और व्यवस्था में इस प्रकार परिवर्तन करें, जिससे कि वे युद्ध के लिए पूर्ण रूप से तुरन्त सजग हो सकें। पर जिन देशों के बीच में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हुए हों, वे संयुक्त मोर्चे की योजना को अपनी पूरी शक्ति और साधनों से आगे बढ़ायें। यह माँग है कि सब राष्ट्र युद्ध में संघर्ष करने के लिए एक पंक्ति में खड़े हों और वे संयुक्त रूप में अपनी सेनाएँ और युद्ध-सामग्री प्रस्तुत करें। इस दिशा में राष्ट्र-संघ का निर्देश है कि युद्धबंदी के लिए संयुक्त मोर्चा आवश्यक है। इस सहयोग के सिवा सभी राष्ट्र अमेरिका के शत्रुओं के विरुद्ध ठंडा युद्ध जारी कर दें। वे शत्रु पर आर्थिक युद्ध का धावा भी बोल दें। व्यापार-निरोध और आर्थिक प्रतिबन्ध जारी करने में विलम्ब न करें।

तब प्रश्न यह है कि युद्ध का शंखनाद अभी तक क्यों नहीं हुआ ? बात यह है कि रूस अपनी पूरी तैयारी में लगा हुआ है। आज उसके पास इतने साधन और सामग्री हैं कि वह अमेरिका से आगे बढ़ सकता है। अमेरिका ने विध्वंसकारी हवाई जहाजों के निर्माण में वृद्धि की, एटम और हाइड्रोजन बम भारी तादाद में तैयार किये, तथा अन्य सैनिक सामग्री का अपार संग्रह किया, वहाँ सोवियट रूस भी उस से किसी अंश में पीछे नहीं है। वह भी मुकाबले में आने के बाद युद्ध में भिड़ना चाहता है।

पर यह भी बात है कि दोनों महाराष्ट्र इस ताक में हैं कि कौन पहले युद्ध छेड़े। अमेरिका सोचता है कि रूस युद्ध छेड़े और रूस चाहता है कि अमेरिका छेड़े। इस प्रतीक्षा में युद्ध की और भी अधिकाधिक तैयारी हो रही है।

तब प्रश्न यह है कि अगला महायुद्ध किस भूमि पर होगा। योरप में या एशिया में। आज संसार के नक्शे में यूरोप में जर्मनी के सिवा परिस्थिति इतनी जटिल और संकटजनक नहीं है, जितनी कि एशिया में। एशिया में तो पग-पग पर आग लगी हुई है। और यहाँ वैसे भी आज कौन सा ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ युद्ध की ज्वालाएँ न उठ रही हों। भारत के

उत्तर में ही काश्मीर और नेपाल युद्ध के घेरे में है, उस के बाद पाकिस्तान के सीमाप्रान्त में--पख्तूनिस्तान में अन्दर-ही-अन्दर आग के शोले धधक रहे हैं। इस के आगे सारे मध्य पूर्व के अरब देशों में एक तूफान खड़ा हुआ है। ईरान से अंग्रेजों को वापस लौटना पड़ा है। मिस्र में अभी खूँरेजी हुई है और अनेक व्यक्तियों की हत्याएँ हो चुकी हैं तथा सेना विद्रोह कर चुकी है। फिलस्तीन के निर्णय केलिए अरब सिर उठाए हुए हैं। इसके अतिरिक्त योरोपियन साम्राज्यवादियों के उपनिवेश उठ खड़े हुए हैं। इस प्रकार अरबों के देश तीसरे महायुद्ध का आह्वान कर रहे हैं।

यही अवस्था सुदूर पूर्व की है। कोरिया और इंडोचीन में आग लगी है। सुदूर पूर्व के देशों में साम्यवाद का प्रबल आतंक है। उन्होंने जो अँगड़ाई ली है, और वे जो उठ खड़े हुए हैं, वह साम्राज्यवादियों के लिए लड़ने की चुनौती है। अमेरिका इन देशों को निर्जीव बनाए रखने के लिए जापान में चाहे जितना शक्तिशाली सैनिक अड्डा रखे, किंतु उसकी वही गति होगी, जो एक दिन पर्ल बन्दरगाह की हुई थी और अंग्रेजों के उस जहाजी बेड़े सिंगापुर की हुई थी, जिसके संबंध में यह अभिमान से कहा जाता था कि उसके नजदीक जो आयगा, वह भस्म हो जायगा। मगर उसका पतन होने में विलम्ब न लगा। अतएव आज भी एशिया की भूमि में जगह-जगह उथल-पुथल हो रही है, राज्य क्रांतियाँ हो रही हैं, और युद्ध के लिए आह्वान दिए जा रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका की युद्ध-सम्बन्धी नई मंत्रणाएँ जो फूट पड़ीं, वे बतलाती हैं कि युद्ध कब फट पड़ेगा। ट्रूमैन, चर्चिल और स्टेलिन सभी युद्ध-प्रिय हैं। शान्ति की तसबीह हाथ में लिये ये नेता संसार को युद्ध के पथ में आगे बढ़ा रहे हैं। शत्रु को परास्त करने के लिए डालर के देवतागण आर्थिक सहायता का विश्वास दिलाते हैं। चीन और सोवियट रूस के आक्रमणों को रोकने के लिए ये सब प्रयत्न हैं। मगर चीनी सोचते हैं कि यदि वे कोरिया में शत्रु को परास्त न कर सकें, तो वे फिर उसे कहीं न कर पायँगे। इस लिए सुदूरपूर्व में चीन तथा अन्य स्वतन्त्र देश, पश्चिमीय यूरोप की शक्तियों से जबरदस्त संघर्ष करने के लिए तैयार हैं।

विश्व की इस अशान्तिजनक स्थिति में नये भारत ने युद्ध के रोकने के लिए अपनी आवाज हर समय बुलन्द की। इस सम्बन्ध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत का महान् नेतृत्व किया। उन्होंने युद्ध की भर्त्सना की। पर राष्ट्रों के मदमस्त नायक कब उस ओर ध्यान देने लगे। इस दिशा में भारत की खिल्लियाँ उड़ाई गई। मगर इसके बावजूद भी वह अपनी आवाज प्रकट करने में पीछे नहीं रहा। उसने कहा कि शान्ति सच्चे रूप में कायम हो। अन्यथा वह अर्थ-हीन होगी। यदि हम दमन, अत्याचार और आतंक से शान्ति स्थापित करेंगे तो वह क्षणिक होगी। इस प्रकार की शान्ति भयानक युद्ध का साधन बनती है। इसलिए महात्मा गांधी ने संसार को युद्ध के विनाशकारी परिणामों से सचेत किया था। उन्होंने कहा कि हिंसा के द्वारा प्राप्त की हुई शान्ति सदा भय के तत्व मौजूद रखती है, और वह पुनः युद्ध की प्रेरणा देती है। अतएव उन्होंने कहा कि किसी ध्येय की पूर्ति के लिए हमारा लक्ष्य ही केवल महान् न हो, बल्कि हमारे साधन भी महान् होने चाहिएँ। इस अवस्था में संसार का जो निर्माण होगा, वह लोक-कल्याण की सृष्टि करेगा।

पर आज संसार युद्ध की विभीषिका में इतने आगे बढ़ चुका है कि अब उसका युद्ध के बिना छुटकारा नहीं। पर हाँ, युद्ध न हो, यदि योरोपियन देश एशियायी देशों के प्रति तनातनी न रखें, उनके साथ समानता का बर्ताव करें और अपने भाग्य-निर्णय के लिए उन्हें स्वतंत्र कर दें। मगर आज के जगत् में यह कब संभव है ? युद्ध-प्रिय नेता तो तत्काल युद्ध छेड़ना चाहते हैं। वे तो चाहते हैं कि अविलम्ब युद्ध छेड़ दिया जाय। उन में से कुछ देशों के लिए एक वर्ष भी रुकना अशक्य है। दूसरे कहते हैं युद्ध जारी करने में क्यों हिचक है, जब युद्ध का क्षेत्र तैयार है और सब साधन-सामग्री प्रस्तुत है, तब शत्रु को क्यों न मिटा दिया जाय ? मगर युद्ध यों रुका हुआ है कि आंतरिक बगावत का वातावरण सब देशों में फैला हुआ है। युद्ध के नेता यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस समय समस्त बिखरी हुई शक्तियों को यकायक नियंत्रण में रखना संभव नहीं है। यदि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका

एक स्थान पर युद्ध छेड़ते हैं, तो फिर यह युद्ध किसी झंडे के नीचे हो, चाहे अमेरिका और ग्रेट-ब्रिटेन के झंडे हों, या राष्ट्र-संघ का, उनमें कोई अन्तर नहीं है। यदि यह निर्बलता सामने उपस्थित न होती, तो पश्चिमीय देश कभी का युद्ध छेड़ देते। इंग्लैंड ही क्यों भीगी बिल्ली की तरह पिछले पैर ईरान से लौटता और क्यों स्वेज नहर और सूडान के प्रश्न पर तमाचे सहता। यह तो बिगड़ी परिस्थितियाँ हैं। आज संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमेरिका का सूर्य तेज है। इसलिए संसार में वह पहली शक्ति है। उसका पराभव करना सहज नहीं है। अमेरिका की युद्ध-प्रवृत्तियाँ संसार को युद्ध की ओर ले जा रही हैं, और जो देश निरपेक्ष हैं या निर्बल हैं, उन्हें भी वह अपनी सहायता से अपने पाश में रखने के लिए अग्रसर है। इस दिशा में उसका प्रयत्न है कि संसार के सभी नाकों पर सैनिकबन्दी हो। यह होने पर ही अमेरिका संसार के किसी भी कोने में अपने शत्रुओं से भिड़ सकेगा।

आज जहाँ से ब्रिटेन हटता है, वहाँ अमेरिका अपने पैर जमाता है। उसने मध्यपूर्व के तेल-स्रोतों पर अपना अधिकार कर लिया है। पिछले महायुद्ध में फ़रांसीसी सेनानायक वेगेंड मध्यपूर्व की भूमि से सोवियट रूस से लड़ने की योजना में था। उसके उपरान्त हिटलर ने फ्रांस को परास्त किया था। आज अमेरिका इसी भूमि से सोवियट रूस के भारी उद्योग-धन्धों के केन्द्र और तेल-क्षेत्रों पर प्रहार करना चाहता है। उसने करोड़ों डालर मध्यपूर्व में खपा दिए हैं।

पर मिस्र, ईराक, ईरान और सौदी अरेबिया के अरबों का असन्तोष और क्रोधाग्नि क्या इन कामों से दब गई? अरब राष्ट्रवादियों का कहना है कि उनका युद्ध तो अब छिड़ा है, और वह तब तक शांत न होगा जब तक कि वह विजय प्राप्त न करेंगे। यही अवस्था मलाया आदि सुदूर पूर्व के देशों की है। जिस दिन जापान ने पैंतरा बदला, उस दिन सारा सुदूर-पूर्व सुलग उठेगा।

९

पंजाब की करवटें

भारत के विभाजन के उपरान्त जहाँ पूर्वी पंजाब उत्तर का सीमा-प्रदेश बना, वहाँ पश्चिमी बंगाल और आसाम पूर्व के सीमा-प्रदेश बने। इन प्रान्तों के विभाजन की बड़ी लम्बी कहानी है। देश के दो भाग होने के पूर्व पंजाब और बंगाल में साम्प्रदायिकता की आग लगी थी। दोनों प्रदेशों में प्रतिक्रियावादी मुस्लिम लीग का शासन था। बंगाल में मुस्लिम लीग के शासन में हिन्दुओं की एक साम्प्रदायिक संस्था का प्रतिनिधि भी था। उसके शासन में दुष्काल पड़ा, सैकड़ों व्यक्ति भूख की मौत मरे। उसके उपरान्त साम्प्रदायिक झगड़े का विकट तूफान उठ खड़ा हुआ।

बंगाल में मुसलमानों का बहुमत होने के कारण वहाँ के साम्प्रदायिक हिन्दू नेताओं ने कहा कि देश के स्वतन्त्र होने पर वे सदा-सर्वदा के लिए मुस्लिम शासन में न रहेंगे। तब उनके बलिदान और त्याग का कोई महत्व नहीं होगा। ऐसी अवस्था में वे अपना कोई विकास न कर सकेंगे और न संसार में अपना प्रभुत्व तथा भ्रातृ-भाव प्रकट करने में समर्थ होंगे। इसलिए वहाँ के हिंदुओं ने हिंदू-बंगाल प्रदेश की पृथक् माँग की। मुस्लिम लीग की करतूतों को देखकर बंगाल के हिंदू हैरान थे। वे जीवन के सभी क्षेत्रों में साम्प्रदायिकता को जन्म दे रहे थे। भयानक आतंक छाया हुआ था। इस अवस्था में हिन्दू सिहर उठे थे।

पंजाब भी इसी रंग में रँगा था। वहाँ संयुक्त शासन भंग हो गया था। चारों ओर जातीय विद्वेष की आग लगी थी। सारा प्रदेश भीषण गृह-युद्ध का अखाड़ा बन गया था। बंगाल के समान पंजाब में भी सिख और हिंदू

प्रांत के विभाजन की माँग कर रहे थे। पंजाब में सिखों ने आरंभ से ही अपने लिए पृथक् राज्य की माँग की। पंजाब के हिंदुओं को नगण्य करने के लिए मुसलमान सिखों को अनेक प्रलोभन देकर खींच लेना चाहते थे। वे अपनी माँग पूरी कराने के लिए जगह-जगह साम्प्रदायिक झगड़े कर रहे थे। पंजाब और दिल्ली में शासन-व्यवस्था कमजोर हो गई थी। केन्द्रीय शासन में भी मुसलमान हिन्दू मिनिस्टर का आदेश नहीं मानते थे।

इन दो प्रान्तों के कारण सारा देश अराजकता की ओर बढ़ रहा था। कलकत्ता, नोआखली और उसके उपरान्त रावलपिंडी की घटनाओं ने हिंदुओं को विवश कर दिया था कि वे अपने प्रान्त अलग बनायँ। सिखों की हालत डावाँडोल थी। एक ओर वे सिखस्थान की माँग करते थे तो दूसरी ओर उनके हाथ मुस्लिम लीग की ओर भी बढ़े हुए थे। मगर जब उन्होंने देखा कि मुसलमानों में मिल जाने पर भी उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण न होंगी, तब वे सारे देश के साथ हुए। हिन्दुओं के साथ होने पर उन्होंने अपने पृथक् प्रान्त की माँग की। बंगाल के समान पंजाब ने भी सोचा कि उसके दो प्रान्त हों।

कांग्रेस के मस्तिष्क में देश के विभाजन की कोई योजना नहीं थी। इस की पृष्ठ-भूमि तो विभाजन के पूर्व पंजाब और बंगाल की स्वतन्त्रता के पूर्व के आन्दोलन हैं। विभाजन के पूर्व सिख-नेता मास्टर तारासिंह एक ओर सिखस्थान की माँग करते थे, तो दूसरी ओर मुस्लिम लीगियों से गठजोड़ में भी लगे थे। इसके बाद उन्होंने कहा कि स्वतंत्र पंजाब मुसलमानों के प्राधान्य में रहेगा और उन्हें सदा मुसलमानों का मुँह ताकना पड़ेगा। इसलिए अंत में उन्हें कहना पड़ा कि सिख और हिन्दू बहुमत रखने वाले पंजाब का भाग पृथक् शासन में हो। इसके लिए भिन्न-भिन्न योजनाएँ पेश की गईं। पर एक केन्द्र से प्रदेश के दो भागों का शासन कदापि संभव नहीं था।

पर यदि मान लीजिए कि अंग्रेज हमें हमारे भाग्य पर छोड़ जाते तो पंजाब और बंगाल में क्या होता ? तब कितना भयानक गृह-युद्ध होता, कितनी हत्याएँ होतीं, और कितना अधिक सम्पत्ति का विनाश होता, जिस

की तुलना में सन् १९४७ की हत्याएँ मन्द याददाश्त है। उस समय अंग्रेज इस बिना पर अड़े थे कि हम स्वराज्य लेते हैं या छोड़ते हैं। वे दो टूक बातें कहते थे। यदि हम यह कहते कि उनकी योजना मानने के लिए तैयार नहीं हैं तो उसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजी शासन जारी रहता। सच बात तो यह है कि इस विभाजन को सब दल और सब पक्ष के लोगों ने स्वीकार किया। देश को अमृत-पान करने के लिए इस गरल का भी पान करना पड़ा। इस कथन में कोई सत्यता नहीं है कि विभाजन के समय बंगाल और पंजाब के समूचे जाने की अवस्था में हिंदुओं ने उनके दो भाग स्वीकार किये। साम्प्रदायिक दृष्टि-कोण से हिंदू और मुसलमानों की दो जमातों ने जो जहर पैदा किया, उसके परिणाम स्वरूप दोनों प्रदेशों में जो गहरी खाई खोदी गई, उसका पटना कभी संभव नहीं था। अंग्रेजों ने भी इसे समझ लिया था। ऐसी अवस्था में देश के राष्ट्रीय नेताओं के हाथ निर्बल हो गए थे। यदि सारा देश एक श्रेणी में कंधे-से-कंधा भिड़ाकर खड़ा होता, और हम एक आवाज से माँग करते, तब हम जिस रूप में चाहते उस रूप में स्वराज्य मिलता। मगर जब दो दल भिखारियों की शक्ल में खड़े हुए, तब उन्हें पसन्द करने का कोई अधिकार नहीं रहता। इस विभाजित अवस्था में यही श्रेयस्कर था कि बुरी माँग का अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया जाय।

इस पृष्ठभूमि में बंगाल और पंजाब के साम्प्रदायिक नेता जन-साधारण में जहर फैला रहे हैं। दोनों ही प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से ऐसे स्थान में हैं कि यदि वे सुसंगठित और मजबूत न हों तो उससे शत्रु के मनसूबे सहज में पूरे हो सकते हैं। मगर नहीं, वे अपने ही देशवासियों के साथ जिहाद का नारा लगा रहे हैं। पूर्वीय पंजाब में मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में अकाली सिखों की हलचलें बड़ी खतरनाक हैं। पंजाब की सीमा पर एक जाति विशेष के पृथक् प्रान्त का क्या अर्थ है। जो साम्प्रदायिक अकाली सिख कांग्रेस को कोसते हैं, वे हिंदुओं के साथ नहीं रहना चाहते। यदि उनका अलग प्रान्त बन जाय, तो वह दिन दूर नहीं हो सकता, जब कि वे भारत की केन्द्रीय सत्ता को अँगूठा न दिखा दें।

विभाजन के उपरान्त सिख देश-भर में फैले हुए हैं। पर यदि सिख प्रान्त बने तो क्या देश-भर के सिख इस स्थान पर आ जायेंगे और हिंदू पंजाब से निकल जायेंगे। आज जब पूर्वीय पंजाब में सिखों का कहीं भी बहुमत नहीं है, तब उनके पृथक् प्रदेश की माँग चाहे भाषा की दृष्टि से हो या साम्प्रदायिकता की दृष्टि से, सारे देश के लिए खतरनाक ही नहीं अपितु उनके अपने हित के लिए भी वांछनीय नहीं है। सीमावर्ती प्रान्त साम्प्रदायिक रूप धारण करे और वह निर्बल हो तथा उसके कार्य-कलाप सारे देश से भिन्न हों तो सोचिए कि इतिहास की पुनरावृत्ति न होगी। बंगाल और पंजाब के प्रदेशों को यदि केन्द्र ढील दे दे, तो वे हमारे देश की पुरानी कहानी दुहरायेंगे। जिस प्रकार अतीत में हमारी केन्द्रीय एकता के अभाव में, देश में शत्रु को आगे बढ़ने में विलम्ब न लगा, वही फिर होगा। अतएव यह मानना पड़ेगा कि इन प्रतिक्रियावादियों की शक्तियाँ पाकिस्तान और अन्य विदेशी शक्तियों के हाथ मजबूत करती हैं। बाहरी शक्तियाँ चाहे पाकिस्तान हो या अंग्रेज तथा कोई अन्य देश, इस देश का अपहरण करने में देर न करेंगे।

हम तो देखते हैं कि आए दिन पंजाब और बंगाल तथा आसाम की सीमाओं पर पाकिस्तानियों के छुट-पुट हमले होते रहते हैं। पाकिस्तानियों के काश्मीर में हमले जुदी चीज हैं, किंतु पंजाब में जब तब हमले होना हमें यह सचेत करता है कि यदि हमारे सीमा प्रान्त के राज्य पंजाब और बंगाल शक्तिशाली नहीं हुए तो हम अपनी स्वतन्त्रता खो देंगे। निरन्तर की अशान्ति, युद्धमयी स्थिति में देश पनप नहीं सकता।

मगर पंजाब में राष्ट्रीयता सर्वथा कुचली नहीं गई है। अकाली नेता और उनके अनुयायियों के सिवा पंजाब के सच्चे सिख और हिंदू सारे राष्ट्र के साथ हैं। यह भी देखा गया कि पंजाब का किसानवर्ग साम्प्रदायिकता से कोसों दूर है। किसान सिख हो या हिंदू, उस पर साम्प्रदायिकता का कोई रंग नहीं चढ़ा है। उसकी समस्या तो आर्थिक है। इसलिए नव निर्वाचन में पंजाब के ग्रामीण किसानों ने साम्प्रदायिक नेताओं को मत देने की अपेक्षा अपने मत कम्युनिस्टों को दिये। उन्होंने कहा कि आज का प्रश्न रोटी और कपड़े का

है, न कि धर्म और संस्कृति का। धर्म और संस्कृति की बात मन्दिर और गुरुद्वारे तक ही है।

पंजाब में दो शक्तियाँ दो करारों पर खड़ी हैं, एक ओर साम्प्रदायिकता जोर मार रही है तो दूसरी ओर रूसी साम्यवाद। यदि इन दलों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई तो आगे क्या होगा? निर्बल पंजाब भारत के लिए एक भार होगा। विभाजन के उपरान्त सिख-शक्ति विशृङ्खल हो गई है और उसके मन, विचार तथा भावनाएँ एकबारगी बदल गई हैं। प्रश्न तो यह है कि क्या सिख और हिंदू दो हैं। क्या गुरु गोविन्दसिंह ने गौ और ब्राह्मण की रक्षा के लिए युद्ध नहीं किया था? और क्या गोविन्दसिंह हिंदी भाषा के लेखक नहीं थे? उनका सारा प्रयत्न तो हिंदुओं को मजबूत करना था। गुरुओं ने हिंदुओं से पृथक् किसी सम्प्रदाय विशेष की रचना नहीं की थी। उन्होंने हिंदुओं के बीच में उन लोगों को सिख बनाकर सैनिक वेश-भूषा में खड़ा किया था कि वे सारे देश की स्वतन्त्रता और हिंदू जाति की रक्षा के लिए लड़ें।

पर आज पंजाब कहाँ खड़ा है? आज सारे राष्ट्र की वाणी में उसकी आवाज जुदा है, कार्य-पद्धति जुदा है और मार्ग जुदा है। पंजाब का विषाक्त वातावरण और लोगों की अनेकता सारे राष्ट्र के लिए घातक है।

१०

बंगाल हिंसा के पथ में

कभी यह कहा गया कि 'आज बंगाल जो सोचता है, सारा भारत उसे कल सोचता है।' आरम्भ से ही भारत के राजनीतिक आन्दोलन को बंगाल से प्रेरणा मिली। अंग्रेजों के प्रति विद्रोह और राजनीतिक हलचलों का आरम्भ भी इसी प्रांत से हुआ। आज का बंगाल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और देशबन्धु चितरंजन दास का निर्माण किया हुआ है। वह भी एक दिन था, जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का चित्र रखना भी हर किसी के लिए राज-द्रोह था। उन्होंने सदा उग्र आन्दोलन का संचालन किया, पर हाँ जीवन के संध्या-काल में आकर वे नरम बन गए थे। इतने पर भी देश की उनके प्रति श्रद्धा कम नहीं हुई थी।

देशबन्धु दास भारत के महान् राजनीतिज्ञ थे। वे राजनीतिक क्षेत्र के बड़े रणबाँकुरे, निर्भीक और निडर नेता थे। वे शत्रु को चैन नहीं लेने देते थे। उनके कूटनीतिक मोर्चे के आगे नौकरशाही सदा हैरान रहती थी। हिंसा हो या अहिंसा—उनके लिए दोनों एक चीज थीं। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन की वे एक धुरी थे। उस काल में भी वे हिंसात्मक दल को सहायता देते थे। उनका लोकमान्य तिलक-जैसा विचार था कि किसी भी उपाय से ध्येय की पूर्ति की जाय। अपनी शक्ति को किसी एक सीमा में बाँधकर न रखा जाय। सहस्रों क्रान्तिकारी युवक उनसे रक्षा पाते थे। सरकार उनका पता नहीं लगा पाती थी किंतु वे सबसे मिले थे। अनेक बार उन्होंने अपनी इस जानकारी की उद्घोषणा की। गोपीनाथ शाह की फाँसी होने पर जब उन्होंने हुतात्मा के देश पर बलिदान होने का समर्थन किया, तब कांग्रेस

के नेता बिगड़ गए थे। देशबन्धु राज-क्रान्ति के साक्षात् अवतार थे। उनके जीवन-काल तक बंगाल में नौकरशाही कभी पनप नहीं सकी।

बंगाल में अंग्रेज सदा आतंकित रहे। बमबाजी में अग्रणी बंगाली नवयुवकों ने देश को गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों के प्रति कभी दया नहीं दिखाई। यही कारण था कि सहस्रों क्रान्तिकारी युवक केम्पों में बन्द रहे मगर वहाँ भी उपद्रव हुए, लाठियाँ चलीं और गोलियाँ दगीं। मगर वे तो अपने प्राण हथेली पर लिये हुए थे। वे क्या इस आतंक से दब जाते। पर देखा गया कि वे उल्टे उल्लसित होते। इस प्रकार बंगाल सदा अशांत रहा।

स्वाधीनता के उपरांत भारत की इस गौरवमयी भूमि का हाल बेहाल हो गया। दो टुकड़े होने से उसकी श्री हतप्रभ हो गई। जिस पूर्वी बंगाल में देश के अनेक रत्न उत्पन्न हुए, वह पाकिस्तान में चला गया। और पश्चिमीय बंगाल विपत्तियों का घर बन गया। असंतोष तो पहले से मौजूद था। अंग्रेजों के जमाने में जो अकाल पड़ा, उसमें बेशुमार जानें गईं। कलकत्ता *लाशों का ढेर बन गया था। मुस्लिमलीगी शासन जब कुछ न कर सका, तब* मरती हुई जनता विद्रोह करने पर उतर आई। पर दुर्भाग्यवश विपरीत परिस्थितियों में उसने विकट साम्प्रदायिक रूप ग्रहण किया। फिर क्या था, सारे प्रदेश में आग लग गई। उसी काल से बंगाल के हिन्दुओं ने अपने लिए स्वतंत्र प्रदेश की माँग की। कुछ मुसलमानों ने स्वतंत्र बंगाल की माँग की। जो न तो पाकिस्तान में शामिल हो और न भारत में। और भी दूसरी-दूसरी योजनाएँ बनीं। पर इन सबमें अनेक हिन्दुओं ने मुसलमानों का समर्थन किया। ऐसी अवस्था में जब देश का विभाजन हुआ, तब बंगाल में अमानुषिकता यकायक मुँह बाकर नहीं खड़ी हो गई; क्योंकि नोआखली में नर-हत्या-कांड हो चुका था। महात्मा गांधी तथा अन्य नेता शांति-स्थापना के लिए अग्रसर थे। इसके उपरांत कलकत्ते में साम्प्रदायिक रक्त-प्रवाह हुआ। मुसलमान और हिन्दू पशुओं के समान लड़े।

मगर तब से पश्चिमी बंगाल और पूर्वीय बंगाल दोनों में शांति नहीं है। पूर्वीय बंगाल के मुसलमानों में फिर साम्प्रदायिकता का उदय हुआ और

उन्होंने हिन्दुओं के विनाश के लिए कोई प्रयत्न अवशेष न छोड़ा। उनके मकान लूटे, सम्पत्ति छीनी, स्त्रियों का अपहरण किया, लोगों को विधर्मी बनाया। उन्होंने काश्मीर का बदला लिया और अनेक समझौतों के बावजूद हिन्दुओं को बड़ी भारी संख्या में खदेड़ दिया। पूर्वी बंगाल के हिन्दू जब पश्चिमी बंगाल में शरणार्थी बनकर आए, तब उनकी अवस्था देखकर हर एक बंगाली युवक चीख उठा। उसकी धमनियों का रक्त उबल पड़ा। आज भी बंगाल के युवकों में आग दबी पड़ी है। सारे प्रदेश की स्थिति डाँवाडोल है। पाकिस्तान में अस्सी-नब्बे लाख हिन्दू जो बचे हैं, वे भी संकटों के बीच में झूल रहे हैं। वे कब तक बचे रहेंगे। बकरे की माँ कब तक भला मनायगी। दोनों प्रदेशों की सीमा पर नित नए झगड़े, उपद्रव और हत्याएँ प्रतिदिन की बात है। मगर यहीं तक गनीमत नहीं है, दिन-ब-दिन भारत की जमीन छीनी जा रही है।

दुर्भाग्यवश बंगाल के हिन्दुओं में प्रांतीयता का भी जहर फैला हुआ है, वे चाहते है कि पश्चिमी बंगाल का क्षेत्र बड़ा हो जाय। अतएव वे यह माँग करते हैं कि बिहार का वह भाग बंगाल को मिल जाय, जिसमें बंग-भाषा-भाषियों की आबादी है। प्रान्तीयता का यह विष भाषा के आधार पर सारे देश में फैला हुआ है। भाषा के आधार पर जहाँ पंजाब में पंजाबी भाषा के प्रान्त की माँग है, वहाँ बंगाल समूचे बंग-भाषियों को अपने प्रदेश के तले चाहता है। दक्षिण भारत में हैदराबाद, और मद्रास तथा मध्यप्रदेश में भाषाओं के आधार पर प्रान्त-निर्माण की समस्याएँ हैं। देश के स्वाधीन होने पर यह जहर बड़ा घातक है। इसी प्रांतीयता ने देश की स्वाधीनता का विनाश किया और आज भी देश उसी ओर जा रहा है। देश के मंगल के लिए क्या हम उसका त्याग नहीं कर सकते।

प्रान्तीयता समाज का कोढ़ है। विभाजन के उपरांत देश ने पृथक् निर्वाचन से मुक्ति पाई, तो अब राष्ट्र की एकता के स्थान पर प्रान्तीयता सारे समाज को ग्रस लेना चाहती है। इन पृथक् भावनाओं से देश सुदृढ़ नहीं होगा।

बंगाल की अनेक समस्याएँ हैं। हमें यह मानना चाहिए कि बंगाल में

राजनीतिक चेतना है। वहाँ साम्प्रदायिक संस्थाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। नए निर्वाचन ने यह स्पष्ट कर दिया कि बंगाल में गर्म प्रवाह किस तेजी से अपना रास्ता पकड़ रहा है। यह गर्म प्रवाह साम्यवाद के रूप में है। उनके लिए शांति और अहिंसा कोई चीज नहीं है। उनकी कार्य-पूर्ति का साधन भयानक तोड़-फोड़ और हत्याएँ हैं। शासन के प्रति-विद्रोह और बमबाजी से प्रदेश मुक्त नहीं है। नये मतदान पर कितनी भयानक बमबाजी हुई।

बंगाल ने मतदान से प्रकट किया कि वह किस दिशा में आगे बढ़ रहा है। कांग्रेस के विजय होने पर भी यह प्रदेश आर्थिक प्रश्नों के हल के लिए—उस ओर अपनी दृष्टि लगाए हुए है। यदि कांग्रेस आशातीत सफल न हुई तो उसके लिए बीच का दूसरा कोई मार्ग न होगा। उस समय सारा प्रदेश साम्यवाद के प्रभाव में आ जायगा। इस प्रकार यह राज्य दो कोनों में झूल रहा है। वहाँ साम्प्रदायिक तत्त्वों को कोई स्थान नहीं है। जिस प्रदेश में प्रबल राजनीति है, वहाँ साम्प्रदायिकता का नेतृत्व बुझते हुए दीपक के समान है।

पश्चिमी बंगाल पूर्व का सीमाप्रान्त है। भावी उथल-पुथल का यही प्रदेश है। वहाँ कम्युनिस्टों का संगठन, बड़ा जबर्दस्त है, उनका प्रचार बड़ा शक्तिशाली है। अतएव प्रांत की राजनीति में साम्प्रदायिक भावनाओं का कोई स्थान नहीं है। वहाँ की समस्याएँ तत्काल हल हों तो प्रदेश में कांग्रेस की शांतिमयी राजनीति चल सकती है, अन्यथा साम्यवाद प्रबल हो उठेगा। यदि पूर्वीय बंगाल में हिन्दू सुखपूर्वक नहीं रह सकते तो इस सम्बन्ध का भूमि लेकर या आबादी की अदला-बदली से किया जाय। यह निश्चय है कि वहाँ हिन्दू रह न सकेंगे। किसी भी उग्र समस्या पर उन पर आए दिन संकट आयँगे। उनकी आर्थिक समस्याओं का हल करना परमावश्यक है। अन्यथा, यह स्पष्ट है कि शांतिमयी राजनीति के दायरे से प्रदेश निकल जायगा और बंगाल की यह हवा सारे देश में फैलेगी। बंगाल ने अतीत में भी तो सारे देश का नेतृत्व किया है। पर उसका हिंसात्मक नेतृत्व सारे राष्ट्र के लिए भयावह होगा।

किसी भी प्रदेश में प्रान्तीय भावनाएँ न पनपने पायँ। प्रत्येक प्रदेश को

यह महसूस हो कि सारा देश उनका अपना प्रदेश है। बंगाल की परिधि से समूल नष्ट करना सारे देश के लिए हितकर है। इसके उपरांत लोगों में व्यवस्थित जीवन हो। सीमावर्ती किसी प्रदेश में अशांति और उपद्रव के तत्त्व अत्यन्त खतरनाक हैं। यह कोई असंभव नहीं है कि वे विद्रोह करके शासन का तख्ता उलट दें, बागी बन जायँ और किसी दूसरे राज्य में मिल जायँ। साम्यवाद हो या कम्युनिज्म कोई भी तत्त्व हों, उनका ध्येय अपने देश की ओर हो, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उनकी निगाह कभी किसी विदेशी राष्ट्र की ओर न हो। यदि यह न हुआ तो हमारी स्वाधीनता क्षणिक-मात्र होगी और फिर हम जहाँ के तहाँ रह जायँगे।

अपने ही देश में तोड़-फोड़ और हिंसा के कार्यों से क्या तात्पर्य है। जो व्यक्ति अपने राजनीतिक विरोधियों पर बमबाजी करते हैं, उनके प्राण लेते हैं, वे राष्ट्र का अहित करते है। हम पश्चिम से समाज के आर्थिक ढाँचे के निर्माण की बातें सीखें, पर उन्हें अपने देश के अनुकूल अपनायँ। हमें न तो स्टेलिन के लिए और न ट्रूमैन के लिए गर्दनें कटानी हैं। हमारे सामने तो महात्मा गांधी और देशबन्धु चितरंजन दास का महान् नेतृत्व उपलब्ध है। हम इन विभूतियों का परित्याग करके क्यों विदेशों के कंकर-पत्थरों की ओर दृष्टि डालें। राष्ट्र के लिए समाजवाद कोई भयावह नहीं है, क्योंकि समाज की नई रचनाएँ गांधीवाद और समाजवाद दोनों का एक लक्ष्य है। सिर्फ कार्य-प्रणाली का मतभेद है। गांधीवाद इस देश की चीज है, क्यों न हम उसे सफल बनाकर संसार के लिए मार्ग बतायँ। जो बातें गांधीवाद में नहीं हैं, उनके स्थान पर हम कम्युनिज्म के सिद्धान्तों को लें। कम्युनिज्म कोई बुरी चीज नहीं है। वह एक महान् देश में सफल हो चुका है, किन्तु उसकी तोड़-फोड़ और हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ इस देश के लिए घातक हैं।

हम यह भी देखें कि कम्युनिस्ट चीन ने नये निर्माण में हिंसात्मक उपायों से जरा काम नहीं लिया। देश को स्वाधीन करते समय तक उनके शस्त्र उठे हुए थे, फिर चीनियों ने तोड़-फोड़ और हिंसा को नहीं अपनाया। समाजवादी चीनियों ने अपने विरोधी दलों से बड़ी शालीनता से व्यवहार किया।

बंगाल के युवकों की ओर आज सारा ध्यान लगा है। भारतीय जनता सोचती है कि चितरंजन का बंगाल एक बार फिर सारे देश का नेतृत्व करेगा। राष्ट्र के इन युवकों के हाथों में ही देश के गौरव की बागडोर है।

११

सम्प्रदायवादी किस करार पर खड़े हैं ?

देश के विभाजन के उपरांत यह सोचा गया था कि अब साम्प्रदायिकता का अंत हो गया। मुसलिम लीग और अंग्रेज, जिन्होंने इस ज़हर का बीज बोया था, दोनों ही के तत्व इस देश से विदा हो चुके। यह प्रकट है कि साम्प्रदायिकता का सूत्रपात मुसलिम लीग से हुआ। उसी के द्वारा वह फूली-फली और उसका जो विघातक परिणाम हुआ, उसे भी हमने देखा। परन्तु हमने यह भी देखा कि मुसलमानों की प्रतिक्रिया हिन्दुओं पर भी पड़ी और उनका एक भाग उसी के अनुरूप साम्प्रदायिकता के रंग में रँगा। हमने सोचा कि अब मुसलिम लीग पाकिस्तान में जा बसी और इस देश में उसकी कोई शक्ति नहीं रही तो अब हिन्दू साम्प्रदायिक संस्थाएँ समाज के पुनर्संगठन में लगेंगी। जिन बातों को लेकर पहले दो जातियों में संघर्ष होता था, वे अब एक नहीं रहीं। अब न तो सीटों के बँटवारे का प्रश्न है और न प्रतिनिधित्व का ही। सर्वत्र हिन्दुओं का बहुमत है।

ऐसी स्थिति में भी हिन्दू साम्प्रदायिकता उभरे तो उसका क्या परिणाम होगा ? यही न कि अन्य सम्प्रदायों के लोग फिर उसी रंग में सिर उठायें। अंग्रेजों के शासन में जिस आधार पर विभिन्न साम्प्रदायिक संस्थाएँ पनपीं, उनकी आज क्या आवश्यकता है। अतएव यदि किसी जाति विशेष की साम्प्रदायिक संस्था सिर उठाय, तो यह निश्चय है कि दूसरी जातियों की संस्थाएँ भी उठे बिना न रहेंगी। यदि हिन्दुओं की साम्प्रदायिक संस्थाएँ समाज निर्माण के कार्य में लगें तो इस देश में विद्वेष का जहर कभी

न फैले। मगर जब हिन्दू-संस्थाएँ ही साम्प्रदायिकता के नारे लगायें, तो यह स्वाभाविक है कि इस देश में दूसरी साम्प्रदायिक संस्थाएँ पनपेंगी। पिछले दिनों में हमने देखा कि कितनी साम्प्रदायिक संस्थाएँ आगे आईं। मुसलमान, सिख और अछूत आदि सभी एक महा राष्ट्र का विघटन करने के लिए अग्रसर हुए। यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। हमारा तो यह कर्तव्य था कि हम सभी जातियों और सम्प्रदायों में से पृथक्ता और जातीय भेद-भाव मिटायें। सारे राष्ट्र में एक जबर्दस्तसामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करें, जिससे कि एक नए समाज का प्रादुर्भाव हो।

इतना ही नहीं, इस देश में बसने वाले अन्य धर्मावलम्बियों को भी एक जातीयता के भावों में प्रभावित किया जाय। उनकी अभारतीयता मिटाई जाय। समूचा राष्ट्र एक भावना से ओत-प्रोत हो। दूसरे देशों ने स्वाधीनता प्राप्त करके एक राष्ट्रीयता के आधार पर अपना नवनिर्माण किया। आज यदि दूसरे धर्मावलम्बी हमसे जुदा हैं और विभिन्न भावनाएँ रखते हैं, तो इसमें दोष किसका है? हमने ही उन्हें अपने से दूर रखा, अपने को ऊँचा समझा और उन्हें नीचा। यदि हम उन्हें मिलाते और अपने संस्कारों में उन्हें हजम कर लेते, तो हिन्दू जाति क्यों कभी निर्बल होती। पर हमारा सामाजिक हाजमा कमजोर पड़ गया। हम पथ-भ्रष्ट हो गए। चीन में देखिए, भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वाले चीनी हैं—वहाँ बौद्ध हैं, मुसलमान और ईसाई भी हैं। पर वहाँ धर्म-परिवर्तन से उनके नामकरण, वेश-भूषा, और भाषा आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। हमें एक चीनी के नाम से सहसा पता नहीं लगता कि वह बौद्ध है या ईसाई तथा मुसलमान। धर्म-परिवर्तन से संस्कार नहीं बदलते। हमें भी अपने देश में यही स्थिति लानी चाहिए। यदि सारा राष्ट्र इस ओर प्राणपन से झुक जाय तो वह संसार में महा बलवान हो सकता है।

हमारे धर्म और संस्कृत का यह ध्येय हो कि हम समाज का पुनर्निर्माण करें। पर यदि साम्प्रदायिक भावना से धर्म को राजनीति में मिलाया जाय, तो उससे ऐसा विषमय वातावरण पैदा होगा, जो इस देश की स्वाधीनता

को नष्ट कर देगा। उससे हमारा देश आगे नहीं बढ़ेगा। यदि हम फिर साम्प्रदायिक भावों को पनपने देंगे तो जिस अवस्था में से हम गुजरें हैं, उसका हमें फिर सामना करना पड़ेगा। भारत में बसने वाली दूसरी जातियों में कभी साम्प्रदायिकता उत्पन्न न होगी, यदि हम उससे दूर रहेंगे। यदि हम अतीत में मुस्लिम लीग की नकल न करते,तो मुसलिम साम्प्रदायिकता अपनी मौत आप मर जाती। मगर हम आज फिर वही करने जा रहें है, जो कल मुसलिम लीग कर रही थी। हम धर्म और संस्कृति का प्रचार केवल इस देश में ही नही करें, वरन् विदेशों में भी करें। इस दिशा में हिन्दू संस्थाएँ महान् कार्य कर सकती हैं, यदि वे विशुद्ध भावों से देश-विदेश में सांस्कृतिक प्रचार करें। धर्म और संस्कृति के प्रचार को कौन रोकता है। पर इनका राजनीति में कोई स्थान नहीं है।

देश की राजनीति हम विशुद्ध रखें जिससे कि कोई भी सम्प्रदाय राष्ट्र को निर्बल न बना सकें। राजनीति के रंगमंच पर हम सारे समाज के आधार पर विचार करें। यदि हमें भारत की उन्नति अभीष्ट है, तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम उसके हर पहलू पर विचार करें। राष्ट्र के नव-निर्माण का केवल एक मार्ग ही नहीं है, अनेक मार्ग हैं। हिन्दुओं का सामाजिक संगठन अतीत काल में बड़ा शक्तिशाली था। उसने अनेक जातियों को मिलाया। पर आज हम उन सिद्धान्तों को भूल गए। समय के परिवर्तन के अनुसार हमने अपने समाज का ढाँचा नहीं बदला। हमने नहीं सोचा कि समय एक-सा नहीं रहता है, वह परिवर्तनशील है।

राष्ट्र के इस नवजागरण काल में हम धर्म के असली तत्त्व को समझें। धर्म के नाम पर हम राष्ट्र एवं समाज का विकास न रोकें। धर्म और संस्कृति के नाम पर समाज की प्रगति रोकना कमीनापन है। धर्म एक महान् तत्त्व है, जिसका सम्बन्ध ईश्वर और आत्मा के मध्य में है। वह संसार के झगड़े की चीज नहीं है। आज यदि धर्म के नाम पर हिन्दू साम्प्रदायिकता पनपेगी, तो कल अन्य सम्प्रदायों को भी उठने का अवसर मिलेगा।

आज की अवस्था में जहाँ हमारा समाज पक्षाघात से पीड़ित है, वहाँ धर्म से विक्षिप्त भी है। एक अपंग है, तो दूसरा घेरे बनाता एक पग से दौड़ लगा रहा है। इसलिए आज हमारी स्थिति निर्जीव बन गई है। आज बाह्य और आंतरिक भावनाओं ने धर्म को ऐसी परिस्थिति में पहुँचा दिया है, जहाँ रूढ़ियाँ निष्ठा बन गई हैं। इस खंडहर का द्वारपाल अर्थ बन गया है। अवस्था यह है कि धर्म ने यदि अपने-आपको कूप के समान पत्थरों से बाँध लिया है तो राजनीति ने धरती के ढाल पर पड़े पानी के समान अनेक प्रवाहों में शक्ति को बिखरा दिया है।

प्रश्न यह है कि क्या हम आज पाकिस्तान का अनुगमन करें। अथवा अपना स्वतंत्र मार्ग निर्धारण करें। यदि हम अपने देश में साम्प्रदायिकता को पनपने देंगे तो उससे किसका हित होगा, हमारा या हमारे शत्रुओं का। इसलिए जो लोग धर्म या संस्कृति के नाम पर राजनीतिक नेतृत्व करना चाहते हैं, वे इस देश के शत्रु हैं, वे राष्ट्र को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। धर्म और संस्कृति के प्रचार को कोई रोकता नहीं, उसके लिए द्वार खुला है, किन्तु उसके लिए राजनीतिक क्षेत्र नहीं है। विशुद्ध राजनीति का धर्म और सम्प्रदाय से कोई सरोकार नहीं है। शास्त्र तो सभी धर्म और सम्प्रदायों से तटस्थ है। पर इसका वह अर्थ नहीं है कि राष्ट्र धर्म-विहीन तथा संस्कृति-हीन हो। कदापि नहीं, हमारा राष्ट्र सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्ण उन्नति करे, राष्ट्र के सभी अंग विकास पायें और जहाँ तक संभव हो, वे एक दूसरे के समन्वय में आयें। उनकी पृथक्ता और भेद-भाव राष्ट्र के लिए घातक है। यह कार्य राजनीतिक क्षेत्र का नहीं है।

सामाजिक दृष्टि से सारी हिन्दू जाति ही नहीं, अपितु समस्त राष्ट्र एक सूत्र में आबद्ध हो जाय, तो यह देश इतना सबल हो सकता है कि उसकी ओर फिर कोई आँख उठा कर नहीं देख सकता। पर यदि देश साम्प्रदायिक प्रवाह में बहा, तो इतिहास की पुनरावृत्ति होगी। हम अपनी स्वाधीनता को खो बैठेंगे। हमारा कर्तव्य है कि जो साम्प्रदायिक तत्त्व हैं, उन्हें न पनपने दें। दूसरी जातियों को भी हम महान् आचरण से अपने निकट लायें। हम संसार

की ओर जरा निगाह उठायें कि कल की पिछड़ी जातियाँ हमसे कितनी आगे बढ़ गई हैं और उन्होंने अपने समाज का किस प्रकार नव-निर्माण किया है।

यह अवसर है कि सम्प्रदायवादी अपना मार्ग बदलें, उनमें चेतना आय कि वे किधर जा रहे हैं। अब फिरकापरस्ती का समय नहीं है। अब तो एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण की वेला है, जिसमें कोई साम्प्रदायिक तथा जातीय भेद-भाव उत्पन्न न हों। हिन्दू हो या मुसलमान तथा सिख, सब प्राणमय हो एक आवाज़ करें। राष्ट्र से भेद-भाव के तत्व सबमें मिट जायँ। हमारा संगठन इतना शक्तिशाली हो कि वह संसार के लिए अनुकरणीय हो।

पर क्या साम्प्रदायिक संस्थाएँ अपना मार्ग बदलेंगी? वे देखें कि जब-जब हम फिरकापरस्ती में पड़े, तब-तब हमने अपनी स्वाधीनता खोई। इसलिए हम क्यों पाकिस्तान की नकल करें। हम अपना ऐसा निर्माण करें कि एक दिन वह उलटे हमारे मार्ग पर आए। संसार के किसी देश में आज साम्प्रदायिकता का प्राधान्य नहीं है। अतएव, इन जाति विशेष को पृथक् राष्ट्र मानकर उसका नारा न लगायँ जिससे कि अन्य जातियाँ हमसे दूर रहें और देश सर्वनाश की ओर जाय।

भारतीय राष्ट्र के लिए यह परीक्षा का समय है कि वह किधर जायगा,—उत्थान की ओर या पतन की ओर। सम्प्रदायवदी ऐसी करार पर खड़े हैं कि वे देश को ले डूबेंगे। पर यदि वे अपनी शक्तियाँ समाज के उत्थान में लगायँ जिससे कि राष्ट्र का एकीकरण हो तो देश का भविष्य मंगलमय हो सकता है। पर क्या यह संभव है? क्या उनकी शक्तियाँ फिरकापरस्ती से बाहर राष्ट्र-निर्माण में लगेंगी। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने देश में विनाशकारी तत्त्व न रहने दें। उनके समूल नाश में ही राष्ट्र का अभ्युदय निहित है।

१२

अखंड भारत का नारा और युद्ध

अगस्त १९४७ भारत के लिए एक महान् परिवर्तन का दिन था, इस दिन ही देश दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र हुआ था। अंग्रेजों के लिए यह देश एक अमानत था और जब वे उसे भंग करने की चर्चा करते थे तब हमें यह सन्देह होता था कि कहीं वे मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं, हमें और संसार को धोखा तो नहीं देना चाहते हैं।

पर अंग्रेजों का भारत को खाली करना न तो ब्रिटेन के डेल्टा से रोमनों का वापस हटना था और न तुर्क और बलगेरिया के मध्य का कोई सौदा था। फिर यह असमर्थता का कार्य भी नहीं था, क्योंकि हमारे भारत छोड़ो आन्दोलन के बावजूद इंग्लैण्ड ने दूसरे महायुद्ध में विजय प्राप्त की थी। प्लासी के युद्ध के दूसरे दिन ब्रिटेन ने इस देश में अधिकार प्राप्त किया था। उसी प्रकार १९४७ के अगस्त के मध्यकाल में केवल ऐतिहासिकों के लिए, सारे संसार के लिए आश्चर्य पैदा करने वाला एक ऐसा काम हुआ, जिसकी पूर्व काल में कोई समता नहीं पाई गई कि एक देश स्वेच्छापूर्वक अपने साम्राज्य का अन्त करता है और एक शासक जाति अपने तईं शासन के पद से हटती है।

इस राजनीतिक स्वाधीनता में हँसी और रंज दोनों था। विभाजन-काल के भयावह परिणामों के वर्णन में कोई सार नहीं है। एशिया के इस महा देश में बसने वाले हिन्दू और मुसलमानों के हृदयों में उन दुःखद परिणामों की गहरी जड़ें जम गई हैं। यह प्रकट-सा दिखाई दिया कि भारत माता अपने अंग-विच्छेद पर क्रोधित हो—दुर्गा की तरह संहार करने के

लिए प्रकट हुई हो। माँ के मस्तक भञ्जन पर उसके बालक रक्त-पान कर रहे हों, शैतान और देवता के आँसू एक में मिलकर सहस्र-सहस्र लोगों की दुर्दशा के कारण बने। निश्चय ही स्वाधीनता रक्त की प्यासी होती है पर वह रक्त शहीदों का होता है, और जिसमें शत्रु का भी रक्त मिला होता है। पर इस परिवर्तन में तो निर्दोष व्यक्तियों का रक्त बहा, और जिस सम्मान को हमने खोया, वह था स्त्री जाति का गौरव। इतिहास इस बात पर खेद प्रकट नहीं करता कि कितने लोगों के प्राण गए, अपितु उसका ध्यान तो उस ओर जाता है कि कितने भयानक अत्याचार हुए और कितने लोग निर्वासित हुए।

इस स्वाधीनता के उपरान्त दूसरे दिन हमने आँखें मलीं तो पाकिस्तान का क्या दृश्य देखा। पाकिस्तानी शहरों की गलियों में स्वतंत्रता किस प्रकार मनाई गई। अतीत में भारत पर आक्रमण करने वाले प्रत्येक आक्रान्ता को पुनर्जीवन दिया गया। उसमें चंगेज़ खाँ भी याद किया गया। इब्नउल-अथिर ने लिखा है कि उसने यह कामना की कि उसकी माँ यह दृश्य देखने के लिए उसे जन्म न देती, कि जिसमें इस्लाम का इतना घोर पतन हुआ और मुसलमानों का वध चंगेज़ के नेतृत्व में काफिर मंगोलों द्वारा हुआ। यह वही चंगेज़ था जिसे मंगोलिया के बौद्धों ने एक अवतार माना। पर हिन्दुओं पर प्रहार के लिए कोई भी लकड़ी अच्छी हो सकती है।

मुसलमान खुश थे कि उन्हें किस आसानी से पाकिस्तान मिल गया। इसलिए उन्होंने लाहौर, कराची और ढाका की गलियों में नारे बुलन्द किये कि 'हँस के लिया है पाकिस्तान और लड़कर लेंगे हिन्दुस्थान।' पाकिस्तानियों की इस पुकार में कोई राज छिपा रहा, क्योंकि अंग्रेज भारत छोड़ते समय मुस्लिम लीग के कानों में कुछ और ही कह गए थे, जो उन्होंने कांग्रेस के कानों में नहीं कहा। पर यह बात छिपी नहीं रह सकी। हैदराबाद और काश्मीर के रूप में तुरन्त ही हमारे सामने आई। यदि इस बात पर यकीन किया जाय तो भविष्य में क्या न होगा। अंग्रेजों की सहानुभूति और पक्षपात पाकिस्तान के प्रति हैं, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है।

जिन्ना ने पाकिस्तान का जो नक्शा बनाया था, वह आज भी पाकिस्तानियों का स्वप्न है। ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल काश्मीर के मसले में पाकिस्तान के साथ है, क्योंकि अंग्रेजों को पाकिस्तान से कोई गोपनीय इकरार पूरा कराना है। काश्मीर और देशी रियासतों के भारत में मिलने से अंग्रेजों की राजनीतिक चाल पलट गई। इससे पाकिस्तान नाराज हो उठा। इस पर भी मुसलमानों ने पाकिस्तान की स्थापना को इस्लाम का दूसरा पुनर्जन्म माना। पश्चिमी पाकिस्तान में तो हिन्दू रहने नहीं पाए, किन्तु पूर्वी पाकिस्तान में जो हिन्दू थे उनकी अवस्था वही थी, जो मुहम्मद के समय में मदीना के रहने वालों की थी। उस समय का मदीना आज का ढाका था। उस काल के मुहाजिरों के स्थान पर आज अंसार थे, जो काफिरों को कुचलने में लगे थे।

इस विवाद में कोई सार नहीं है कि देश का विभाजन किसके द्वारा हुआ। उस समय पंजाब और बंगाल की ऐसी अवस्था थी कि उसके बिना कोई चारा नहीं था। साम्प्रदायिक तत्त्व पहले से ही एक अजीब ढंग से इन प्रदेशों में दुहरे शासन की माँग कर रहे थे। अतएव यह विभाजन सभी दलों के समर्थन से हुआ, फिर वह किसी रूप में क्यों न हो। इस कठोर सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता। फिर भी यदि किसी पक्ष को एतराज था, तो उसने उस समय देश में जबरदस्त आवाज़ क्यों न उठाई।

यह विभाजन तो साम्प्रदायिकता के विषाक्त परिणाम से हुआ। ऐसी स्थिति में आज अखंड भारत के नारे के नीचे पाकिस्तान पर हमला करने का क्या राजनीतिक परिणाम हो सकता है। क्या यह संभव है? विभाजन का किस प्रकार अन्त किया जा सकता है? अखंड भारत की रचना दो प्रकार से हो सकती, युद्ध से या रज़ामन्दी से। यदि रज़ामन्दी से देश के दो टुकड़ों को एक करना है, तो उसका यह उपाय कदापि नहीं है, जिसे साम्प्रदायिक लोग अपना रहे हैं। उसके लिए हमें मुसलमानों के दिलों को जीतना चाहिए। यदि हम यह न कर सके, तो हमारा यह नारा लगाना व्यर्थ है। पर यदि हम यह

सोचें कि हम युद्ध करें, पाकिस्तान पर चढ़ाई कर दें, तो यह कभी संभव नहीं है। स्वयं नारा लगाने वाले जानते हैं कि इस आवाज़ से लोगों को पथ-भ्रष्ट करना है। आज की दुनिया में कोई देश किसी दूसरे देश पर यकायक सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर सकता। इसलिए युद्ध के द्वारा भारत को अखंड करने की बात केवल धोखेबाजी है। पहले तो यह किसी प्रकार संभव नहीं है पर यदि थोड़े समय के लिए मान लिया जाय कि दोनों देश एक में मिल गए, तो वहाँ हमारा शासन किसके बल पर होगा। अनिच्छुक लोगों पर हम तोप-तलवार से कब तक शासन कर सकेंगे। आतंक के बल पर कोई जाति किसी दूसरे पर कितने दिनों तक शासन कर सकती है।

फिर इस देश के मुसलमानों ने क्या कभी चाहा कि पाकिस्तान मिट जाय? इस दृष्टि से हमने उनके हृदय पर अधिकार प्राप्त किया है? क्या हम जीवन के सभी तत्त्वों में उनके इतने नज़दीक आ गए हैं कि उनमें और हममें कोई अन्तर नहीं रहा? यदि हमने किसी प्रकार उन्हें अपने में मिला लिया होता, तो उस समय एक स्थिति उत्पन्न होती कि हम कहते कि यह देश पाकिस्तान के मुसलमान भाइयों को भी अपने में मिला लें। आज मुसलमानों को क्या प्रलोभन है, कि वे हिंदुओं के साथ रहने के लिए तत्पर हों। क्या पिछले समय में इन साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने मुसलमानों से मेल-मिलाप करने के अनेक बार प्रयत्न नहीं किये तब वे मुसलमानों को क्यों नहीं रजामन्द कर सके थे।

जो लोग पाकिस्तान से आए, उनकी जुदी कहानी थी। उन्होंने अपने को अधर में लटके हुए पाया। उनके लिए न यहाँ स्थान था और न वहाँ। कांग्रेस के अनेक प्रयत्न करने पर भी उनकी यातनाएँ बे-शुमार थीं। पंजाब और सिंध के निर्वासितों की अपेक्षा पूर्वीय बंगाल से आए हुए लोगों की अवस्था अधिक दयनीय रही। उनमें स्वावलम्बिकता की भावना नहीं पाई गई। इनमें भी मध्यम वर्ग के निर्वासितों को अत्यधिक संकटों का सामना करना पड़ा। जिनकी जीविका केवल कलम रही, उन्हें शारीरिक परिश्रम करने वाले मजदूरों से कहीं अधिक दुर्दशा का सामना करना पड़ा।

ऐसे विपत्ति-ग्रस्त लोगों को कोई शासन कहाँ तक सहायता पहुँचा सकता है।

इस विभाजन के उपरान्त जहाँ दोनों देशों में नवीन परिवर्तन होते वहाँ राजनीतिक स्वाधीनता की दृष्टि से राष्ट्रीय चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारत की अवस्था पाकिस्तान से इतनी गई-गुज़री बन गई कि जनता और शासन के बीच में एकता न आ पाई। जनता के बहुभाग ने निराशा की भावना का परित्याग नहीं किया। ऐसी अवस्था में किसी भी दल की राष्ट्रीयता कैसे सफल हो सकती है। राजनीतिक ढाँचे के निर्माण की अपेक्षा लोगों ने विनाश के क्रियात्मक तत्त्व प्रकट किये।

देश का विभाजन ऐसी विषम परिस्थिति में हुआ कि वहाँ हमारी पसन्दगी का कोई अवसर नहीं रह गया था। हमारे सम्मुख तो दो टूक बात थी कि हम क्या चाहते हैं। इसलिए हमें जहर का पान करना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर हमने पाकिस्तान के अनुकरण करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। इस देश में जो साम्प्रदायवादी पाकिस्तान की तरह यहाँ भी वैमनस्यता के बीज बोना चाहते हैं, वे वस्तुतः पाकिस्तान के हितैषी हैं। पाकिस्तानी और अंग्रेज दोनों चाहते हैं कि इस देश में साम्प्रदायिकता फिर सिर उठाए, जिससे जुदी-जुदी जातियाँ लड़ें और देश में अनेकता फैले। इस अवस्था में हम पाकिस्तान क्या लेंगे, अपनी रही-सही स्वाधीनता भी खो बैठेंगे। इसलिए भारत ने अपने राज-शासन का लक्ष्य धर्म निरपेक्ष राज्य अर्थात् सम्प्रदाय-विहीन शासन रखा है। यह भी प्रकट है कि यदि देश का बँटवारा न होता तो आज की तरह देश की अवस्था न सुधरती और तब जो कत्ले-आम होता, उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता है। हम किसी भी मसले को हल करने में सदा असमर्थ रहते।

यदि सांप्रदायिक संस्थाएँ इस देश की सभी जातियों के भेद-भाव मिटातीं, उन्हें संस्कृति के एक साँचे में ढालतीं, भाषा, वेश-भूषा और आचार-विचार की दृष्टि से सबको एक कतार में खड़ा करतीं, तो फिर चाहे हिंदू या मुसलमान या सिख या ईसाई,—सब एक भाव से ओत-प्रोत

होते। इस प्रकार जब हमारी साम्प्रदायिक संस्थाएँ रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा सारे राष्ट्र को बलवान बनाती, तब कहीं उनके लिए अवसर आता कि वे आवाज़ उठाएँ कि खंडित भारत अखंड भारत हो। अभी तो ऐसी अवस्था है, कि यदि हम अखंड भारत की माँग करें तो हमारे देश के लोग ही उसका विरोध करेंगे।

इसके उपरान्त जो लोग अखंड भारत का नारा लगाते हैं, वे देश को गुमराह करते हैं। आज के जमाने में किसी देश पर हाथ डालना आसान नहीं है। हम अखंड भारत को उसी अवस्था में प्राप्त कर सकते हैं, जब कि हम पाकिस्तान पर हमला करें, और लाहौर पर अपनी सेनाएँ चढ़ा दें ? पर क्या यह संभव है ? इस प्रकार के युद्ध से भी क्या हम पाकिस्तान पर अधिकार कर सकेंगे ? जो समुदाय हमारे साथ नहीं रहना चाहता, उसे हम किस प्रकार अपने साथ रख सकेंगे। पर यदि क्या कहा जाय कि हम वैध उपायों से पाकिस्तान को भारत में मिला लेंगे, वह भी शेखचिल्ली मनोधारा है। पाकिस्तान के अधिकारी कब इस प्रकार के विचार-विमर्श के लिए आगे आयेंगे।

हमारे इन्हीं कामों का अनुकरण पाकिस्तानी करते हैं। वे गंगा और यमुना नदियों के तट तक अपना शासन कायम करने की आवाज बुलन्द करते हैं। पाकिस्तान की सीमा में हिंदुओं के खिलाफ बेहद तूफान मचा है। इन कामों का अब नतीजा क्या होता है ? हम तो पुकारकर रह जाते हैं, उधर वे इन नारों से मुसलमानों में जोश लाते हैं और वहाँ बसने वाले लाखों हिंदुओं पर आफत के पहाड़ ढाते हैं।

देश का विभाजन सही हुआ हो या गलत, मगर वह हुआ। यह विभाजन अब आसानी से नहीं मिट सकता। यदि हम इस विभाजन को मिटाने की जरा भी कोशिश करेंगे तो पाकिस्तान अन्य शक्तिशाली देशों के सहयोग से इस देश पर चढ़ाई कर सकता है। उस अवस्था में मध्यपूर्व के समस्त मुस्लिम देश उसके साथ होंगे। अंग्रेज और अमेरिका भी पाकिस्तान के अंगीभूत होंगे। तब हम क्या इन सब शक्तियों से सहज में मोर्चा ले सकते हैं। आयरलैंड

ही अलस्टर के लिए चीख-चाखकर रह जाता है, पर क्या वह कभी उसे अपने में मिलाने में समर्थ हुआ ।

इस ओर देश की जनता को बरगलाने की अपेक्षा हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने राष्ट्र को सबल बनायँ। जो विरोधी तत्त्व हैं, उनमें राष्ट्रीयता का आविर्भाव करें। हम समाज को बलवान बनायें, सभी जातियों को जब अपने में मिला लेंगे, तब हम संसार में सिर उठा सकेंगे कि दूसरे देश को अपने में मिलायँ। पर आज जो राष्ट्र बिखरा हुआ है, जिसके भिन्न-भिन्न अंगों के जुदी-जुदी दिशाओं में दृष्टिकोण है, वह अन्य देश को प्राप्त करने की किसी रूप में भी शक्ति नहीं रखता ।

पूर्वीय बंगाल का प्रश्न ऐसा है कि वहाँ से आए हुए हिंदुओं के लिए पाकिस्तान से जमीन का हिस्सा मिलना चाहिए। और यदि कालान्तर में सभी हिंदू पूर्वीय पाकिस्तान छोड़ आयें, तो भारत की यह नैतिक माँग होगी कि उतनी जनसंख्या का परिवर्तन हो या भारत में आए हुए निर्वासितों के लिए पाकिस्तान से भूमि मिले। पश्चिमी बंगाल और पूर्वीय बंगाल भाषा, वेश-भूषा और रहन-सहन की दृष्टि से ऐसी स्थिति में हैं कि समूचे बंगाल के दो टुकड़े कोई अर्थ नहीं रखते है। बंगाल के ये दोनों हिस्से एक में मिल सकते हैं। यदि वहाँ के हिंदू और मुसलमान संयुक्त माँग करें, तो कोई शक्ति टाल नहीं सकती। पूर्वीय बंगाल के समस्त मुसलमान बंगला बोलते हैं, अधिकाधिक बंगाली मुसलमान संस्कृत के आचार्य हैं, और उनका पह-नावा भी हिंदुओं के समान है। मुसलमानों की दृष्टि से उनमें केवल एक बात है कि वे बंगाल में कलमा पढ़ते हैं। पर यह तभी संभव है कि जब दोनों जातियाँ एक दूसरे के अत्यन्त निकट सम्पर्क में आयँ और अपने आपसी सम-झौते से विभाजन की रेखा को मिटाकर भारत के गौरवमय प्रान्त बंगाल को एक में मिला दें। इसलिए अखंड भारत का नारा लगाने वालों को यह सोचना चाहिए कि शक्ति के बिना कोई आवाज उठाना केवल कायरता प्रकट करना है, और वह शक्ति, जो नीति से प्रभान्वित न हो, केवल पशुओं का मार्ग है।

१३

लोक-नेताओं की हत्याएँ

राजनीतिक ध्येय की पूर्ति के लिए लोक-नेताओं का वध अत्यन्त जघन्य कृत्य है। पिछले दिनों में ऐसी अनेक हत्याएँ देश-विदेश में हुईं। यदि कोई व्यक्ति तूफान के बीच में कत्ल हो जाय तो वह सर्वथा दूसरी बात है। पर किन्हीं व्यक्तियों के द्वारा नेताओं की हत्याएँ होना सर्वथा निन्दनीय है। उससे हमारी बर्बरता प्रकट होती है। संसार यह सोचता है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति कितनी गिरी हुई है। अंग्रेजों के शासन-काल में भारतीय युवकों ने उन विदेशियों की हत्याएँ कीं, जो हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले थे। ऐसे अनेक व्यक्ति फाँसी के तख्ते पर झूले और वह देश-भक्त भी कहलाए। मगर हमारे लोक-नेताओं ने सदा कहा कि इन छुट-पुट हमलों से देश की स्वतन्त्रता कोसों दूर चली जायगी। हिंसात्मक रूप में शत्रु का तभी सामना किया जा सकता है, जब उसके मुकाबले में हमारे पास भी शस्त्र-बल हो। अन्यथा; इनी-गिनी हत्याओं से राष्ट्र को अधिक दमन की चक्की में पिसना पड़ता है। हमारा पिछला इतिहास इसका साक्षी है। देश में शासन विदेशी हो या स्वदेशी, इस अराजकता को कोई सहन न करेगा।

बर्बर और असभ्य के सिवा भौतिक जीवन का आदर्श रखने वाले सभ्य-समाज में भी अपने नेताओं की हत्याएँ आज आम बात है। इन देशों में जरा से मतभेद पर अपने विरोधी का अन्त कर दिया जाता है। पर इन हत्याओं से समाज में स्थिरता नहीं आती। देश की स्थिति हर समय डांवाँडोल रहती है। इससे न तो राष्ट्र में मजबूती आती है और न वह प्रगतिशील होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने और अपने दल के लक्ष्य की अपेक्षा सारे राष्ट्र का खयाल करना चाहिए। हर एक व्यक्ति के कंधे पर राष्ट्र की सुरक्षा की जिम्मेदारी है। हमारा लक्ष्य तो यह रहा कि हम स्वयं मर मिटें पर हमारे किसी काम से हमारे विरोधी को कोई आँच न आय।

विगत बीस वर्ष में हमारा नेतृत्व खुले-आम रहा। हमने जो भी योजना तैयार की और जिस काम को अग्रसर किया, वह कभी लुक-छिपकर नहीं। हमारे महान् नेता ने, हम रे अधिनायक ने हमें यही सिखाया कि हम निडर और निर्भीक होकर अपना काम करें। यही कारण था कि हमारे लोक-नेता निर्भीक होकर विचरे,जहाँ रूस के महान् कर्णधारों को हर समय अपने जीवन की आशंका रहती है। रूस में स्टालिन को कितने पहरे में रहना पड़ता है। इसका यही कारण है कि वहाँ की सभ्यता का आधार आध्यात्मिक नहीं है।

यह खयाल किया गया था कि भारत स्वतन्त्र होने पर आध्यात्मिक संदेश को संसार के कोने-कोने में पहुँचायगा। इस दृष्टि से भारत पुनः विश्व का नेतृत्व करेगा। पर हमारी उस आशा पर पानी फिर गया। हमारे समाज के एक व्यक्ति ने ऐसा जघन्य कृत्य किया कि जिससे हमारा मस्तक विश्व के सामने लज्जा से झुक गया। केवल राजनीतिक विरोध के लिए इस हत्यारे ने महामानव का वध किया, जो अखिल विश्व के लिए वन्दनीय था। इस घटना से संसार ने देखा कि हमारा कितना सांस्कृतिक पतन हो गया है।

अतीत में इस देश में कितना मतभेद था कि एक का नेतृत्व दूसरे से सर्वथा भिन्न था। एक ईश्वर को मानता था, तो दूसरा उसका घोर निंदक था। पर इतनी सहिष्णुता थी कि हम एक दूसरे के मत का सन्मान करते थे। मगर आज तो इस देश के लोग पश्चिम के अनुकरण में पाशविकता पर उतर आए। इधर आए दिन कितनी ही हत्याएँ हुईं। हमने जगत्-वन्दनीय महामानव गांधीजी को खोया। इसके उपरान्त एशिया की भूमि में और भी राजनीतिक हत्याएँ हुईं। पाकिस्तान में शासन पलटने के लिए षड्यंत्र किया गया। उसके परिणामस्वरूप सेना के अनेक व्यक्ति बन्दी हुए।

पर सभी विरोधी तत्त्वों का दमन न हो सकने के कारण किसी एक ने मियाँ लियाकत अली खाँ का निर्जन स्थान में वध कर डाला। हमने यह भी देखा कि मध्य पूर्व के एक स्वतन्त्र मुस्लिम देश जारडन के नरेश का वध भी राजनीतिक पिपासा बुझाने के लिए किसी शत्रु ने किया। इसके सिवा मिस्र तथा ईरान में नेताओं का वध हुआ। ये सब वे देश हैं, जहाँ सूफियों और आध्यात्मवादियों का प्राधान्य रहा है। संसार के सामने ये सब घटनाएँ ताजी हैं।

पर इस देश से भी क्या इस प्रकार की हत्या करने के तत्त्व मिट गए। यह तो प्रकट है कि महात्मा गांधी तो उसी प्रकार अमर हैं, जिस प्रकार अन्य अवतार और पैगम्बर हुए। उनकी हत्या करने से हमने उनके नश्वर शरीर का भले ही अन्त कर दिया हो, किंतु जो महान् देन वे हमें दे गए, वह तो हमारे पास थाती के रूप में है। पर हम उस देन को भी खो दे सकते हैं, यदि इन कुकृत्यों को करने में लोग फिर आगे बढ़ें। वही नृशंसतापूर्ण कृत्य पुनः करें।

आज भी देश में वही व्यक्तिगत प्रतिशोध का भाव विद्यमान है। राष्ट्र के विनाशकारी तत्त्व लोक-नेताओं के वध के लिए उसी प्रकार उद्यत दिखाई देते हैं। एक ओर कम्युनिस्ट वर्ग है, जिनकी कार्य-पद्धति हिंसा पर आधारित है। उनके तोड़-फोड़ में न तो राष्ट्र की सम्पत्ति बचती है और न मानव ही। सबका विनाश करके अपनी सत्ता स्थापित करना उनका एक-मात्र लक्ष्य है। वे चाहे जो कुछ कहें, उनके दिल-दिमाग़ से वे तत्त्व नहीं मिट सकते।

पर बात यहीं तक नहीं है, इस देश में वे भी तत्त्व हैं जो साम्प्रदायिक भावनाओं से लोक-नेताओं की हत्या करने में आगे बढ़ते हैं। विगत राज-नीतिक हलचल के अवसर पर देश के लोक-नेताओं के सामने लियाकत अली की तसवीर खड़ी की गई थी। किसी दल विशेष के लोगों ने खुले-आम कई राज्यों में घोषणाएँ कीं कि आज के राष्ट्रीय नेता भी उसी घाट उतरेंगे, जिस घाट पर लियाकत अली खाँ और गांधी उतरे। कोई भी विरोधी

बच न पायगा। किसी संस्था के नाश के लिए उसके नेतृत्व को मिटा देना ही श्रेयस्कर कहा गया। इस सम्बन्ध में बताया गया कि कांग्रेसी शासन, तथा कांग्रेस को नेस्तनाबूद करने के लिए उसके महान् नेताओं का भी नाश करना होगा। वे लोग राष्ट्र के शत्रु हैं, जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या के उपरान्त अपनी दृष्टि राष्ट्र के जीवनाधार नेताओं की ओर इंगित करें। पर हमारे नेता इन षड्यन्त्र और धमकियों से भय नहीं खाते हैं। वे तो जब तक जीवित हैं, तब तक अपने ध्येय और संकल्प के अनुसार राष्ट्र को बलवान बनाने में पश्चात्पद न होंगे।

हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, उसकी रक्षा के लिए हम सदैव सावधान रहें। आज देशवासियों में उस भावना का अभाव है कि वह अपनी स्वतन्त्रता की पूरी चौकसी करे। स्वतन्त्रता जन-साधारण से आंतरिक चौकसी की कीमत माँगती है। एक दिन वह होगा, जब कि इस देश के लोगों का जीवन ही पूर्ण राष्ट्रीयता में परिणत हो जायगा। लोकतन्त्र में हमारा अटल विश्वास हो। यदि मानवता का यह प्रधान तत्त्व इससे छिन गया तो फिर हमारे पास क्या बचेगा ?

संसार में अन्यत्र कैसी भी अवस्था हो, किंतु हमारा लक्ष्य भारत रहे। हम में यह दृढ़ विश्वास हो कि हमारा अपना देश अन्त में मजबूत और बलवान बने। वह सच्ची राष्ट्रीयता के पथ से कभी विचलित न हो, सभी जातियाँ और सभी वर्ग एकप्राण होकर ऐसी सरकार स्थापित करें, जो ग़रीबों की होगी, ग़रीब ही उसका शासन-शकट चलायें और उनका ही वह प्रतिनिधित्व करे। ऐसे ही शासन में मानव जाति की मुक्ति है।

राष्ट्रीय जीवन में हम मतभेदों को सहने में सहिष्णुता का व्यवहार करें। अपने मत के प्रचार के लिए दूसरों का नाश करना हमारी सभ्यता तथा संस्कृति के लिए अमिट कलंक है। मतभेद तो जीवन की सजीवता के चिह्न हैं। हमारा संदेश राष्ट्र के समस्त सम्प्रदाय और लोगों के लिए एक समान होना चाहिए।

१४

सामंतशाही के काले कारनामे

अंग्रेज यहाँ से जाते समय पाँच-छ: सौ छोटी-बड़ी रियासतें और अनगिनत जमींदार, ताल्लुकेदार, ठिकानेदार, जागीरदार और मालगुजारों की जमात छोड़ गए। पर इनमें रियासतें और उनके अंगीभूत जागीरदार-सामन्तशाही के रूप में देश-भर में ऐसे बिखरे हुए थे कि जिन्हें यदि ऐन मौके पर न सँभाला जाता तो हमारी स्वतन्त्रता खाक में मिल जाती। नव भारत के लिए ये ऐसे काँटे थे जो उसे कभी पनपने न देते। सामन्तशाही के ये गढ़ यदि खुले-आम छोड़ दिए जाते, तो उनमें बाहर के अनेक शत्रु आकर प्रवेश करते। इसका परिणाम यह होता कि देश के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। भारतीय स्वतन्त्रता के दुश्मन यह तमाशा देखने के लिए बड़े उत्सुक थे और वे इस प्रतीक्षा में थे कि नव भारतीय रंगमंच पर यह अभिनय कब हो। कई छोटी-बड़ी रियासतें और उनके समूह इस प्रदर्शन की तैयारी में भी थे। शत्रुओं से उत्तेजना पाकर कई रियासतें प्रतिरोध के लिए भी खड़ी हुई थीं। कहना न होगा कि उन्होंने अपने किये का परिणाम भुगता। पर अन्य कई रियासतों के शासक इतनी दूरन्देशी रखते थे कि उन्होंने देखा कि—दीवारों पर अदृश्य रेखाएँ उन्हें क्या चेतावनी दे रही हैं। उनकी सुरक्षा किस मार्ग में है। वे केन्द्रीय सरकार के आह्वान पर स्वयं आगे आए, और भारतीय संघ में विलीन होकर अपनी राज-सत्ता का परित्याग कर दिया। सामन्तशाही दल के ये शासक आज भी समय की गति के अनुसार चलते हैं, और उन्होंने अपने को राष्ट्र में विलीन कर दिया है।

सामन्तशाही को खत्म करके नव भारत की रचना लौह-पुरुष सरदार

पटेल ने की। उन्होंने इन सामन्तों को एक-एक करके बुलाया और उन्हें बताया कि संसार के नक्शे में उनकी रियासत एक बिन्दु-मात्र है। आज जब भारत को अपनी सुरक्षा के लिए दूसरे देशों के सहयोग की आवश्यकता है, और उसके स्वाधीन होने पर भी उसे अन्तर्राष्ट्रीय अनुशासन में रहना पड़ता है, तब रियासतें अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकेंगी। एक ओर भारत-सरकार उनकी सहायता के लिए आगे न बढ़ेगी, और दूसरी ओर उनकी प्रजा के विद्रोह करने पर जो अराजकता उत्पन्न होगी, उसे उनकी कथित सेना भी दबा न सकेगी। परिणाम यह होगा कि उन्हें बुरी तरह भागना पड़ेगा। संसार में अन्य देशों के राजे महाराजे जिस प्रकार भागे, वही दुर्गति उनकी होगी। उनकी सुरक्षा इसी में है कि वे राज-सत्ता का परित्याग करके शासन-सत्ता प्रजा को सौंप दें।

योरप और एशिया की क्रांतिमयी स्थिति में नरेशों ने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया। उन्होंने अपना हित इसी में समझा कि वे भारत-शासन में विलीन हो जायँ। इसके उपरान्त एक-एक करके सभी नरेश भारत-सरकार के पास पहुँचे और अपने शासनाधिकार सौंप दिए। ताश के महल के समान सारा किला ढह गया। सभी रियासतें केन्द्रीय शासन में मिल गईं। जो दो-चार रियासतें बचीं, उनकी पूरी दुर्गति हुई और अन्त में उन्हें भी शामिल होना पड़ा।

जहां यह राज-सत्ता नष्ट हुई, वहाँ दो-एक बातें न हो पाईं। इन नरेशों के पद बने रहे, उन्हें और उनके आश्रितों को लाखों और करोड़ों रुपए का वार्षिक मुआवजा देना स्वीकार किया गया। इसके अलावा उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति और ठाठ-बाट बने ही रहे। राजनीतिक दृष्टि से उन्हें नागरिक अधिकार भी प्राप्त हुए। फिर कई नरेश राजप्रमुख, सेनाध्यक्ष और राजदूत के रूप में शासन-क्षेत्र में आए। सरदार पटेल ने यह सोचा कि इस समय नरेशों के साथ सद्भावना प्रकट की जाय। सत्ता छोड़ते समय उनमें कटुता के भाव न आने पायें। इसलिए उनकी आय में कोई कमी नहीं की गई। पर हम देखते हैं कि अनेक नरेशों ने इसका शायद ही अनुभव किया।

पटेल के निधन के उपरान्त इन नरेशों में पुनः प्रतिक्रिया प्रकट हुई कि वे धीरे-धीरे शासन-सत्ता हस्तगत करने का प्रयत्न करें। इस दृष्टि से उन्होंने अपना संगठन किया। उनकी एक संस्था खड़ी की गई। उनमें से बड़ौदा-नरेश ने यह मांग की कि उनकी बिना स्वीकृति के बड़ौदा बम्बई राज्य में विलीन कर दिया गया। यह आन्दोलन खड़ा किया गया कि बम्बई में शामिल होने से बड़ौदा-जैसे उन्नतिशील राज्य का विकास रुक गया। वहाँ की प्रजा तबाही का सामना कर रही है। बड़ौदा का इस प्रकार सिर उठाना भावी खतरे की घंटी थी। इन नरेशों के अब क्या राजनीतिक हित रहे, जिसके लिए नया संगठन खड़ा किया गया। अतएव यह संगठन भावी विघटन का प्रतीक था। भारत-सरकार ने इस स्थिति पर ध्यान दिया। और पौधा उगने के पहले ही उसे जड़-मूल से नष्ट कर दिया। बड़ौदा-नरेश की रही-सही सत्ता भी छीन ली गई। केन्द्रीय शासन की इस कठोर कार्रवाई से दूसरे नरेश विचलित हो उठे, और वे सब-के-सब अपनी संस्था छोड़ भागे। बड़ौदा-नरेश भी पश्चात्ताप की मनोदशा में प्रकट हुए।

रियासतों के विलीनीकरण के समय हमने अन्य देशों पर अनुलक्ष्य नहीं दिया। विदेशों में नरेशों से राज-सत्ता लेते समय उनकी स्थिति एक साधारण नागरिक से भी निम्न होती है। वे दस-बीस वर्षों के लिए नागरिक अधिकारों से भी हाथ धो बैठते हैं। यदि नरेश दस वर्ष तक नागरिक अधिकारों से वंचित रहते, तो इस लम्बी अवधि में देश की स्थिति इतनी बदल जाती है कि उसके उपरान्त उन्हें नागरिक अधिकार मिलने पर भी वे राष्ट्र का अहित करने में असमर्थ होते। तब तक प्रजा राजनीतिक भावों में आगे बढ़ जाती उस समय ये राजे क्या कर सकते थे। पर इस देश में उन्हें नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं किया गया। इस देश के संविधान में सभी वयस्क स्त्री-पुरुषों को नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। हमारे विधान के इस आदर्श से इन प्रतिक्रियावादी सामन्तों ने बुरा लाभ उठाया। पर यदि उन्हें नागरिक अधिकार भी प्राप्त हुए तो संसद् को उनके निर्वाचन में खड़े होने अधिकारों के सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट करनी थी। जो वर्ग सरकारी

सहायता से पले, फिर वे चाहे राजे-महाराजे हों, या जागीरदार, उन्हें विधान-सभाओं में प्रतिनिधित्व करने का क्या अधिकार है। यदि ये अधिकार उनके पास रहें और मुआवज़े की भरपूर रकम उन्हें मिलती रहे तो वे उसे गरीब मतदाताओं में बिखेरकर—अपनी पूरी जमात के साथ राज्यों की विधान-सभाओं में दखल देकर अपनी रियासतों को पूर्व स्थिति में ला सकते हैं। यदि वे नागरिक अधिकारों का उपयोग प्रतिनिधि रूप में करते हैं, तो उनके मुआवज़े खत्म हो जाने चाहिएँ।

अनेक नरेश आज भी कुचक्र में पड़े हुए हैं, उनमें से कई नरेश पाकिस्तान से मेल-मिलाप करके अपनी गद्दी पर फिर अधिकार करना चाहते हैं। दूसरे अन्य विदेशी शक्तियों से साठ-गाँठ करने में लगे हैं। यह तो प्रकट है कि रियासतें खतरे से खाली नहीं हैं। इन्हीं नरेशों की थैलियों से रियासतों में राष्ट्रीयता को कुचलने के लिए अनेक संस्थाएँ खड़ी की गई हैं। कई संस्थाओं के नाम देखकर यह प्रकट होता है कि मानो वे प्रजा का नेतृत्व करती हैं, पर वास्तव में वे नरेशों के स्वार्थों की रक्षा करती हैं। उड़ीसा की 'गणराज्य परिषद्' सामंतशाही संगठन है। यह संस्था नरेशों के धन और बल से बढ़ी। राजस्थान तो लोकतंत्र की प्रगति को अवरुद्ध करने वाला बना। यह राज्य भारत के लिए सबसे भयानक खतरे की जगह प्रकट हुआ। राजस्थान, सौराष्ट्र, मध्यभारत और उड़ीसा आदि की रियासतों में एक ओर राजनीतिक चेतना का अभाव है तो दूसरी ओर साम्प्रदायिक और धार्मिक भावनाएँ प्रबल बनी हुई हैं। यहाँ की साम्प्रदायिक संस्थाएँ इन्हीं नरेशों से पोषण पाती हैं। रियासतों में सामन्तों का प्रभाव प्रकट करता है कि वहाँ की प्रजा आज भी मध्य युग में है। विगत निर्वाचन से यह प्रकट होता है कि रियासतों की प्रजा कितने अंधकार में है कि वह सत्ता और धर्म की आड़ में अपने हिताहित को नहीं सोचती।

इन निरंकुश सत्ताधिकारियों से भले ही सत्ता छीन ली गई हो, पर आज वे ही इस विश्वास से आगे बढ़ रहे हैं कि वे लोकतंत्र के तरीकों से जनता पर फिर अपना अधिकार जमायँ। प्रजा निःसहाय और अशिक्षित

हैं। इसीलिए इन नरेशों को साहस होता है कि वे लोक-नेताओं को चुनौती देते हुए कहते हैं कि कोई यह न समझे कि हम सत्ता छोड़कर नीचे गिर गए हैं। हम तो फिर अपने पद पर पहुँचने के मार्ग में हैं। कोई भी आए, हमारी शक्ति से मोर्चा ले ले। उनके अपने संगठन तो हैं ही—साम्प्रदायिक संस्थाएँ धर्म, समाज और संस्कृति के नाम पर उनकी शक्ति को और भी बढ़ाती हैं।

आज यह सामन्त दल छद्म वेष धारण करके लोगों के सामने आकर कहता है कि "हम तो तुम्हारे हैं। तुम जो कहोगे, उसे करेंगे। हुकूमत और शासन का ज्ञान हम लोगों को है, आज से नहीं, सदियों से हम यहाँ शासन करते आए हैं। प्रजा हमारी है और हम प्रजा के हैं। दूसरे लोग क्या प्रजा के हो सकते हैं और वे क्या शासन की बातें जानें।" एक ओर से चिकनी-चुपड़ी बातें हैं, तो दूसरी ओर प्रजा को अपनी ओर खींचने के लिए उनकी थैलियाँ खुलती हैं। आज भी उन्हें केन्द्रीय सरकार से भत्ते में इतना अधिक धन मिलता है कि वे चाहे जितना खर्च करें। उनके साथ ही साम्प्रदायिक संस्थाएँ धर्म और संस्कृति का चोगा पहनकर प्रजा को राजनीतिक पथ से गुमराह करती हैं। रियासतों में इन संस्थाओं का मजबूत पैर जमा हुआ दिखाई दिया। पर यदि इन रियासती संघों में राजनीतिक आन्दोलन प्रबल होता, प्रजा जाग्रत होती, तो इस विलीनीकरण के उपरांत सामन्तशाही कभी आगे न बढ़ पाती। मगर आज सामन्त सत्ता इतनी शक्तिशाली और संगठित है कि राजनीतिक दल उसका सामना करने में निर्बल हैं। देश पीछे न जाय, और राष्ट्रीयता सबल हो, इसलिए समाज में इन तत्त्वों का समूल नष्ट होना आवश्यक है। अब हमें इस राजनीतिक जागरण-काल में इन सामन्तों को यह बता देना चाहिए कि उनकी तानाशाही के दिन चले गए। अब वे दिन लौट न सकेंगे, जिनकी राजे-महाराजे और जागीरदार कल्पना करते हों। इतना ही नहीं धर्म और संस्कृति के नाम पर भी प्रजा को बहकाया नहीं जा सकेगा। जब कल की पिछड़ी जातियाँ विविध आडम्बरों में न पड़कर अपना उत्थान करती हैं, तब यह निश्चय है कि कितनी भी प्रतिक्रियावादी

शक्तियाँ चाहे जिस रूप में आगे आयँ, वे राष्ट्र को पीछे ढकेलने में कभी समर्थ न होंगी। पर हाँ, देश को इन सामन्तों के कुचक्रों से अवश्य सचेत रहने की आवश्यकता है। यह वह खतरा है, जो फिर हमें गुलामी के पाश में डाल सकता है। उनके कामों से देश में संकट पड़ सकता है। हमारी स्वतन्त्रता छिन्न-भिन्न हो सकती है।

रियासतों में जागीरदारी और जमींदारी जब्त हो, वहाँ नरेशों को भी प्रति वर्ष लाखों और करोड़ों रुपयों का भत्ता मिलना कतई बन्द होना चाहिए। राष्ट्र-निर्माण के कार्यों के लिए धन नहीं और ये नरेश भोग-विलास के लिए प्रति वर्ष लाखों और करोड़ों रुपए का मुआवजा प्राप्त करें। इस लोकतन्त्र शासन में हैदराबाद के निजाम को एक करोड़ रुपए प्रति वर्ष मिलते हैं। जिनके पास आज भी करोड़ों और अरबों की निजी सम्पत्ति मौजूद है। यही अवस्था अन्य नरेशों की है। इन नरेशों के साथ यह बहुत बड़ी रियायत होगी कि उनकी निजी सम्पत्ति न छीनी जाय। निजी सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी भारत-सरकार उन्हें मजबूर करे कि वे उसे उद्योग-धंधे में विनियोग करें।

इन सामंतों के लिए हमारा अगला कदम इस विषम स्थिति को दूर करने वाला हो। अन्यथा, नई क्रांतिकारी हवाएँ उन्हें इस प्रकार फेंक देंगी, उनका मूलोच्छेदन कर देंगी, कि उनका नामो-निशान तक न रहेगा।

१५

कम्युनिस्टों की विजय : देश किधर जायगा ?

भारत में सन् १९५२ का निर्वाचन संसार की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इतनी अधिक जनता का प्रथम बार मत प्रदान करना राजनीतिक क्षेत्र में नवीन बात है। उससे यह प्रकट हुआ कि देश दो प्रधान विचार-धाराओं के मध्य में विभाजित है। कहीं-कहीं अस्तंगत सामंतवर्ग, पूँजी-वादी और सम्प्रदायवादी प्रतिक्रियावादियों की भी शक्तियाँ प्रकट हुई। अन्यथा देश में एक पक्ष शनैः-शनैः प्रगति करने वालों का है, तो दूसरा पक्ष क्रांतिकारियों का है। इनमें पहले वर्ग का प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है और दूसरा वर्ग क्रांतिकारियों का है, जिसका प्रतिनिधित्व साम्यवादी-कम्युनिस्ट करते हैं। जनता ने अधिक और न्यून मत में इन दोनों विचार-धाराओं का समर्थन किया है। जिन लोगों में राजनीतिक चेतना है, उनके लिए बीच का कोई रास्ता नहीं है। इस निर्वाचन से देश की राजनैतिक नब्ज का पता लगा कि उसकी गति किस ओर है।

देश में साम्यवाद ने अपना स्थान कायम कर लिया है, यह तो इस निर्वाचन से स्पष्ट प्रकट हो गया। उनकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर पूँजी-वादी समाज विचलित हो उठा है। कांग्रेस के महान् नेताओं को साम्यवाद के अच्छे तत्त्वों को प्रकट करना पड़ा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रकट किया कि कम्युनिस्ट देशों ने जो प्रगति की है, उससे हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने इस बात का विरोध किया कि उनके

कार्यक्रम में हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ हैं और वे बाहरी शक्तियों के नियंत्रण में रहते हैं। इसके सिवाय साम्यवाद व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य पर नियंत्रण कायम करता है। यदि ये तत्त्व कम्युनिस्टों में न हों तो वे सभी साम्यवाद के नजदीक आ जाते हैं, जिसका समर्थन कांग्रेस करती है। यद्यपि निर्वाचन में कम्युनिस्टों ने सफलता प्राप्त करके संसद् और राज्यों के विधान-मंडलों में प्रवेश किया है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वे फिर भी लोगों की हत्या करेंगे और गोलियाँ दागेंगे ? क्या उनके नेतृत्व में हमारी स्वतन्त्रता विदेशी शक्ति के आधीन होगी ?

साम्यवाद विघटन का प्रतीक बना हुआ है। भारत का कोई भी ऐसा भाग नहीं है, जहाँ की अव्यवस्था का उन्होंने लाभ न उठाया हो। हैदराबाद, पश्चिमी बंगाल, तेलंगाना, मद्रास, काश्मीर, और पूर्वीय पंजाब में उन की शक्तियाँ प्रधान रूप से प्रकट हुईं। देश के जिन-जिन स्थानों में भुखमरी और तबाही से लोगों के जीवन में अस्थिरता प्रकट हुई, वहाँ-वहाँ उसके पैर जमे। देश के विभाजन के कारण पंजाब और बंगाल के लोगों के अशान्तिमय जीवन में उसे आगे बढ़ने का क्षेत्र प्राप्त हुआ। इस दिशा में साम्यवादियों की सारी शक्तियाँ तोड़-फोड़ और हिंसात्मक कार्यों पर निर्भर रहीं।

यदि कम्युनिस्ट रचनात्मक दृष्टि से समाज का नया आर्थिक निर्माण करने की ओर बढ़ें, तो उनके प्रयत्न राष्ट्र के लिए मंगलमय हो सकते हैं। किन्तु आज अवस्था यह है कि देश को अभी-अभी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, और उसके पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। दोनों देशों में युद्ध-जैसी अवस्था है। ऐसी अवस्था में किसी भी राजनीतिक दल का हिंसात्मक तथा तोड़-फोड़ का कार्य देश में खतरनाक हालत पैदा करता है। आज आवश्यकता यह है कि भारत सबल हो—सुसंगठित हो। किसी भी बाहरी शक्ति को हमारी निर्बलता से लाभ उठाने का अवसर न मिले। पिछले चार वर्षों में भारत की प्रधान-समस्या देश की सुरक्षा रही और इसने राष्ट्र के जीवन की अनेक प्रगतियों को बढ़ने का अवसर नहीं दिया। इससे समाज का विशृंखल जीवन संगठित नहीं हो पाया। अनेक कमियों और अभावों के

कारण समाज की आर्थिक समस्याएँ हल नही हो पाईं। सर्वसाधारण की इस दुरवस्था का लाभ उठाने से कम्युनिस्ट नही चूके और वे आगे बढते गए। इस विवेचन से यह प्रत्यक्ष है कि यदि समाज की अवस्था सुदृढ हो तो भारतीय जनता के लिए कम्युनिज्म कोई सन्देश नही रखता।

कम्युनिस्ट समाज की वर्तमान व्यवस्था की उपयोगिता को नही स्वीकार करते। निर्वाचन के प्रति उनकी विचित्र स्थिति है। कम्युनिस्ट शासन की अपेक्षा अन्य किसी के शासन मे होने वाले निर्वाचन मे उनका कोई विश्वास नही होता। कम्युनिस्ट न केवल भारत, बल्कि एशिया के सभी देशों के शासनो को नष्ट करने पर तुले हुए है। शासन क्षीण होने पर सरकार से सामना करने के लिए वे शस्त्र जुटाने मे समर्थ होते है। उनका आदर्श उनके कार्यों से सर्वथा जुदा है। शस्त्र-हीन लोगो पर गोलिया दागने, ग्रामो मे भयातुर अवस्था प्रकट करने, और रेलगाडियों तथा सार्वजनिक उपयोग के अन्य साधनो को नष्ट-भ्रष्ट करने के कार्य उनके आदर्शों के सर्वथा विपरीत है। पर सच तो यह है कि कम्युनिस्ट रूस के जार के शासन को, ओर भारत की वर्तमान सरकार मे कोई अन्तर नही मानते। वे चीन में च्यांग-काई-शेक के शासन और चेकोस्लोवेकिया मे डाक्टर बेंस के शासन को एक समान मानते हैं। उनकी विचार-धारा में जिन देशों में कम्युनिस्टों का शासन है वहाँ सब अच्छाइयाँ हैं और दूसरे सब प्रकार के शासन मे प्रजा पीड़ित है, और जिसका उद्धार केवल उनके द्वारा ही हो सकता है।

कम्युनिस्टों ने इस निर्वाचन में भारतीय संसद् और राज्यो की विधान-सभाओं मे प्रवेश किया है। यदि वे अपनी सारी शक्तियाँ वैधानिक कार्यों में लगायें और बाहरी किसी शक्ति से कोई सम्पर्क न रखें तो राष्ट्र के लिए उनकी उपयोगिता किसी अन्य राजनैतिक दल से कम नही हो सकती। सरकार गलतियाँ करती है, और वह अपनी गलतियाँ स्वीकार भी करती है। हम मानते है कि गलतियाँ मानव से ही होती है। इसलिए कम्युनिस्ट देश के शासन और उनके नेताओं से भी गलतियाँ होती है। केवल उससे

गलती नहीं होती, जो मानव से परे हो। इसलिए सभी सरकारों से गलतियाँ होती हैं; और इसलिए वे बदली जा सकती हैं, किन्तु हिंसा के बल से नहीं, बल्कि शांतिमय तरीके से जनता के निश्चय द्वारा। तेलंगाना और ट्रावनकोर तथा कोचीन में कम्युनिस्टों की विजय को सारे राष्ट्र ने संजीदगी से देखा है। पर उन्हें यह देखना चाहिए कि भारत किसी भी शक्ति के आगे झुकने के लिए तैयार नहीं है, चाहे वह अमेरिका हो या सोवियत रूस। दोनों शक्तियाँ यह चाहती हैं कि भारत उनके दायरे के अंतर्गत रहे। अमेरिका अपने विशाल साधन और सामग्री भारत के चरणों में डाल रहा है और सोवियट यूनियन तोड़-फोड़ के मार्गों से बढ़ रहा है। उसने कम्युनिस्ट दल खड़ा करके भारत को कम्युनिज्म के प्रवाह में लाने का प्रयत्न किया है। पर अपने-अपने जाल में खींचने के लिए अमेरिका और सोवियट रूस चाहे जो प्रयत्न करें, भारत का निर्णय भारत की जनता द्वारा ही होगा। भारत की जनता का निर्णय भारत का अपना निर्णय होगा। संसार की कोई भी शक्ति भारत को अपना निर्णय करने से नहीं हटा सकती।

भारत का झुकाव न तो अमेरिका की ओर है और न सोवियट यूनियन की ओर। बल्कि उसका झुकाव अपनी कोटि-कोटि जनता पर है। भारतीय जनता की जागृति, उसका संगठन, उसका अनुशासन, उसकी क्रियाशीलता और उसकी अभिवृद्धि ही देश का मार्ग निश्चय करेगी। भारत के सम्मुख कर्त्तव्य की बेला है कि वह अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कार्यों को पूरा करके जन-साधारण की आकांक्षाओं को संतुष्ट करे।

पर यह कैसे सम्भव है, जब कि देश में क्षुधा, दरिद्रता, अज्ञानता और रोग जीवन के सभी विनाशकारी तत्त्व मुँह बाए खड़े हैं। आज की समस्या है कि लोगों की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी हों, राष्ट्र की मानव-शक्ति बेकार न रहने पाय। इसके लिए देश में जब तक कोई क्रांतिकारी कार्य-क्रम प्रयोग में न आयगा, तब तक इस पीड़ित अवस्था में तोड़-फोड़ और हिंसात्मक शक्तियों को अधिकाधिक बढ़ने का अवसर मिलेगा। देश में

कम्युनिस्टों की वर्तमान अभिवृद्धि लोगों की बढ़ती हुई दरिद्रता और क्षुधा के कारण है। सर्व साधारण की अवस्था सुधारने के लिए जो भी प्रयत्न आवश्यक हों, उन्हें कार्य रूप में परिणत किया जाय। इस दृष्टि से चाहे ज़मीन का राष्ट्रीयकरण हो—या उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण हो या राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन हो।

भारत को कम्युनिज़म से बचाने के लिए यह काम करने का अवसर है। हम देखते है कि कम्युनिज़म के सन्देश कितनी जल्दी अपना प्रभाव साधारण जनता पर डालते हैं। वे जो वचन देते हैं, उसके अनुसार देश को आगे बढ़ाते हैं। चीन इसका एक जीवित उदाहरण है कि किस प्रकार थोड़े समय में अपने अभिवचन कार्यरूप में परिणत किये गए। अतएव वे भारतीय नेता जो देश का चीन और रूस से जुदा निर्माण करना चाहते हैं, वे यह तभी कर सकेंगे जबकि वे उन मूल कारणों को समझने में समर्थ होंगे, जिनसे हिंसात्मक तत्त्वों द्वारा कम्युनिज़म पनपता है। केवल लम्बी-चौड़ी बातों से समस्याओं का कोई हल न होगा। योजनाएँ और निरी बातें कम्युनिज़म के प्रसार को नहीं रोक सकेंगी।

उत्तरोत्तर प्रगति करने वाले राष्ट्रीय पक्ष की विजय तभी सारभूत होगी, जब कि राष्ट्र नये मार्ग की ओर तेजी से बढ़े, अन्यथा क्रांतिकारी शक्तियाँ उस पर अधिकार पा जायँगी।

भारत अभी विभाजन की पीड़ा से नहीं उभरा है। उसकी यातनाएँ अभी तक देश को सता रही हैं। ऐसी अवस्था में भारत का जुदा-जुदा राजनीतिक दलों में विभाजित होना दुर्भाग्यपूर्ण होगा। यदि त्रावणकोर, कोचीन, तेलंगाना और मद्रास आदि में कम्युनिस्ट वर्ग अपना संगठित स्वतन्त्र शासन कायम करें और केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध-विच्छेद कर लें, तो उसका परिणाम राष्ट्र के लिए कितना विघातक होगा। इसी प्रकार राजस्थान आदि प्रदेशों की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ अलग सत्ता कायम करने की चेष्टा में हैं। देश के ये विभाजन राष्ट्र को निर्बल बना देंगे। यदि ये राजनीतिक तत्त्व वृद्धि पाते रहे तो कदाचित् योरप के बालकन राष्ट्रों के समान भारत

का विभाजन न हो। इसकी अपेक्षा भारत सगठित हो और सारे देश की एक राजनीति हो।

चाहे कम्युनिस्ट हों, या अन्य कोई वर्ग, विभिन्न राजनीतिक दलों में देश की सत्ता के विभाजित हो जाने से राष्ट्र की शक्ति क्षीण होगी। उस अवस्था में यह देश राजनीतिक द्वेष का अखाड़ा बन जायगा। अतएव वे सब शक्तियाँ राष्ट्र के लिए विघातक हैं, जो देश का विघटन करती हैं। अपनी इस आंतरिक निर्बलता के कारण भारत एक शक्ति-हीन राज्य बन जायगा।

मगर अब कम्युनिस्ट दल—बाहरी प्रचार का राजनीतिक दल नहीं रहा। अब उसने वैधानिक रूप में भारत की राजनीति में प्रवेश किया है। दक्षिण में उसकी शक्ति प्रबल है। वहाँ उसकी शक्तियाँ क्रांतिकारी परिवर्तन करेंगी। वे पूँजी और ज़मीन पर अधिकार कायम करेंगे। वे एकबारगी ही देश के इस भाग को कम्युनिज़्म शासन में लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। पर अपने कार्यक्रम को अग्रसर करने में उनके सामने केन्द्रीय शासन की रुकावटें खड़ी होंगी। उस अवस्था में वे अनुशासन का पालन करेंगे या विद्रोह करेंगे? पर क्या वे अन्य राजनीतिक दलों के साथ आगे बढ़ेंगे?

साम्यवादियों को—उनके तोड़-फोड़ और हिंसात्मक कार्यों के कारण उन्हें देश का एक नम्बर शत्रु प्रकट किया। उनके विरुद्ध कोई भी मोर्चा लेने पर यह कभी संभव नहीं है कि उनसे किसी प्रकार का समझौता किया जा सके। उनसे समझौता करना क्या हुआ उनके आगे मर मिटना हुआ। योरप और एशिया का हाल का इतिहास हमें यही प्रकट करता है कि उनके आगे दबने वाला समाज अपनी स्वतन्त्र सत्ता खो देता है। समाज की वर्तमान असमानता दूर करने के लिए साम्यवादियों के संदेश जनता के लिए विशेष प्रभावोत्पादक होते हैं, किन्तु जिन हिंसात्मक उपायों से वे आगे बढ़ना चाहते हैं, वे क्या भारतीय जीवन के अनुकूल हैं।

भारतीय साम्यवादियों का संसद् और राज्यों के विधान-मण्डलों में इस बिना पर प्रवेश करना कि पार्लमेण्ट्री तरीका उनके उद्देश्य-पूर्ति के लिए सुलभ उपाय है। साम्यवादियों के संसद् और विधान-मण्डलों में प्रवेश करने

का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन्होंने अपने कार्यक्रम को वैध रूप में परिणत कर दिया और वे हिंसात्मक कार्यों की ओर न बढ़ेंगे। पर इसकी अपेक्षा साम्यवादियों के योरोपियन अनुभव हमें यह बतलाते हैं कि वे उन्होंने जब वहाँ की पार्लमेण्टों में प्रवेश करके धीरे-धीरे निर्बल संयुक्त सरकारें स्थापित करने का प्रयत्न किया। अपने इन प्रयत्नों की ओट में उन्होंने राज्यों के अनेक शासन-विभागों को हस्तगत करके राज्य-क्रान्ति की तैयारियाँ कीं। वे संसद् में खड़े होकर यह घोषित करते हैं कि अमुक परिस्थितियों में उनका दल दक्षिण भारत में स्वतन्त्र राज्य कायम करने मे समर्थ होगा। वे तो प्रकट रूप में चुनौती देते है।

कम्युनिस्टों की यह प्रगति राष्ट्रवादियों की निर्बलता के कारण हुई। कांग्रेसी और सोशलिस्ट, दोनों ही दलों को स्वयं अपने को दोष देना चाहिए। उनमें कांग्रेसी अधिक दोषी हैं, उनकी शक्ति आपसी लड़ाइयों में अपव्यय हुई। यदि वे अनेक प्रलोभनों से दूर रहकर संयुक्त रूप में खड़े होते तो साम्यवादियों को बढ़ने का कोई अवसर नहीं मिलता। पर कांग्रेसियों का जीवन मोल-तोल में बीता और आज भी उनका झुकाव उसी ओर है।

क्या बुभुक्षित और पीड़ित जनता को उनकी ओर से हटाना संभव है ? साम्यवाद तो इन्हीं गरीबों के जीवन पर वृद्धि पाता है। क्या कोई राज-शक्ति उनका सामना कर सकेगी कि वे देश के पीड़ित तत्त्वों से विलग रहें। जनता को भले ही अज्ञानावस्था में प्रकट किया जाय, पर यह सच है कि साम्यवाद एक क्रियात्मक शक्ति है, और उसके अनुयायी झूठे वायदे नहीं करते। वे जानते है कि किस प्रकार आगे बढ़ा जाय।

इसलिए संसद् और विधान-मंडलों में साम्यवादियों के प्रवेश से कोई धोखे में न पड़े। पार्लमेण्टरी पद्धति में उनके कार्यक्रम का कोई अंग नहीं है। कारण, वे यह मानते हैं कि अतीत में कहीं भी साम्यवादी कार्यक्रम ने वैधानिक तरीकों से सफलता प्राप्त नहीं की। इन उद्‌गारों के समय उनका ध्यान ग्रेट ब्रिटेन की ओर नहीं गया कि वहाँ पार्लमेंट के द्वारा साम्य-

वाद ने कितनी प्रगति की। पर भारत और एशियायी कम्युनिस्टों का ध्यान तो सदा हिंसात्मक कार्यों की ओर है।

कांग्रेस हो या सोशलिस्ट दल, इनके नेतृत्व में भारत ने विचार-विनिमय और समझौतों के द्वारा लोक-तन्त्र शासन को भले ही ग्रहण किया हो, किन्तु कम्युनिस्टों नेतृत्व में 'जनता की लोकशाही' का दूसरा ही रूप है। उसमें तो सभी विरोध हिंसा के द्वारा दबाया जाता है।

यह प्रकट है कि कम्युनिस्ट उन सिद्धांतों में कदापि विश्वास नहीं करते, जिन्हें कांग्रेस मानती है। महात्मा गांधी ने इस सिद्धांत पर सर्वाधिक जोर दिया कि कांग्रेस को अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए अपनी कार्य-प्रणाली भी उतनी आदर्शमयी रखनी चाहिए। हम अत्याचार, उपद्रव और खोटे तरीकों से अपने लक्ष्य-पूर्ति की ओर आगे न बढ़ें। इसलिये कांग्रेस के कार्यक्रम में हिंसात्मक प्रवृत्तियों को कोई स्थान नहीं है। साम्यवादी देशों में डिक्टेटर की आलोचना करना एक जघन्य अपराध है और उसकी सजा नज़रबन्दी है।

इसलिए कम्युनिस्ट जब अपने कार्यक्रम के किसी अंग को छोड़कर मेल-मिलाप के लिए आगे बढ़ते हैं, तब हमें सोचना चाहिए कि इस परिवर्तन में उनका क्या उद्देश्य है। वे थोड़े काल के लिए अपने सिद्धांतों को छोड़ सकते हैं। सच है कि जो गुड़ से मरे तो उसे जहर क्यों दिया जाय। सन् १९४६ में चेकोस्लोवाकिया के कम्युनिस्ट नेताओं ने राष्ट्रीय असेम्बली में गैर-कम्युनिस्टों से समझौता करने के लिए अपने कार्यक्रम को बदल दिया था पर जब उनके हाथ में पूरी सत्ता आ गई, तब उन्होंने सन् १९४८ में अपने कार्यक्रम को पुनः एकबारगी बदल दिया था। गैर-कम्युनिस्ट दल जो उनके मार्ग के रोड़े बने हुए थे, वे सबके सब मिटा दिये गए थे।

अतएव राष्ट्र के सब राजनीतिक दल जो साम्यवादियों के तौर-तरीकों में विश्वास नहीं करते, वस्तुस्थिति को सोचें-समझें। साम्यवादियों का बढ़ना देश में अशांति का सूचक है। पर यदि ये शांतिमय राजनीतिक दल जनता की माँगों को पूरा करने में असमर्थ होंगे, तो उस अवस्था में देश

में चाहे अशांति हो या बगावत, जनता साम्यवाद को अपनाए बिना न रहेगी। भूखी शांति से तो मर मिटना बेहतर है। आज जनता यह मानने लगी है कि कोई एक राजनीतिक दल उसकी मुक्ति का जरिया बन नहीं सकता और न केवल उसके द्वारा उसकी उन्नति हो सकती है। आज जनता साम्यवादियों से भयभीत नहीं है। वह जानती है कि उनकी निन्दा-मात्र करने से कोई लाभ नहीं है। यदि कम्युनिस्ट दल विद्रोह और अशांति का सूचक है, तो फिर चीन, रूस और पूर्वीय लोकतन्त्र देशों के लिए क्या कहा जायगा ? आज नए चीन ने कहीं अधिक समृद्धि प्राप्त की है। उसके ये प्रयत्न कुछ ही वर्षों के हैं। यह कठोर सत्य है कि हमारे राष्ट्रीय नेता देश की प्रगति करने में असफल रहे।

देश में कम्युनिस्ट तत्त्व दमन से न दबेंगे। उसकी निःसारता देखकर ही देश में उन्हें सर्वत्र मुक्त कर दिया गया। यह देखा गया कि जिस प्रकार अंग्रेजों के शासन में कांग्रेस का जितना दमन हुआ, वह उतनी ही शक्तिशाली हुई। इसलिए साम्यवादियों को जेल के सींकचों में बंद करने से वे हीरो बनेंगे और उनकी लोक-प्रसिद्धि बढ़ेगी। यह देखा गया कि जिन राज्यों में उनके दल को गैर-कानूनी घोषित किया गया, वहाँ उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की।

जनता की सेवा में अब होड़-जोड़ का प्रश्न है, जो दल जितनी कठोर साधना, त्याग और सचाई से जन-हित में अपने को खपायगा, जनता उसके नेतृत्व को ग्रहण करेगी। यदि कम्युनिस्ट राष्ट्रीय दल के स्टीमरोलर को धक्का देना चाहते हैं, और युद्ध की आवाज करते हैं, तो दूसरा पक्ष तभी उनका सामना कर सकता है, जब कि वह राष्ट्र के नव-निर्माण में अपने को खपा दे।

अन्यथा देश में कम्युनिस्ट जिस प्रगति से बढ़ रहे हैं उससे वे अपने साथ राष्ट्रीय पक्ष को भी खींच रहे हैं।

१६

धर्म-स्थानों पर प्रहार

यह प्रकट है कि यदि राज-सत्ता कम्युनिस्टों के हाथ में आ जाय तो धर्म-ध्वजियों को बड़े बुरे दिन देखने पड़ेंगे। उनके लिए नागरिक स्वतंत्रता ऐसी कोई चीज नहीं। साम्यवाद अपनी व्यवस्था और नीति के अमल में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नहीं मानता। वह नहीं मानता कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर समाज में विनाशकारी तत्त्व बढ़ें। वह तो उनका समूल नाश करता है। आज तो धर्म और संस्कृति का अर्थ राष्ट्र के विकास को रोकना है, उसे सहस्रों वर्ष पीछे ढकेलना है।

धर्म से मानव का आत्मिक विकास हो, इससे तो किसी को कोई एतराज नहीं हो सकता। पर यदि वह समाज के विकास को रोके तो नए राजनीतिक जीवन में कौन उसका समर्थन करेगा? धर्म में यदि सद्‌गुण है तो उससे मानव का विकास होना चाहिए। पर यह कैसी विचित्र स्थिति है कि उसकी रक्षा के लिए मानव का उत्थान न होने पाए। अमुक बात धर्मविरुद्ध है, इसलिए उसमें मानव का उत्थान निहित होने पर भी उसे न किया जाय, इस प्रकार की विचार-धारा निरा अंधविश्वास है।

धर्म की यह प्रवृत्ति देखकर लेनिन ने समाज के लिए धर्म को जहर प्रकट किया था। उन्होंने कहा कि इसकी ओट में लोगों की दासता बढ़ती है, वे गड्ढे में पड़े रहते हैं और अपना विकास नहीं कर पाते। हमने क्या देखा कि जिन-जिन देशों में धर्म का प्राधान्य रहा है, वे समय के प्रवाह में पीछे रह गए। उनका अन्ध-विश्वास उन्हें ले डूबा। लोगों ने धर्म को आत्मिक

उत्थान के साधन की अपेक्षा दैनिक जीवन का अंगीभूत मान लिया। उसके कायदे-कानून समाज और देश के हर काम में चलने लगे।

हमने अपने देश में देखा कि धर्म और संस्कृति के नाम पर धर्मध्वजियों ने कौन-कौन सी रुकावटें नहीं खड़ी की। एक काल था, जब कि विदेश-यात्रा पर प्रतिबन्ध था, लोग कहते थे कि विदेश जाने से धर्म डूब जायगा। इसके बाद बीसों सुधार के प्रश्न देश के सामने आए, वहाँ सुधारकों को पहाड़ की चट्टानों के समान धार्मिक पुरुषों के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। मगर जब कोई सुधार प्रचलित हुआ, और उससे समाज में प्रगति हुई, तब धर्मध्वजी भी उसके दायरे में आए और उससे लाभ उठाने में न चूके। देश का पिछला इतिहास साक्षी है कि कोन सा ऐसा सुधार हुआ जिसका धर्म के नाम पर विरोध नहीं हुआ। सती-प्रथा, विधवा-विवाह, बालिका-शिक्षण, बाल-विवाह आदि अनेक प्रश्नों के निर्णय तथा प्रसार में देश को जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इसी से देश का राजनीतिक क्षेत्र अत्यधिक विषम और छिन्न-भिन्न रहा। हमारी राष्ट्रीयता जनता की पुत्री होने के साथ धर्म और पूँजीवाद की पोषक पुत्री भी तो है। इसलिए विरासत में उसे अनेक गुण-अवगुण प्राप्त हुए। हमारी राष्ट्रीयता की यह दुर्गति हुई कि जिससे धार्मिक विरोध भी वृद्धि पा सके और आर्थिक विषमता से पैदा हुआ बौद्धिक मतभेद भी विकास पाए। आज हमारा देश इन विचार-धाराओं में इतना जकड़ा है कि उससे मुक्त होने में वर्षों नहीं, शताब्दियाँ लगेंगी। इससे राष्ट्र तभी छुटकारा पा सकता है, जब कि किसी क्रान्तिकारी अधिनायक की सत्ता देश में कायम हो।

अतएव जहाँ-जहाँ साम्यवाद फैला, वहाँ-वहाँ देश और समाज को धर्म के बन्धनों से मुक्त किया। रूस में जो राजनीतिक क्रांति हुई उसने समाज की व्यवस्था धर्म के गठबन्धन से पृथक् की। नवीन चीन ने भी अपना निर्माण नए धरातल पर किया। उसने अपने अतीत काल के दार्शनिक और धर्म वक्ताओं की कोई भर्त्सना न करके यह प्रकट किया कि आज के जीवन में उनका कोई स्थान नहीं है।

विज्ञान के इस चरम विकास के काल में भी हमारा देश क्रांतिकारी

सामाजिक परिवर्तनों की ओर आगे नहीं बढ़ना चाहता। भारत का उत्थान तब तक संभव नहीं है, जब तक नए आधार पर समाज का विकास न हो। समाज के सिद्धान्त कितने भी महान् हों, पर आज उनका क्या उपयोग हो सकता है। अनेक रीति-रिवाजों को ही धर्म मान लिया गया और ये रूढ़ियाँ समाज को आगे नहीं बढ़ने देतीं। यह नहीं सवाल किया जाता कि समय बदलता है, समाज आगे बढ़ता है। आज के समाज को पुरानी वेश-भूषा किस प्रकार उपयुक्त होगी। यदि पुराने तंग वस्त्र आज भी समाज पहनेगा, तो एक दिन वह इन प्रतिबन्धों को तोड़कर आगे बढ़ेगा और अपनी तंग वेश-भूषा को चीर-फाड़ डालेगा। यदि समाज शांतिमय तरीकों से नए परिवर्तनों को न अपना सका, तो उसे क्रांति का सामना करना पड़ेगा। रूढ़ियों तथा बंधनों से जकड़ा हुआ समाज मुर्दा बन जाता है। आने वाले परिवर्तन क्रांति के रूप में उसका चोग़ा बदलने में विलम्ब न करेंगे।

राष्ट्र दुर्बल रहता है, और वह संसार के देशों में अग्रणी नहीं हो सकता, जब कि उसका सामाजिक संगठन कमजोर होता है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन बन्धनों को मिटा दें। पर हम धार्मिक दृष्टिकोण से ही देखें कि आज कैसी अवस्था विद्यमान है। हमारे देव-मन्दिर, मठ और महन्तों के स्थान समाज का कितना उत्थान करते हैं। कितने मन्दिर हैं, जहाँ समाज के बालकों को शिक्षा दी जाती है, और उनके पुजारियों का शिक्षा तथा धर्म का कितना क्या ज्ञान है। उनका जीवन कितनी साधना और तपस्या तथा समाज की सेवा में व्यतीत होता है।

बड़े-बड़े मठ और धर्म-स्थानों में कितनी अपार सम्पत्ति जमा है, हम देखते हैं कि उसका संकट-काल में भी उपयोग नहीं हो पाता। एक प्रदेश में बाढ़ और बीमारी से प्रजा में त्राहि-त्राहि मची है, पर मठाधीश उसी ठाठ-बाट से रहते हैं और भोग लगाते हैं, किंतु वे अपने कोष से एक पाई भी पीड़ितों के लिए नहीं खर्च करते हैं। ऐसी अवस्था में दूर-दूर की सोसाइटियाँ वहाँ अन्न, वस्त्र, और औषधि तथा द्रव्य लेकर पहुँचती हैं और लोगों को जीवन-दान देती है। एक मठाधीश के जीवन को महात्मा गांधी के

जीवन से मिलाइए, दोनों की साधना और तपस्या तथा सेवा में कितना घोर अन्तर है।

एक गिर्जाघर का पादरी विदेशों में अन्य धर्मो की दलित समाज के बीच में जाकर कैसी सेवा करता है। दोनों में से कौन ईश्वर का सच्चा प्यारा है। मन्दिर और मठों में चढ़ने वाली सम्पत्ति तो मन्दिर की व्यवस्था और जनता की सेवा के लिए है, न कि उनके व्यवस्थापकों के भोग-विलास के लिए। पुजारी और मठाधीशों को अपनी आजीविका के लिए काम करना चाहिए। उनका उस धन पर कोई नैतिक अधिकार नहीं है।

पिछले दिनों दक्षिण भारत में कम्युनिस्टों की जो विजय हुई है, उससे उन्होंने इन धर्मध्वजियों को सचेत कर दिया कि वे इस सम्पत्ति को छीनकर राष्ट्र के अधिकार में कर लेंगे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह प्रकट किया कि वे धार्मिक क्षेत्रों की पूँजी कायम न रखेंगे। उस पर उनका सीधा प्रहार होगा। इसलिए धर्मध्वजियों के लिए अब भी अवसर है कि वे समय को पहचानें और अपनी अवस्था में आमूल परिवर्तन करें। वे जनता के सच्चे सेवक बनें और धर्म-स्थानों की सम्पत्ति समाज के उत्थान में लगायँ। उन्हें यह देखना चाहिए कि कम्युनिस्टों के प्रभाव में लोक-तन्त्र का रूप नहीं रहता है। ये तो तोड़-फोड़ और विध्वंस की नीति में विश्वास करते हैं। अतएव जब वे उन्हें नष्ट करने के लिए बढ़ेंगे, तो वे नष्ट करके ही छोड़ेंगे।

पुजारी और मठाधीशों के जीवन में आमूल परिवर्तन होने पर ही नए समाज में शासन के नियंत्रण में उनका अस्तित्व कायम रह सकेगा। नए राजनीतिक दल अकर्मण्य, धनजीवी और बुद्धिजीवी धर्मात्माओं का समाज से उच्छेदन करेगा, केवल कम्युनिस्ट ही नहीं, लोक-तन्त्र शासन भी उनकी व्यवस्था आदि में आमूल परिवर्तन के लिए अग्रसर होगा। आज तो उनकी स्थिति उस रोग के समान है, जो जितना स्थान घेरता है, वह उतना ही अधिकार फैलाता है। समाज में ज्ञान की ज्योति प्रकट न होने से आज धार्मिक क्षेत्र राष्ट्र के व्यापक स्पन्दन से कोसों दूर हट गया है। आज का धार्मिक जीवन

धार्मिकता के कलरे व्यौंते आच्छादनों से अपने को छिपाये हुए हैं। जहाँ तक इन धर्मधुरीणों का प्रश्न है, उसे सजीवता के वैभव में देखने का उनका कोई मनोभाव नहीं है। वे तो दर्पण की छाया के समान उसके स्पर्श से दूर खड़े हुए हैं। अतएव इनके इस जीवन को क्या किया जाय। इस दिशा में नव क्रांति ही अपेक्षित है। हम देखते हैं कि अन्य देशों में जो परिवर्तन हुए, वे यहाँ भी हुए बिना न रहेंगे। यह समय था कि धार्मिक क्षेत्र के लोग स्वयं ही अपना जीवन बदलते, अपने धर्म-स्थानों की व्यवस्था में परिवर्तन लाते और सारे धन को राष्ट्र की सेवा में लगाते।

इस नई स्थिति में धर्म को राष्ट्र और समाज की प्रगति का अवरोधक नहीं होना चाहिए। पर जिन देशों में उसने अड़ंगा लगाया, वहाँ कम्युनिस्टों ने उसका बड़ी बेदर्दी से मूलोच्छेदन किया। रूस और योरप के वे सब देश जो उसके अन्तर्गत हैं तथा एशिया के चीन आदि में धर्मध्वजियों की जो दुर्दशा हुई, वही संकट भारतीय कम्युनिस्ट यहाँ के धर्मध्वजियों पर लाए बिना न रहेंगे।

कम्युनिस्ट यह उद्घोषित कर चुके हैं कि वे समाज के नये निर्माण में इन धर्म-स्थानों को एक क्षण के लिए नहीं रहने देंगे। उनके लिए यह कुछ असंभव नहीं है। वे अपनी कार्य-पद्धति द्वारा इसे सहज में पूर्ण करने में समर्थ होंगे। जैसे तेलंगाना में उन्होंने अपने पक्ष में लोकमत का निर्माण किया, वहाँ के किसान और मजदूरों में साम्यवाद की भावनाएँ भर दीं, उसी प्रकार जहाँ-जहाँ सम्पत्तिशाली मठ-मन्दिर होंगे, वहाँ के जनवर्ग पर पहले वे अपना अधिकार कायम करेंगे, उसके उपरान्त उन्हें इन धर्म-स्थानों में अधिकार करने में देर न लगेगी। उनके शक्तिशाली आक्रमण के सामने वे बेतहाशा भाग खड़े होंगे। उनमें इतना साहस नहीं होगा कि वे किसी प्रकार मुकाबला कर सकें। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इन मठ-मन्दिरों के कोषों में कितना धन जमा है, और उस धन का किस प्रकार उपयोग होता है, और इसके सिवा उन्हें प्रतिवर्ष और कितनी आय होती है। यदि उनकी बढ़ती हुई शक्ति ने तोड़-फोड़ और हिंसा का प्रयोग इस ओर नहीं किया, तो वे

वैधानिक रूप में उनकी सम्पत्ति पर अधिकार करेंगे। जिन राज्यों की धारा-सभाओं पर उनका अधिकार होगा, वहाँ वे कानून द्वारा उनकी सम्पत्ति को प्राप्त कर लेंगे।

सम्प्रति भारतीय कम्युनिस्ट धार्मिक स्थानों को नष्ट नहीं करना चाहते, किंतु उसकी धन-राशि और आय पर अवश्य प्रहार करना चाहते हैं। वे इस धन को राष्ट्र के नव-निर्माण के कामों में लगायँगे। इस उलट-फेर से वे भारतीय समाज का ढाँचा ही बदल देंगे। उनकी कामना है कि समाज का नव-निर्माण हो। इन धार्मिक स्थानों में वे तत्व न रहें और न वह भावना उत्पन्न हो, जिस से कि धनी वर्ग तथा प्रतिक्रियावादी राष्ट्र की प्रगति को रोकने का अवसर पायँ।

भारतीय समाज धार्मिक भावना में इतना जकड़ा हुआ है कि उसे अपने भले-बुरे का कुछ ज्ञान नहीं है। आज छोटे-बड़े मन्दिर और मसजिदों की आय अनियंत्रित है, उनके अधिकारी चाहे जैसे उसे व्यय करें। इस अवस्था में यदि राष्ट्रीय सरकार कोई नियंत्रण करे, लोक-प्रतिनिधियों द्वारा कोई व्यवस्था करे तो यह कहा जायगा कि शासन धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करता है। वह विधान के आदेशों का उल्लंघन करता है। पर यह प्रकट है कि यदि राष्ट्रीय सरकार इस ओर उदासीन रही या अपनी असमर्थता के कारण कुछ न कर सकी, तो ऐसी परिस्थितियाँ स्वतः उत्पन्न होंगी, जो क्रांति का आह्वान करेंगी, उस समय अग्रगामी राजनीतिक दल उनकी व्यवस्था पलट देंगे।

ये संगठन समाज के वक्षस्थल पर कोढ़ है। इन के होते हुए देश में सामाजिक और आर्थिक समानता कायम होना स्वप्नवत् है। जिस दिन भारत इस क्षेत्र में मुक्ति पायगा, वह उस के नवनिर्माण का सूचक न होगा। तब भारत सभी दिशाओं में उन्नति करने में समर्थ होगा। पर इसका यह अर्थ नहीं कि देश अपने आध्यात्मिक जीवन को तिरोहित कर दे। आज की माँग तो केवल यह है कि धर्म के नाम पर होने वाली वर्तमान दुकानदारी और अंध-विश्वास तथा भेद-भाव का समूल नाश

हो जाए। यह होने पर ही एक सजीव शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण होगा। देश के सभी लोग एक सूत्र में बँध जायेंगे। आज का भे -भाव समूल मिट जायगा। तब भारत ससार में एक सजीव राष्ट्र बनेगा।

उस समय भारत के आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश संसार-भर पर पड़ेगा। इस मूलोच्छेदन का यह मान कदापि नहीं है कि देश धर्म-विहीन और अनीतिमय बन जाय।

१७

पूंजीवाद का विनाश

एक समय था, जब कि संसार साम्यवाद से भय खाता था। लोग सोचते थे कि वह कितना भयंकर है, कि उससे लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सम्पत्ति सब-कुछ छिन जायगी। वे शासन की कठपुतली बन जायँगे। शासन जो कहेगा, उन्हें वही काम करना पड़ेगा। चाहे किसी व्यक्ति की क्षमता और लगन किसी काम के लिए हो या न हो, किंतु यदि शासन ने उसे अमुक करने का आदेश दिया तो वह उससे विमुख न रह सकेगा। मगर यह भय धीरे-धीरे दूर हुआ, और आज हर एक व्यक्ति अपने को साम्यवादी कह सकता है। आज एक शाहजादा भी अपने को सोशलिस्ट कहने में आगा-पीछा नहीं करता। कभी-कभी देश के उद्योगपति भी अपने को सोशलिस्ट घोषित करते हैं। इस प्रकार साम्यवाद तथा समाजवाद संसार के लिए भय की चीज नहीं रहे।

मगर आज साम्यवाद संसार के लिए अत्यन्त भयावह प्रकट हो रहा है। इस देश में आर्थिक दुरवस्था के कारण वह पनपा और धीरे-धीरे उसने अपना स्थान बना लिया। दक्षिण के जिस भाग में जनता अधिक त्रस्त थी, वहां बड़ी मजबूती से उसने अपने पैर जमाए। इतना ही नहीं, नये निर्वाचन में उसके प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान-सभाओं में तथा संसद् तक में पहुँचे। इस वैधानिक रूप में उनकी प्रगति यह प्रकट करती है कि देश में कांग्रेस के उपरान्त उनका ही स्थान है। यदि कांग्रेस ने जनता पर अगले वर्षों में अपना अधिकार खो दिया तो कम्युनिस्टों की वर्तमान प्रगति और ज्यादा बढ़ेगी। तब उनका संसद् और राज्यों के विधान-मंडलों में उल्लेखनीय

बहुमत होगा। कम्युनिस्टों के विधान-मंडल तथा संसद् में पहुँचने पर कांग्रेस की अवस्था और क्षीण हो सकती है, यदि वह अन्न और वस्त्र का प्रश्न हल करने में समर्थ न हुई। आज सारे विश्व का ध्यान भारतीय कम्युनिस्टों की प्रगति की ओर है। भारतीय राष्ट्र साम्यवादियों से क्यों भय खाता है, वे भी तो आर्थिक दृष्टि से समाज का उसी प्रकार निर्माण करना चाहते हैं, जिस प्रकार से कि अन्य वर्ग। यह सच है, मगर कांग्रेस और समाजवादी बिना तोड़-फोड़ और हिंसा के कार्य करते हैं, वहाँ कम्युनिस्ट हर उपाय से आगे बढ़ते हैं। वे हिंसा और तोड़-फोड़ द्वारा समाज तथा शासन की व्यवस्था नष्ट करके देश में अपना अधिकार कायम करते हैं। इसके सिवा वे लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं मानते। उनका लक्ष्य अपने वर्ग के नेताओं तक आधारित नहीं रहता, उनके सामने लेनिन और स्टालिन तथा वहाँ की राजनीति होती है वहाँ से उन्हें सारी प्रेरणाएँ मिलती हैं। उनके दिमाग में यह बात नहीं आती कि वे अपने कार्यक्रम में अपने देश की विचार-धाराएँ और कार्यक्रमों का भी खयाल करें और यहाँ की सभ्यता और संस्कृति तथा मान्यताओं को भी मानें।

कम्युनिस्टों से कांग्रेस तो बहुत दूर है, पर साम्यवादी पार्टी जो आर्थिक कार्यक्रम में उसके नजदीक है, उससे गठजोड़ नहीं करना चाहती। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि ये ही कम्युनिस्ट हैं, जिन्होंने सन् १९४२ के आन्दोलन में ब्रिटिश सरकार का साथ दिया था। उन्होंने सरकार को सहयोग देकर अतुल धनराशि अर्जन की थी, क्योंकि रूस मित्रराष्ट्रों के साथ युद्ध में लड़ रहा था। इस बिना पर ही वे भारत को गुलाम बनाए रखने वाले अंग्रेजों के समर्थक बन गए। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की भर्त्सना कर इस देश में विदेशी शासन को मजबूत करने में साथ दिया। इसके उपरान्त देश में जब राष्ट्रीय शासन स्थापित हुआ, तब उन्होंने अनेक कुचक्र चले। उन्होंने राष्ट्रीय शासन को हिंसा के आधार पर खत्म करने का प्रयत्न किया। तोड़-फोड़ के द्वारा उन्होंने राष्ट्र की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति नष्ट की और सैकड़ों लोगों के प्राण गये, सो अलग। इन्हीं परिणामों

से भारत का समाजवादी पक्ष कम्युनिस्ट वर्ग से पृथक है। समाजवादी दल तथा कांग्रेस दोनों संस्थाएँ एक समान स्थिति में हैं।

जहाँ तक समाजवाद का प्रश्न है, इंग्लैंड के मजदूरों के लिए वह आम चीज बन गई है। वहाँ सभी अपने को समाजवादी या सोशलिस्ट कहते हैं और समाजवाद के आधार पर इंग्लैंड के मजदूर दल ने सत्तारूढ़ होने पर अनेक योजनाओं को स्थान दिया। वहाँ के मजदूर समाजवादी नेताओं ने अनेक प्रमुख धंधों का राष्ट्रीयकरण किया। कोयले आदि की खानें और इस्पात के धंधे के राष्ट्रीयकरण—इंग्लैंड के मजदूरों की महत्वपूर्ण प्रगति है। पर यह देखा गया कि सरकार के हाथ में धंधे आने पर काफी सफलता नहीं हुई। राज्य द्वारा संचालित धंधों में व्यय अधिक हुआ, उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई और मजदूरों के कष्ट भी कम नहीं हुए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयकरण ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य देशों में सफल नहीं हुआ। पर उन देशों में यह आर्थिक व्यवस्था सफल हुई, जहाँ कि उद्योग-धंधों का संचालन सहकारी आधार पर हुआ। मानव-प्रकृति में ऐसे तत्त्व हैं, जो अपने अधिकार तथा सत्ता में सहज में आगे बढ़ते हैं—तब वे संचालन में अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। इस दृष्टि से चीन, बलगेरिया और चेकोस्लोवाकिया में सहकारी संगठनों द्वारा उत्पादन होना सर्वथा उल्लेखनीय है।

सोवियत रूस जो एक प्रधान कम्युनिस्ट देश है, वह भी गणतन्त्र है। उसका साम्यवाद आज से अनेक वर्ष पूर्व लेनिन के काल का है। मगर दूसरे महायुद्ध के उपरान्त योरप के जो देश कम्युनिस्ट प्रभाव-क्षेत्र में आए, उन्होंने अपनी अर्थनीति पूर्ण रूप से सोवियत रूस के आधार पर कायम नहीं की। योरप के इन कम्युनिस्ट देशों में सहकारी संगठनों की व्यवस्था में कच्चे और तैयार माल का उत्पादन आश्चर्यजनक रूप में हुआ। कम्युनिस्ट चेकोस्लोवाकिया सहकारी संगठनों के उत्पादन द्वारा संसार का एक प्रगतिशील औद्योगिक देश बन गया। उसकी यह उन्नति देखकर जहाँ रूस चकित हुआ, वहाँ संसार के

अन्य देशों को भी ईर्ष्या हुई कि उस के कार्यक्रम को अपनायें।

लोग कम्युनिस्टों से चाहे जितने भयभीत हों, पर वह वस्तुतः ऐसी चीज नहीं है। दो-एक बातों को छोड़कर उनमें और अन्य प्रगतिशील राजनीतिक दलों में कोई अन्तर नहीं है। हमने देखा कि एशिया में नया चीन एक प्रभावशाली कम्युनिस्ट देश है, पर क्या वहाँ कम्युनिस्ट तत्वों का उसी रूप में उपयोग हुआ, जिस प्रकार कि सोवियत रूस में। चीन का वातावरण ऐसा नहीं था कि राज्य किसानों की जमीन जब्त करके अपनी व्यवस्था में खेती करे। चीन के कम्युनिस्ट शासन ने जमींदारों से जमीन छीन कर उसे किसानों में वितरण किया, जिस से कि वह सब के पास नियत परिमाण में हो, और वे सब उसके मालिक हों और उत्पादन बढ़ायें। किसानों को जब जमीन का मालिक बनाया, तब उनमें उत्पादन बढ़ाने की भावना का उदय हुआ। पर यदि जमीन राज्य के अधिकार में होती तो चीनी किसान पैदावार बढ़ाने में इतनी दिलचस्पी शायद न लेते। सहकारी आधार पर चीनी किसानों का भूमि पर अधिकार होने से राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था में नव जीवन आया। इतना ही नहीं शासन निजी ने धंधों को कायम रहने दिया। केवल सार्वजनिक—प्रमुख धंधे राष्ट्र के संचालन में आए। पर उनमें भी उद्योगपतियों का सहयोग लिया गया। इस दृष्टि से हम देखें कि नये चीन में ऐसी क्या बात है, जिससे कुछ देश भयभीत होते हैं। वह उसी कार्यक्रम को अग्रसर करता है, जो इंग्लैंड का समाजवादी मजदूर-दल करना चाहता है। इस अवस्था में कम्युनिस्टों से भय खाने की क्या आवश्यकता है? साम्यवाद और समाजवाद— दोनों ही वर्गहीन समाज चाहते हैं, दोनों ही चाहते हैं कि जमीन और कारखाने राज्य की सम्पत्ति हों और उनके लिए राज्य कोई मुआवजा न दे। इस स्थिति में भारतीय कम्युनिस्ट दल यह घोषित करता है कि वह हिंसात्मक प्रयत्नों से दूर रहेगा। तब वह निश्चय ही देश के अन्य राजनीतिक दलों के नजदीक के आ जाएगा। उस अवस्था में कांग्रेस, समाजवादी दल और संयुक्त पार्टी दल संगठित होकर इस विशाल देश को सबल बनाने में समर्थ

होंगे। पिछले अनुभवों से भारतीय कम्युनिस्ट भी यह निश्चय करने में आगे आयँगे कि उन्हें अपनी राजनीति विदेशी राजनीति से स्वतन्त्र रखनी चाहिए। भारत किसी राष्ट्र से प्रेरणा नहीं चाहता। वह तो अपने देश के नेताओं का नेतृत्व ग्रहण करेगा और उनके बताए हुए मार्ग पर चलेगा।

भारत में राष्ट्रीयकरण के लिए कांग्रेस भी सोशलिस्ट और कम्युनिस्टों के समान प्रतिज्ञा बद्ध है। पर कांग्रेस अपने सामने का नक्शा देखकर यह सोचती है कि राष्ट्रीयकरण में अनेकानेक कठिनाइयाँ हैं। यकायक कदम उठाने से देश में अशान्ति उत्पन्न होगी, शक्ति छिन्न-भिन्न हो जायगी और उत्पादन की प्रगति सर्वथा रुक जायगी। अन्यथा वह राष्ट्रीयकरण में किसी से पीछे नहीं है। उसने जमींदारी का विनाश किया। इस कार्य में उसने राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी के आदेशों का अनुसरण किया। इस देश के लिए लेनिन और स्टालिन की अपेक्षा महात्मा गांधी का जीवन कहीं अधिक प्रेरणादायक और क्रांतिकारी है। इस दिशा में कांग्रेस को समाजवादी दल का अनुभाजन बनना पड़ा।

समाजवादी और कम्युनिस्ट दोनों ही मुआवजे के विरोधी हैं। वे जमींदारों को कुछ नहीं देना चाहते। मगर उद्योग-धंधों के सम्बन्ध में समाजवादी दल मुआवजा देना चाहता है, किंतु कम्युनिस्ट वर्ग यहाँ भी कुछ नहीं। समाजवादियों के मुआवजा देने की पद्धति भी हिसाब-किताब के जमा-खर्च की है। वे उद्योगपतियों पर इतना सम्पत्ति-कर लगाना चाहते हैं कि उसकी आय से उनका मुआवजा चुक जाय। मगर उन्होंने यह नहीं सोचा कि कम्युनिस्ट चीन ने विदेशियों की सम्पत्ति भले ही बिना मुआवजे के जब्त कर ली हो, किंतु वे भी देशवासियों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में यह नीति अमल में नहीं ला सके। उन्होंने जिनकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार कायम किया, उन्हें राज-मार्ग पर नंगा नहीं खड़ा कर दिया।

मगर इस देश में समाजवादी और कम्युनिस्ट मुआवजा देने के सम्बन्ध में स्पष्ट नीति नहीं रखते। कम्युनिस्टों ने दक्षिण में विविध राज्यों में विजय

प्राप्त करके यह घोषित किया है कि वे आर्थिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए बिना न रहेंगे। उन्होंने यह उद्घोषणा की कि जिन-जिन लोगों के पास धन और सम्पत्ति है वे उसे जब्त कर लेंगे। वे किसी के पास इतना अतुल धन न रहने देंगे। शासन हस्तगत करने पर वे साम्यवादी आधार पर निर्माण करने में बढ़ेंगे। जहाँ वे निज़ाम को हटा देंगे, वहाँ उसकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेंगे। इन प्रयोगों को अमल में लाने के लिए वे नैतिकता तथा अनैतिकता का कुछ विचार न करेंगे। दक्षिण के वारंगल आदि कई भागों में कम्युनिस्टों का प्राधान्य है। उन्हें अपने पथ से हटाने में आचार्य विनोबा भावे भी समर्थ न हुए। उनके मनोविचार में जिन विचारों के कीटाणु उत्पन्न हो गए हैं, उनका मिटना सहज नहीं दिखता।

विश्व के रंगमंच पर भारत की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार के देशों में उसकी एक ऐसी प्रमुख सैनिक स्थिति है, कि उसकी आरम्भिक अवस्था अत्यन्त सुदृढ़ और शक्तिशाली होनी चाहिए। पर यह तभी संभव है जब कि सब दल एक समान कार्य-क्रम से देश के उत्थान में आगे बढ़ें। सोशलिज्म का समर्थन पंडित जवाहरलाल नेहरू भी करते हैं। अतः आगे आने वाले दिन अग्नि-परीक्षा के हैं। सोशलिज्म के आधार पर सभी प्रगतिशील दलों को अग्रसर करके राष्ट्र का विकास किया जाय तो आगे आने वाला भारत संसार के लिए अधिक बलवान प्रकट होगा। आज उसका अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व निर्बल पड़ जाता है, जब कि वह दूसरे देशों के सामने अपने उदर-पोषण के लिए प्याला आगे रखता है। संसार में शक्तिहीन तथा क्षुधार्थियों का कोई गौरवपूर्ण स्थान नहीं होता। साम्यवाद के तत्त्व आगे बढ़ने से रुक सकते हैं यदि राज्य सत्ता और राजनीतिक दल अपनी समस्त शक्तियाँ रोटी और कपड़े का प्रश्न हल करने में लगायें। इस निर्वाचन की विजय तथा पराजय सार-हीन होगी यदि हमने बड़ी तेजी से अपने उपलब्ध साधनों से इस समस्या को हल नहीं किया। तब भारत के कम्युनिस्ट दल का प्रभाव देश-व्यापी हुए बिना न रहेगा और आज जो वे कहते हैं, उसे पूरा किये बिना न रहेंगे। भारत को एक युद्ध की स्थिति

में मानकर उत्पादन बढ़ाने की वेला है। यदि हम इसमें जरा भी चूके तो भयंकर क्रांति हमारे सम्मुख खड़ी है।

कल जो चीन में हुआ, वह आगे भारत में होगा। अब यह समय नहीं है कि हमारा नेतृवृंद पुराने चोगे में पैबन्द लगाकर देश को आगे बढ़ाये; वस्तुत: देश की वह अवस्था नहीं रही। देश के लिए तो एक नवीन आवरण—एक नया कार्यक्रम प्रयोजनीय है। वह ऐसी योजना हो, जिससे कि कोटि-कोटि पीड़ित मानवों में नवीन उत्तेजना—नवीन भावनाएँ उत्पन्न हों, और वे एक साथ कदम-ब-कदम नए निर्माण की ओर चल पड़ें। सारा संसार इस प्रतीक्षा में है कि विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला भारत किस प्रकार अपना नव-निर्माण कर समस्त देशों के लिए शक्तिशाली प्रकट होता है। पूर्व और पश्चिम के सभी देश उसकी ओर उत्सुकतापूर्ण नजर डाल रहे हैं। उसकी नई रचना समस्त एशिया के लिए संदेशवाहक होगी। अब महलों में तथा सरकारी दफ्तरों में बहस-मुबाहसा करने, और योजना गढ़ने का समय नहीं है। अब तो सत्याग्रह-संग्राम के समान छोटे और बड़े सबको मैदान में आ निकलने और कार्य में जुट जाने का समय है। राष्ट्र की सारी शक्तियाँ अपने-अपने ढंग से उत्पादन में लगकर आगे बढ़ें।

सोशलिस्ट तथा कम्युनिस्ट—दोनों ही भारतीय उद्योग-धंधों में लगी हुई विदेशी पूँजी जब्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे कहते हैं कि चीन के समान हमें भी विदेशी पूँजी जब्त कर लेनी चाहिए। भारत के प्रमुख उद्योग-धंधे और व्यवसाय विदेशियों के अधिकार में हैं। जूट के कारखाने, चाय के खेत, और रासायनिक कारखाने तथा बैंक और बीमा-कम्पनियों पर विदेशियों का सर्वाधिक प्रभुत्व है। इन उद्योगों और व्यवसायों के संगठन में भारतीयों को कोई स्थान नहीं है। अतएव, इन उद्योग-धंधे तथा व्यवसायों को जब्त करना तथा नई विदेशी पूँजी की माँग करना दो सर्वथा नई चीजें हैं। नए उद्योग-धंधों में पूँजी या तो राज्य-अधिकार पर प्राप्त होगी या निजी रूप में भी प्राप्त होगी तो उसमें विदेशियों का सर्वाधिक अधिकार नहीं होगा, इसमें उनकी पूँजी पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगी और उनका कार्य-

काल भी सीमित रहेगा तथा उन्हें भारतीयों को औद्योगिक शिक्षा देनी होगी।

इन सब दृष्टियों से वर्तमान विदेशी पूँजी का ज़ब्त होना राष्ट्र के नव-निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस पूँजी को ज़ब्त करके हम संसार को आगाह कर सकते हैं कि हमारा यह प्रयत्न नई पूँजी का मार्ग अवरुद्ध करने वाला कदापि नहीं है। हमारा राष्ट्र नए आधारों पर औद्योगिक विकासों के लिए नई पूँजी का स्वागत करेगा।

पर हम जहाँ विदेशी पूँजी ज़ब्त करें, वहाँ समाज की नई रचना के लिए देशी पूँजी के उद्योग-धंधों का भी राष्ट्रीयकरण करें। बिना इसके समाज में सम्पत्ति का समान वितरण संभव न होगा। यद्यपि कांग्रेस ने भारतीय उद्योगपतियों से दस वर्षों का समझौता किया है किंतु पूँजी-पतियों के प्रभुत्व में यह अवधि बढ़ती ही रहेगी। कांग्रेसी शासन यदि समाज का आर्थिक दृष्टि से नव निर्माण करता तो आज देश में नवजीवन होता। समाज की वर्तमान भेदभावपूर्ण अवस्था लोप हो गई होती। आज तो अंग्रेज़ जिस रूप में देश को छोड़ गए और जो परम्परा कायम कर गए उसमें हमने तनिक परिवर्तन नहीं किया। गोरों के बदले में शासन की गद्दियों पर भारतीय बैठे, किंतु समाज का रूप न बदलने से लोगों को स्वराज्य का अनुभव नहीं हुआ। एक ओर कुछ थोड़े से धनी वर्ग के हाथ में राष्ट्र की सारी पूँजी है तो दूसरी ओर कोटि-कोटि जनता नंगी और भूखी बनी हुई है। यह भूखी स्वतन्त्रता कोटि-कोटि मानवों के लिए अधिक त्रासजनक हुई। यदि स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर देश में आर्थिक क्रांति हुई होती तो समूचे राष्ट्र का नव-निर्माण हुए बिना नहीं रहता। पर पूँजीवाद के दबाव में वर्तमान शासन आगे नहीं बढ़ सका। हमने शासन का रूप कोआप-रेटिव कामनवेल्थ रखा, और समाज में से, असमानता दूर करने का अपना लक्ष्य प्रकट किया, किंतु उस दिशा में हम अग्रसर नहीं हुए। पूँजीवादी वर्ग और साधारण वर्ग की वर्तमान असमानता दूर करने के लिए कांग्रेसी शासन न तो उद्योग-धंधों और व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण कर सका और न धनी वर्ग पर संपत्ति-कर या मृत्यु-कर लगा सका। राष्ट्रीयकरण और सम्पत्ति-कर

लगने पर धनी और निर्धन वर्गों की वर्तमान असमानता दूर हो सकती है।

आज ग्रेट ब्रिटेन को लीजिए। वहाँ पहले के समान बड़े धनी रहे ही नहीं। और जो धनी-वर्ग है, उसे राज्य को भारी कर चुकाना पड़ता है। एक व्यवसायी को दो हजार पौण्ड आय के लिए दो लाख पौण्ड से अधिक धन उपार्जन करना पड़ता है। इस देश में अभी तक राष्ट्रीय आय का कोई आधार निर्धारित नहीं किया गया। यदि निम्न स्तर की आय पाँच हज़ार रुपए कर दी जाय और इस रकम के ऊपर आय-कर लगे तो सर्वसाधारण को राहत मिल सकती है। इसी प्रकार धनी वर्ग को एक लाख रुपए की आय करने दी जाय। इससे अधिक आय पर राज्य नब्बे या पिचानवें प्रतिशत तक आय-कर वसूल करे तो समाज की वर्तमान असाधारण असमानता दूर हो सकती है।

जब तक धनी वर्ग पर अंकुश नहीं लगेगा तब तक देश में कल्याणकारी राज्य की स्थापना होना संभव नहीं है। जब पूँजीपति-वर्ग लोक-तंत्र पर अधिकार जमाता है, तो वह बेमौत मर जाता है। तब केवल उसका ढाँचा-मात्र रहता है। वह अवस्था साम्यवादी क्रांति का मार्ग प्रकट करती है। भारत में लोक-तन्त्र ने विजय प्राप्त की है, किन्तु वह परीक्षा के मार्ग में है।

लोक-तन्त्र की तभी विजय होगी, जब राष्ट्र की वर्तमान असमानता दूर होगी। सम्पत्ति का समान वितरण होने पर ही जनता की समस्याएँ हल होंगी। कम्युनिस्ट या अन्तर्राष्ट्रीय तीसरी शक्ति तब तक प्रभावोत्पादक नहीं होती, जब तक कि उस नीति का अनुसरण करने वाला देश अपनी आन्तरिक समस्याओं का हल नहीं करता।

समाज के वर्तमान ढाँचे का राष्ट्र के नवजीवन में कोई स्थान नहीं है। उसकी उपयोगिता नष्ट हो चुकी है। वह मृत्यु-तुल्य रूप है। वह युग की आत्मा के विपरीत है।

यदि कांग्रेस इस समस्या को हल न कर सकी और कदाचित् कम्युनिस्ट दल से देश दूर रहा, तो समाजवादियों पर नेतृत्व का भार पड़ेगा। सामने दैत्य हो या दानव विनाश सामने देखकर कोई दल भाग खड़े होने के

मार्ग में हो, किंतु नवराष्ट्र उसके पीछे चलेगा, जो उसकी नौका बड़ी सावधानी से खेएगा।

आर्थिक विषमता का भेद-भाव मिटाकर भारत इतिहास का एक नया अध्याय लिखने जा रहा है। नए भारत में पूँजीपतिवर्ग जनता का शोषण न कर सकेगा। यह प्रकट है कि पूँजीपतियों के उत्पादन की वर्तमान व्यवस्था जनता के शोषण का साधन बनती है। भारत के सम्मुख यह संकट कोई नया नहीं है। संसार के प्रत्येक राष्ट्र ने इस प्रकार के संकट का सामना किया है। पूँजीपति वर्ग देश के उत्पादन में वृद्धि कर सकता है, किन्तु उसमें खतरा यह है कि वह सम्पत्ति के समान वितरण में रोड़े अटकाने वाला है।

समाज के नव-निर्माण का कार्य सरल नहीं है। उसके लिए अकथनीय परिश्रम, त्याग, तप और बलिदान की आवश्यकता है। समाज का आर्थिक भेद-भाव मिटाने पर ही हम अपने भविष्य को सुरक्षित और सुख-समृद्धि-सम्पन्न बना सकेंगे। वह दिन ले आने का हमें सतत प्रयत्न करना चाहिए, जब राष्ट्र के धन का असमान वितरण और समाज की वर्तमान विषम अवस्था बीती बात बन जाय। निश्चय मानिए, तब यह देवताओं की भूमि, भारतवर्ष से संसार के मानवों को स्पृहा होने लगेगी। यह असंभव कार्य नहीं है। पूँजीवाद की उत्पत्ति इस देश में कल की बात है। अन्यथा प्राचीन समय में जिन लोगों के पास धन होता था, वे धनी कहलाने से भय खाते थे, वे सचमुच उसके अपने को अमानतदार मानते थे। उस समय आर्थिक विषमता का यह रूप नहीं था। पर हमें आज राष्ट्र के कल्याण के लिए पूँजीवाद से मुक्ति पानी है। यह असंभव कार्य नहीं है। जिस दासता से छुटकारा पाना असंभव प्रतीत होता था, उसे हमने विनष्ट किया। अब हम अपने साधनों से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

पर यह आवश्यक है कि राष्ट्र के सभी राजनीतिक दल भारतीय आदर्शों को अपनायें। कम्युनिस्ट हों या सोशलिस्ट तथा कोई अन्य दल हो, वे भारतीय जीवन की महान् परम्परा का परित्याग न करें।

१८

किसान किस ओर जायँगे ?

अंग्रेजों के डेढ़-दो सौ वर्षों के दीर्घकालीन शासन में भारतीय किसानों ने जैसी मुसीबतें सहीं और कष्ट झेले वैसे शायद किसी को ही सहने पड़े हों। भारत का औद्योगिक विकास तो पिछले कुछ काल की बात है, अन्यथा इस कृषि-प्रधान देश के उत्पादन के वे ही आधार थे। इन जीवित किसानों की अवस्था पशुओं से भी बदतर थी। उनका एकबारगी जीवन पशुवत् रहा। विदेशी शासन ने उन जागीरदार, ताल्लुकेदार, जमींदार, मालगुज़ार और देशमुख आदि की सत्ता सरकारी लगान वसूल करने के लिए कायम की। सरकारी मालगुजारी जहाँ अत्यन्त न्यूनतम होती, वहाँ सत्ताधारी ज़मींदार उनसे कई गुना अधिक लगान वसूल करते। अकाल पड़ता या दुष्काल होता, बाढ़ आती या तुषार पड़ता अथवा अन्यान्य कारणों से पैदावार नष्ट हो जाती, किंतु उन निरीह किसानों को शीत, गर्मी और वर्षा के प्रकोप सहकर भी पूरा लगान चुकाना पड़ता। उसके चुकाने में ज़रा-सी देर करने पर उन्हें भयानक शारीरिक दंड सहना पड़ता। जमींदारों के अत्याचारों से बचने के लिए वे जिस-तिस भाव में महाजनों को फसल बेचते और उनसे बीज खरीदते। इस प्रकार दोनों वर्ग उनका खून चूसते। वे उन दोनों के कर्ज़दार बनते और उन पर जब ऋण-पर-ऋण लदता जाता तो उनकी जमीन छिनती चली जाती। ज़मींदारों के हथकण्डों के कारण उन बेचारों का जमीन पर कभी अधिकार कायम नहीं हो पाता। सरकारी अधिकारी और ज़मींदार उनसे जो बेगार लेते, उसका कोई शुमार नहीं था। उनकी खड़ी-की-खड़ी

फसल के दाम बोल दिए जाते, और शोषणकर्ता ज़मींदार महाजन अपना स्वार्थ पूरा करते। इन्हीं किसानों की पैदावार से देश करोड़ों रुपए का आयात-निर्यात का व्यापार करता। विदेशी व्यापारी भारी आयात से अधिक उनका माल इतने सस्ते दामों में निर्यात करके अधिक धन कमाता कि विदेशी व्यापार की अनुकूल बाकी से विदेशी सरकार करोड़ों रुपए की पेंशनें, व्याज और वेतन आदि चुकाती। इस शोषण और लूट की बड़ी लम्बी दर्दनाक कहानी है। करोड़ों मनुष्यों की कृषि ही, आजीविका थी, और उनकी यह दुर्दशा थी। उन पर होने वाले अत्याचारों की समता संसार के किसी देश में नहीं मिलती। विदेशी शासन की छत्र-छाया में हमारे देश के ही ज़मींदार और महाजन उन पर विपत्तियों का पहाड़ लादने में अंगीभूत बने। ऐसी अवस्था में उनका जीवन किसी भी रूप में विकास नहीं पा सका। वे अशिक्षित रहे और सामाजिक जीवन में भी पिछड़े रहे। संसार की प्रगतियों से वे कोसों दूर रहे। वे क्या खाते-पीते, क्या पहनते और कैसी झोंपड़ियों में रहते। अधिक वर्षा में उन में से अधिकांश प्राण खो देते, उनकी सम्पत्ति नष्ट होती और पशु-धन नष्ट होता, उसकी पूर्ति करने वाला कोई नहीं होता। आकाश और जमीन के बीच में ये जीवधारी मानव करोड़ों की संख्या में खड़े होते। पशु और मानव में दोनों की अवस्था में कोई अन्तर नहीं था। फिर यह कितना दु:खद प्रसंग है कि इस देश के ही लोग शोषणकर्ता बने।

ये शोषणकर्ता ज़मींदार जो डेढ़-दो वर्षों से इन किसानों पर अत्याचारों के प्रतीक बने, और जिनके बल पर विदेशी शासन कायम रहा, उनके पैरों के नीचे से जमीन राष्ट्रीय आन्दोलन प्रबल होने पर खिसकी। राष्ट्रीय जागरण होने पर किसान में भी चेतना हुई। उसने सरकार और ज़मींदार वर्ग की धमकियों की कोई परवाह न कर राष्ट्रीय आन्दोलन को सबल बनाया। ज्यों-ज्यों केन्द्र और प्रान्त की धारा-सभाओं में लोक-प्रतिनिधियों की आवाज प्रबल हुई, किसानों के हित में एक के उपरान्त एक कानून बने। इसका परिणाम यह हुआ कि

उनमें महान् जाग्रति हुई। उन्होंने शोषकवर्ग के भय, प्रलोभन और मेवे पकवान का परित्याग कर नंगे पैर पैदल चलकर और सूखे चने चबाकर राष्ट्रीय प्रतिनिधियों का समर्थन किया। इन प्रतिनिधियों ने व्यवस्थापिका-परिषदों के अन्दर और बाहर उनकी माँगों को सजीव रूप दिया। धीरे-धीरे किसान-आन्दोलन ने देश में शक्तिशाली रूप ग्रहण किया।

देश के स्वाधीन होने के पूर्व तक सभी प्रान्तीय धारा-सभाओं में राष्ट्रीय पक्ष ने किसानों के उत्थान के लिए अनेक कानून स्वीकृत किये। बेगार प्रथा खतम हुई, ज़मीन पर उनके अधिकार कायम हुए, उन्हें अनेक ऋणों से मुक्त किया गया, और ज़मींदार तथा महाजन जिन अनेक आर्थिक तरीकों से उन्हें लूटते-खसोटते थे, शोष : करते थे उन सबसे उन्हें कानून द्वारा मुक्त किया गया। इसके सिवा सिंचाई, बीज के उपयोग और ज़मीन आदि के जो अधिकार उन्हें प्राप्त हुए, उनसे उन्हें श्वास लेने का अवसर मिला। तब उन्हें अनुभव हुआ कि वे भी इंसान हैं। इस के बाद तो वे महाजन के पंजे से मुक्त हुए और ज़मींदार वर्ग का साहस पूर्वक सामना करने में अग्रसर हुए।

इधर देश में कई ऐसे धंधों का निर्माण हुआ, जिनका औद्योगिक उपयोग हुआ। गन्ना, पाट, रुई और तेलहन आदि ऐसी व्यापारिक फसलें हैं, जिन से बड़े-बड़े उद्योग चलते हैं। उनके प्रभाव में फेक्टरियाँ बन्द हो जाती हैं। इससे वे इन फसलों के अच्छे दाम प्राप्त करने लगे। उनकी आय में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। अब जमीन पर उनका अधिकार कायम होने पर वे स्थायी रूप से अपनी पैदावार से उपयुक्त आय प्राप्त करने में समर्थ हुए। वे इस हालत में हुए कि वे अपनी पैदावार को तभी बेचेंगे कि जब उन्हें उनके अच्छे दाम मिलेंगे। इससे उनकी आर्थिक अवस्था में आशातीत परिवर्तन हुआ।

इस बीच में द्वितीय महायुद्ध ने देश में खाद्य पदार्थ का अभाव उत्पन्न कर दिया। पैदावार से अधिक माँग बढ़ गई। इस स्थिति में प्रबलता युद्ध के उपरान्त भी कम नहीं हुई वरन् बढ़ती गई। खाद्य पदार्थों के दाम बेहद बढ़ने पर उन किसानों की अवस्था सुधरी जिनकी जमीनें थीं। कल तक

कृषि का धंधा निर्जीव था और आमद का नहीं था, आज उसका रूप ही बदल गया। सब का ध्यान गाँवों की ओर गया। आज कृषि-उत्पादन ने अन्य धंधों से श्रेष्ठ स्थान ग्रहण किया। एक ओर खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल के दाम अधिक हैं, दूसरे गाँवों में रहने पर लोगों को अच्छे खाद्यों का अभाव नहीं खटकता है।

अब किसान लगान चुकाने इतनी पैदावार बेचकर अवशेष माल जमा करके रखता है,और वह धीरे-धीरे ऊँचे भावों में बेचता है। कुछ ही वर्षों में किसानों की अवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया है। मगर इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय कृषकवर्ग पूर्ण उन्नति कर सका है।

आज ग्रामों का नव-निर्माण हो रहा है। किसानों के लिए खाद,बीज, सिंचाई, हल-ट्रैक्टर और अनेक साधनों की व्यवस्था हो रही है। अगले कुछ वर्षों में भारत के ग्राम नवीन रूप ग्रहण करने लगेंगे, जब कि ट्रैक्टरों से सब जमीन खेती के लायक हो जायगी, जो बड़े-बड़े बाँध करोड़ों रुपए की लागत से बँध रहे हैं, उस से वर्षा न होने पर भी उन्हें सिंचाई के लिए सदैव पानी मिलेगा, सहकारी संगठनों द्वारा उन्हें अच्छे-से-अच्छे बीज मिलेंगे और सहकारी बैंक उन्हें साधारण ब्याज पर रुपए उधार देंगे। ये सब आर्थिक परिवर्तन अगले वर्षों में तेजी से होने जा रहे हैं। शासन की सारी शक्ति कृषि-योजना को सफल बनाने में लगी है। भारत की पंच-वर्षीय योजना में कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की ओर विशेष लक्ष्य है। अमेरिका ने कई करोड़ रुपए भारत को कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रदान किये हैं। इस दिशा में एक-मात्र लक्ष्य यह है कि पैदावार कई गुना बढ़ जाय।

जमींदारी-प्रथा का सभी राज्यों में अन्त होने से किसान ज़मीन के पूरे मालिक होंगे। उनका और उनकी संस्था का राज्य से सीधा सम्बन्ध स्थापित होगा। आज तक जो किसान जमीन से रहित हैं, वे भी जमीन के मालिक होंगे। अभी जिस ढंग से जमींदारी और जागीरदारी-प्रथा का विनाश हुआ है, उससे किसानों का अधिक भाग जमीन से प्रायः वंचित रहता है। ताल्लुकेदार, और बड़े-बड़े जमींदारों के अधिकार में फिर भी जमीन का

बड़ा भाग बना रहता है। उसका अन्त होना आवश्यक है। सब किसानों के पास एक समान भाग में जमीन का भाग होना चाहिए, न किसी के पास अधिक हो और न किसी के पास कम। यह होने पर अधिक-से-अधिक किसान जमीन के अधिकारी होंगे। इस के सिवा उन्हीं लोगो के पास जमीन हो, जिनका एक-मात्र पेशा कृषि हो, जो उसकी आजीविका पर निर्भर हो। जो लोग दूसरे धंधे करते है, वे जमीन के मालिक नहीं हो सकते।

भारत में जमींदारी का विनाश मुआवजा देकर किया गया है। किंतु हमने देखा कि हमारे अपने देश काश्मीर ही में, जहाँ जमीन का एक समान स्तर पर वितरण हुआ है, उसके बदले में जमीदारों और जागीरदारों को काश्मीर-सरकार ने कोई मुआवजा नहीं दिया। काश्मीर-सरकार ने सभी बड़े जमीदारों की जमीनें छीनकर किसानों में बाँट दीं। यही अवस्था कम्युनिस्ट चीन और बर्मा में हुई। वहाँ भी जमीन का विभाजन बिना मुआ-वजा दिये ही किया गया, सभी छोटे-छोटे किसान जमीन के अधिकारी बन गए। चीन कम्युनिस्ट देश होने पर भी जमीन को राज्याधिकार में नहीं कर सका। चीन के कम्युनिस्ट नेताओं ने देखा कि सबसे जमीन छीनने में देश में भारी अराजकता बढ़ेगी और उस अवस्था में साधारण किसान सरकार के समर्थक न रहेंगे। मानव भावना अपना अधिकार चाहती है। पर हर एक चीनी का अपनी-अपनी जमीन पर अधिकार होने पर भी उन्होंने कृषि की व्यवस्था सहकारी आधार पर की। चीनी किसानों के सहकारी आधार पर उत्पादन और वितरण करने पर देश अधिक प्रगति करने में समर्थ हुआ। यही कारण है कि वर्षों के युद्ध के उपरान्त भी चीनी किसानों ने पैदावार में इतनी वृद्धि की कि चालीस करोड़ से अधिक जनता का पेट भरने के बाद वे इतना अनाज बचा सके कि वह दूसरे देशों को भी बेचा जा सका। चीनी किसानों में यह भावना उत्पन्न नहीं हुई कि वे अन्न को छिपाकर रखें, उसे ऊंचे दामों में बेचें, देश की आवश्यकता के लिए सरकार को न दें। इस प्रकार के खोटे तत्त्व और स्वार्थपूर्ण भावनाएँ चीनी किसान में नहीं हैं। यही कारण है कि चीन उत्पादन में स्वावलम्बी देश बन गया। भारत के

अधिक जन-संख्या का देश होने पर भी वह खाद्य पदार्थों के लिए किसी देश से कुछ आयात नहीं करता।

मगर भारतीय किसान विचित्र परम्परा में पलने के कारण इन सब बातों में पिछड़ा हुआ है। उसके जीवन में सहकारी भावना विकास नहीं पाई। सहकारी प्रथा द्वारा खेती करने में भारतीय किसान कोसों दूर हैं। अपनी जमीन का मालिक होने पर भी एक किसान अपने पड़ोस के किसान से लड़ता-झगड़ता है। संयुक्त परिवार के कारण ज़मीन के छोटे-से-छोटे विनाशकारी टुकड़े होते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें खाद्य पदार्थ और कच्चे माल को दबा रखने, नष्ट हो जाने और ऊंचे दामों में बेचने के भी अवांछनीय तत्त्व मौजूद हैं। इन स्तरों से भारतीय किसानों का जीवन ऊँचे नहीं उठ पाया। चेकोस्लोवाकिया, चीन और काश्मीर के किसान में जो सहयोगी भावना है और नैतिक स्तर है, वह भारतीय किसानों में पनप नहीं सका।

आज आवश्यकता है कि हर एक किसान अपनी-अपनी ज़मीन का मालिक होकर कृषि की पैदावार सहकारी अधिकार पर करे। समस्त राज्यों मे कृषि-उत्पादन में सहकारी व्यवस्था का उपयोग हो। इस उत्पादन का वितरण भी सहकारी आधार पर हो। इस के अलावा जो लोग बिना काम के रहें,वे ग्रामों में छोटे-बड़े धंधे खड़े करें। जापान के समान भारत का हर एक ग्राम छोटे-बड़े धंधों का केन्द्र बन जाय। ग्रामों मे होने वाले कच्चे माल की उपज के धंधे ग्रामों में संगठित होने से उनकी आर्थिक अवस्था सर्वथा बदल जायगी। अभी तक ग्रामों की आर्थिक अवस्था की ओर सर्वथा दुर्लक्ष रहा है। पर यह तभी संभव है कि भारतीय किसानों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो। उनमें राष्ट्र की निर्माणकारी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हों।

जहाँ ग्रामों का उत्पादन सहकारी प्रथाओं द्वारा हो, वहाँ उनकी अपनी सारी व्यवस्थाएँ ग्राम-पंचायतों द्वारा हल की जायँ। उनका जीवन झगड़े-झंझट और उपद्रवों से दूर रहे। सारी समस्याएँ ग्राम-पंचायतों द्वारा निर्णीत की जायँ। किसानों का सामाजिक जीवन इस दृष्टि से निर्माण हो कि उसमें

अपव्यय का स्थान न रहे। आज किसान सामाजिक तथा विवाह-शादी के रीति-रिवाज तथा पर्वों पर यात्रा आदि करने में भारी अपव्यय करते हैं। इसके सिवा द्रव्य होने पर वे उसे आभूषण खरीदने में लगा देते हैं, बजाय इसके कि उसे किसी छोटे-बड़े उद्योग में सहयोग रूप में लगाएँ।

भारतीय किसान कल देश की शासन-सत्ता ग्रहण करेंगे। सारे राष्ट्र में उनका नेतृत्व होगा। पर यह तब संभव है, जब कि उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो। आज ग्रामों की अवस्था गिरी हुई है, लाखों और करोड़ों व्यक्तियों को एक बार भी भोजन नहीं मिलता है। जन-संख्या में, बेकारी, किसानों का ऋण, जमीन के टुकड़े-टुकड़े, पैदावार का कम होना, जमींदार और किसानों के सम्बन्ध में तनाव की समस्याएँ देश में संकट उत्पन्न करने की साधन बनी हुई है।

इस दुरवस्था में किसान कम्यूनिस्टों को वचन देते हैं कि वे शासन ग्रहण करते ही एक कलम से उनके सब ऋण दूर कर देंगे। जमीन-विभाजन की समस्या बड़ी पेचीदा है। जिन किसानों के पास जमीन नहीं है, वे विद्रोह उत्पन्न करते हैं। कम्युनिस्टों ने हैदराबाद राज्य में तेलंगाना के वर्षों से पीड़ित किसानों पर अपना अधिकार कायग करनें में सफलता प्राप्त की। उन्होंने जमींदारों से जमीनें छीनकर उन्हें सौंपी। आज कम्युनिस्ट किसानों के लिए पथ-प्रदर्शक बन रहे हैं। यदि किसानों की जमीन की समस्या हल नहीं हुई, उनकी जमीन की क्षुधा-पूर्ति नहीं हुई तो सारा देश तेलंगाना बने बिना न रहेगा। तेलंगाना के किसानों ने बता दिया कि यदि शासन ने सभी किसानों को जमीन नहीं दी तो देश के दूसरे किसान भी उनके पथ का अनुसरण करेंगे। कृषकवर्ग क्रांतिकारी परिवर्तन की प्रतीक्षा में है। धीरे-धीरे परिवर्तनों से किसानों की समस्या हल न होगी। इन तीन-चार वर्षों में कई राज्यों में जमींदारी उन्मूलन हुआ, पर उसमें भी जमीन का समान वितरण न हो सका। क्या विविध प्रान्त और राज्यों में काश्मीर और चीन की उन्मूलन और विभाजन-प्रथा नहीं जारी की जा सकती? यदि इस ओर देश तीव्र गति से नहीं बढ़ा, तो तेलंगाना समस्त देश के

लिए चेतावनी देने वाला और मार्ग-प्रदर्शक दोनों ही है। यह ऐसे खतरे की दिशा है, कि उससे देश का शासन उलट-पुलट हो सकता है, समाज बदल सकता है, और तब सारी व्यवस्थाएँ क्रांतिकारी रूप ग्रहण किये बिना न रहेंगी। किसानों के जमीन के मालक होने पर भी देश भावी संकटों से रक्षा पा सकता हैं।

हमने देखा कि चीन में कम्युनिज्म-साम्यवाद ने ग्रामों से विस्तार पाया। भारत में भी वह ग्रामों से अपना मार्ग पा रहा है। पर यहाँ उसका प्रसार कैसे रुक सकेगा, क्या मशीनगन और टैंकों के बल से। इससे तो भारतीय किसान दबाए नहीं जा सकते। तब एक ही मार्ग है कि हम किसानों को सुख-सुविधाएँ दें और जीवन की अच्छी वस्तुओं का उपयोग उनके लिए अधिकाधिक उपलब्ध करें।

भारत में अगले पाँच वर्ष इस बात का निर्णय करेंगे कि इस देश में कौनसा शासन सफल होगा, लोक-तन्त्र या साम्यवादी अधिनायक-तन्त्र। यदि इस काल में भारत की आर्थिक अवस्था न सुधरी, किसानों की हालत पूर्ववत् बनी रही और चीन अपनी योजनाओं द्वारा उन्नति करता गया, तो उस अवस्था में साम्यवाद का रोकना संभव न होगा। चीन ने जिस उपाय से अपनी अवस्था उन्नत की, अन्य पीड़ित देश की अधीर जनता भी उसी मार्ग से अपना उद्धार चाहेगी। भारत आज ऐसे शिखर पर खड़ा है कि जहाँ उसकी परीक्षा होनी है। यदि आगे आने वाले वर्षों में लोक-तन्त्र शासन विजयी हुआ और कांग्रेस राष्ट्र का उत्थान करने में समर्थ हुई, तो न केवल भारत बल्कि एशिया की करोड़ों जनता उसके नेतृत्व को ग्रहण करेगी।

हमारा समस्त लक्ष्य यह होना चाहिए कि हमारी सारी शक्तियाँ इस ओर लगें जिससे कि भारतीय जनता अपने आर्थिक और सामाजिक ध्येय की पूर्ति में अपने महत्व का परिचय दे सके।

भारत की इस संकटजनक स्थिति की ओर अमेरिका और रूस दोनों की दृष्टि लगी है। दोनों ही महाराष्ट्र भारत के इस खतरे का अनुभव करते

हैं। एक ओर अमेरिका अपनी सहायता का हाथ बढ़ाकर भारत को लोकतन्त्र देश में देखना चाहता है, तो दूसरी ओर कम्युनिस्ट रूस भी सहायता देने में पीछे नहीं रहना चाहता। वारंगल में कम्युनिस्ट दल के प्रबल संगठन में रूसी धन और शक्ति ने काम किया। मध्य पूर्व में जो कम्युनिज्म फैल रहा है, उसमें रूस का पूरा सहयोग है। आज रूस चाहता है कि रूस और चीन के बाद यदि भारतीय किसान भी कम्युनिस्ट हो गए, तो फिर सारा एशिया कम्युनिस्ट हुए बिना न रहेगा। इसलिए अमेरिका और पश्चिमी देश भारत में कृषि-उत्पादन में शीघ्रतर विकास की कामना करते हैं।

इसलिए अगले पाँच साल न केवल भारत का वरन् समस्त एशिया और संसार के भाग्य का फैसला करने वाले हैं। यह देखना है कि हम किस दिशा में बढ़ते हैं ?

अनेक विदेशी राजनीतिज्ञों ने यह अभिमत प्रकट किया है कि अगले पाँच साल भारत के लिए परीक्षा के हैं। यदि इन पाँच वर्षों में वह किसानों का प्रश्न हल करने में सफल हुआ और उसने भूख की समस्या हल की, तो वह साम्यवादी तत्त्वों को रोकने में समर्थ होगा, अन्यथा वह भी कम्युनिस्ट चीन का अनुसरण करेगा।

सामाजिक क्रांति के द्वारा समाज का वक्षस्थल चीरे बिना भारतीय किसानों की समस्या का हल होना कदापि संभव नहीं है। उनके कंधों पर ही नवभारत के निर्माण का भार है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह भलीभाँति समझ ले कि जब तक देश में समाज का वर्तमान ढाँचा बना हुआ है, जिसका आधार शोषण, असमानता और विशिष्ट वर्ग की सृष्टि करना है, तब तक राष्ट्र की उत्पादन शक्तियों का पूर्ण विकास होना संभव नहीं है। और न तब तक देश में वह वातावरण ही उत्पन्न हो सकता है, जिस में राष्ट्र का निर्माण होता है।

देश की उत्पादन-समस्या हल करने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि-सम्बन्धी सुधार वास्तविक रूप में किये जायँ। ग्राम और कृषि अर्थनीति की पूर्ण रूप से पुनर्रचना पर ही खाद्य समस्या का हल संभव है। छोटी-छोटी

योजनाओं द्वारा उत्पादन में आसानी से वृद्धि की जा सकती है। पर उसके लिए यह आवश्यक है कि सु-संगठित योजना हो, और कृषि-सुधार तथा विकास के आधार पर संगठित प्रयत्न हो।

हमने करोड़ों रुपये विदेशी अनाज खरीदने में व्यय किये, किंतु यदि उसका एक अंश भी सिंचाई आदि के कार्यों में व्यय किया जाता, तो देश में अन्न का इतना अभाव न होता। हम देखते कि उसका तत्काल परिणाम सामने आता। नदियों की घाटी योजनाएँ दूर की चीज़ें है। जब घर में आग लगी हो, तो कुआ खोदने के लिए दौड़ना मूर्खता ही कहा जायगा। हमारी तत्काल समस्याओं के हल के लिए शीघ्र फल देने वाली योजनाएँ ही लाभदायक हो सकती हैं। पर सरकार ने बड़ी योजनाओं के फेर में उन कामों को हाथ में नहीं लिया, जिनसे ग्रामों की सारी शक्ति अनाज उत्पादन में जुट जाती।

इसके लिए आवश्यक है कि ग्रामों में किसानों की भूमि-सेना खड़ी की जाय, जो सिंचाई के सब साधनों को तैयार करे। कुएँ, तालाब, पोखर, और बन्द आदि की दुरुस्ती की जाय। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह भूमि-सेवकों की हर प्रकार से सहायता करे। जितनी पड़ती जमीन हो, वह खेतिहर मजदूरों को दे दी जाय कि जो उसमें अन्न उपजायँ। किसानों का यह दूसरा दल हो, जो अनाज के उत्पादन में जुट जाय। सहकारी आधार पर इन किसानों का नव संगठन हो, उनमें नई जाग्रति उत्पन्न हो। नई भावनाओं और नई आशाओं के साथ वे संगठित रूप में आगे बढ़ें। उनमें वह विचार-क्रांति हो, कि जिससे किसान युवकों में रचनात्मक शक्ति का उदय हो। उसका जीवन सर्वथा नए साँचे में ढले।

भारतीय किसान धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त हैं। उसमें उद्योग-धंधों के मजदूरों के समान नई भावनाओं का संचार नहीं हुआ है। वह अभी जीवन से बहुत पिछड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त उसमें संगठन और सहयोगपूर्ण कार्य करने का सर्वथा अभाव है।

जमींदारी प्रथा का विनाश हुआ है, किन्तु वह अभी पहला कदम है। उसका प्रभाव देश की एक-तिहाई जमीन पर पड़ा है। जमींदारों को मुआवजा

मिलने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है, फिर जो कुछ भी हो, उससे जमीन की समस्या हल नहीं होती । यह समस्या विनोबा भावे की योजना से भी हल नही होती है । जब तक जमीन का प्रश्न असली रूप में हल न हो और किसानों से सामाजिक न्याय न हो, तब तक किसानों में उत्पादन बढ़ाने की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती । आवश्यकता है कि प्रत्येक राज्य में किसानों को समान रूप से जमीन का वितरण किया जाय और उस पर उनकी सुरक्षा की पूरी गारण्टी प्रदान की जाय ।

इस समय तो जमींदारी विनाश के उपरांत भी जमीन का विभाजन असमान रूप में बना रहेगा । किसी के पास हजारों एकड़ जमीन न होगी, और किसी के पास पूरी खेती इतनी जमीन भी नहीं होगी और लाखों खेतिहर मजदूर बिना जमीन के होंगे । यदि इस ओर ध्यान न दिया गया तो भारतीय किसान सामाजिक न्याय के लिए उठ खड़े होंगे । पच्चीस-तीस करोड़ किसानों का अपने अधिकारों के लिए उठ खड़ा होना भारत का नया निर्माण कर देगा । किसी व्यक्ति के पास तीस एकड़ से अधिक जमीन नहीं होनी चाहिए ।

किसानों के पास थोड़ी जमीन हो या अधिक, उनकी आर्थिक व्यवस्था का मूल आधार सहकारी संगठन होगा । सहकारी प्रथा के रूप में उन के जुदे-जुदे संगठन निर्माण हों, जो कृषि उत्पादन, और वितरण आदि के कार्य संयुक्त रूप में करें ।

ग्रामों के खेतिहर मजदूरों को भी जमीन दी जाय । यदि यह संभव न हो, तो उत्पादन कार्यो में उनके हितों की पूरी रक्षा हो । उनसे अन्य कार्य लिये जाने की व्यवस्था हो ।

किसानों की समस्याएँ एक दो नहीं, बीसियों हैं । संयुक्त खेती, खेतिहर मजदूरों में बेकारी की व्यवस्था के लिए दुहरी फ़सल करना, और ग्रामीण धंधे तथा अन्य कारीगरी के उद्योग ग्रामों के लिए रचनात्मक कार्य हैं । ग्रामों में यह नव-निर्माण तब संभव है जबकि ग्रामीण अर्थ नीति में एकबारगी परिवर्तन हो ।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह आज की इन समस्याओं को उनके वास्त-विक रूप में हल करे। सहकारी समितियाँ, सहकारी बैंक, अनाज बैंक, गोदाम, आदर्श खेत और वितरण समितियाँ आदि संस्थाओं की ग्रामों में स्थापना किसानों की वर्तमान बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बाँधेगी।

किसान अनुभव करें कि वे सब जमीन के मालिक हैं। फिर उनका कर्त्तव्य है कि वे सम्मिलित रूप से उत्पादन और वितरण करें। किसान अपने उत्पादन को अपनी संस्थाओं नगरों में बेचने की व्यवस्था करें। इस प्रकार ग्राम के आर्थिक साधनों पर उनका पूर्ण अधिकार हो। अन्य देशों के किसानों के समान उनमें राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हो। आज की ग्रामों की स्थिति दयनीय है। वर्तमान ग्रामीण व्यवस्था में राष्ट्र के हिता-हित का कोई खयाल नहीं है। यदि ग्राम स्वयं अपनी व्यवस्था में नगरों में अनाज की आमद करते तो आज इतना अधिक अनाज विदेशों से नहीं आता। चीन के किसानों ने अपने जागरण द्वारा चीन का नक्शा ही नहीं बदल दिया बल्कि सारे एशिया को एक नये क्षितिज पर ला खड़ा किया।

आज संसार की दृष्टि भारतीय किसानों पर लगी है। इन तीन करोड़ किसानों के उठ खड़े होने पर भारत की सम्पूर्ण काया पलट हुए बिना न रहेगी। किसानों में आज बेचैनी है, उत्पीड़न है, और उनकी समस्याएँ सिसक रही हैं। जमींदारी विनाश, पंच-वर्षीय योजना का निर्जीव कार्यक्रम और अमेरिकन सहायता तथा समाज सुधार के छोटे बड़े कार्यक्रम या बड़ी-बड़ी योजनाएँ ग्रामों में कोई प्रेरणाएँ उत्पन्न न कर सकेंगी, जब तक कि हम उनकी सारी व्यवस्थाओं में आमूल परिवर्तन के लिए अग्रसर न होंगे।

भारतीय किसान ज्वालामुखी पर खड़े हुए हैं, उनका कदम आगे बढ़ना चाहता है। किसान और खेतिहर मजदूर वर्तमान नारकीय परिस्थिति में आमूल परिवर्तन चाहता है। कांग्रेस कृषि-सुधार-समिति की रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया कि जब तक किसानों की स्थिति नहीं सुधरती,

तब तक देश में सुख-शान्ति कोसों दूर है । परन्तु उनकी अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए अब तक कुछ नहीं किया ।

लोक-कल्याण राज्य के लक्ष्य को पूरा करने के लिए ग्रामों के लाखों-करोड़ों उपेक्षित मजदूरों की भी अवस्था सुधारने की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । इन खेतिहर मजदूरों की अवस्था बहुत खराब है । अनुमानतः सारे देश में खेतिहर मजदूरों की संख्या प्रायः ८ करोड़ से अधिक है । किंतु इनके आश्रितों की संख्या शुमार की जाय तो किसानों की अपेक्षा, यह खेतिहर मजदूर जो ग्रामीण जन-संख्या का बहुत बड़ा भाग है, आज घोर गरीबी और अभावों का सामना कर रहा है, किसी-किसी राज्य में इन खेतिहर मजदूरों की नकद मजदूरी प्रतिदिन तीन आने और कहीं-कही डेढ़ आने तक है । अतएव ग्रामीण क्षेत्रों में खेतिहर मजदूर और शिकमी किसानों का बहुत बड़ा भाग प्रपीड़ित अवस्था में है ।

इस स्थिति में राष्ट्र की रीढ़—इन किसानों की ओर हमने समय रहते ध्यान नहीं दिया, तो पिछले दिनों हमने अपनी उपेक्षा से किसानों के विद्रोह का वारंगल देखा, हम राज्य के कोने-कोने में तड़पते और सिसकते हुए किसानों के विद्रोह के सहस्रों वारंगल देखेंगे । परिस्थितियाँ हमारी रियायत न करेंगी ।

सारा देश एक जेलखाना भले ही बन जाय, हम उसका स्वागत करेंगे, यदि उसमें प्रत्येक नागरिक को काम करने का अवसर मिले, और उसे भोजन, वस्त्र और रहने का स्थान मिलने का अधिकार हो । देश में क्षुधा और नग्नता का नाम शेष न रहे । हम साम्यवाद को चाहे जितना अवांछनीय मानें, किंतु यदि हमने क्षुधा और नग्नता दूर करने की ओर तेजी से कदम न उठाया तो उसकी प्रगति को रोकना किसी के लिए संभव न होगा । साम्यवादी हठी होते हैं, और उनके काम करने के तरीके अवांछनीय होते हैं । किंतु पीड़ित किसान यह कब देखने लगे कि मार्ग उचित है या अनुचित । अपने विश्वास और आदर्श से अग्रसर होने वाले किसी भी राजनीतिक दल में यह हठ अनिवार्य है, फिर वह चाहे कितना ही गुमराह

करने वाला क्यों न हो। जो लोग अपने ही आदर्श से आगे बढ़ते है उन्हें रोकना कब संभव है। पीड़ित जनता यह नहीं देखती कि मार्ग भला है या बरा। वह तो अपना उद्धार चाहती है।

आज भारत के तीस करोड़ इस देश का नया इतिहास लिखने जा रहे ह। वे इस देश का ही नव-निर्माण नही करेंगे, वरन् अपने नेतृत्व से समस्त एशिया के लिए नव चेतना और नव जागरण के पथ-प्रदर्शक बनेंगे। हमारे नेतृत्व की आज परीक्षा है, आने वाले इतिहास को यह लिखने का अवसर न मिले कि भारत के नेता कर्त्तव्य-हीन निकले।

१९

कारखानों पर मजदूरों का अधिकार

भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, किंतु उससे क्या हम अपने लक्ष्य तक पहुँच गए। क्या हमारी यह स्वतन्त्रता उस यात्रा का अन्त साबित हुई, जिसकी कि हमने एक समय बड़े चाव से कल्पना की थी। इस की अपेक्षा उल्टे वह उस अनधिकृत सागर के जल और चट्टानों से टकराने वाली दूसरी यात्रा का आरम्भ प्रकट करने वाली हुई। यदि स्वतन्त्रता होने पर राज्य-शासन की नौका अभी भी सुरक्षित है, तो उसे हमारे प्रयत्नों की अपेक्षा यह सुयोग ही समझना चाहिए कि वह अभी तक नहीं टकराई। वह कई बार खतरों के नज़दीक तक पहुँची। पर वह कौनसी समस्या है, जिसे देश अभी तक हल नहीं कर पाया।

इन विगत चार वर्षों में हमने यह निश्चय नहीं कर पाया कि हमारे राज्य का क्या लक्ष्य है? स्वतन्त्रता के पूर्व हमने कोटि-कोटि जनता को यह संदेश दिया था कि हमारे शासन का लक्ष्य किसान और मज़दूरों का शासन होगा। शासन की बागडोर ग्रहण करने के अवसर पर भी यह स्पष्ट शब्दों में घोषित किया गया था कि भारतीय शासन का लक्ष्य मजदूर और किसानों का राज्य है। उस समय शासन की अर्थ-नीति भी घोषित की गई थी कि सरकार ज़मीन और उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण करेगी। तब बड़ी स्पष्टता से उद्योगपतियों को भी सचेत किया गया कि देश के धंधों पर शासन का अधिकार होगा। कांग्रेस की आर्थिक समिति ने भी सहकारी आधार पर समस्त उद्योग-धंधों के संचालन

के लिए सिफारिश की। इस सारी गति-विधि से यह प्रकट हुआ कि प्रमुख धंधों का राष्ट्रीयकरण हुए बिना न रहेगा ।

इस बीच में चीनी के कारखानों के मज़दूर, रेलवे, तार और डाक आदि के मज़दूरों ने अपनी माँगें पेश कीं। इन मज़दूरों के अवरोध से देश में बड़ी हलचल उत्पन्न हुई। प्रान्त और केन्द्र के शासनों को बड़े संकट का सामना करना पड़ा। देश भर के उद्योग-धंधों में नई हलचल उत्पन्न हुई और मज़दूर वर्ग अपनी नई माँगों के लिए उठ खड़ा हुआ। उसे जो आशाएँ दी गयी थीं, उन की पूर्ति न होने से मज़दूरों को बड़ी निराशा हुई। उनमें बड़ा विषाक्त वातावरण उत्पन्न हुआ। सरकार इस निश्चय को भी कार्य में परिणत न कर सकी कि उद्योगपति मज़दूरों को मुनाफे में से हिस्सा दें और मज़दूर कारखाने की व्यवस्था में भाग लें। उद्योगपति और मज़दूर सम्मिलित रूप में कारखानों का संचालन करें, मज़दूरों की यह खास माँग थी ।

इसके बाद सरकार ने प्रकट किया कि प्रमुख बुनियादी धंधों का राष्ट्रीयकरण होगा, और अन्य सब उद्योग-धंधे निजी अधिकार में रहेंगे। निजी उद्योग-धंधों की व्यवस्था पर भी राज्य का नियंत्रण रहेगा और उनकी व्यवस्था में भी मज़दूर हस्तक्षेप कर सकेंगे। सरकार ने अपनी इस आर्थिक नीति को मिश्रित अर्थ-नीति प्रकट किया ।

सरकार को पूँजीपतियों को संतुष्ट करने के लिए अनेक सुविधाएँ देनी पड़ीं कि वे नये उद्योग-धंधे खोलने में आगे बढ़ें और अपनी अधिकाधिक पूँजी का विनियोग करें। विदेशी पूँजीपति भी इस देश में अपनी पूँजी लगायें और नए उद्योग-धंधे खड़े करें, इस दृष्टि से सरकार ने देश के उद्योग-पतियों से कहा कि वह दस वर्षों तक राष्ट्रीयकरण की ओर अग्रसर न होगी। इसके सिवा उसने विदेशी उद्योगपतियों का आह्वान किया कि वे इस देश में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धंधे खड़े करें। सरकार उन धंधों को बिना मुआवज़ा दिये बिना ज़ब्त न करेगी। विदेशी उद्योगपतियों को अत्यधिक सुविधाएँ प्रदान की गईं।

मगर इतने पर भी देश औद्योगीकरण में अग्रसर नहीं हुआ। देश के उद्योगपति नए-नए उद्योगों की स्थापना करने में पीछे रहे। उनमें कोई स्फूर्ति उत्पन्न नही हुई। आय-कर तथा अन्य करों में विशेष सुविधाएँ प्रदान करने पर भी उद्योगपतियों ने देश में नए उद्योग-धंधों ने कोई प्रगति नहीं की। कुछ उद्योग-धंधे निश्चय ही सरकार की व्यवस्था के अन्तर्गत विदेशी उद्योगपतियों ने खड़े किए। इसके अतिरिक्त देश औद्योगीकरण में आगे नहीं बढ़ा।

मज़दूरों के अधिकार और हितों की रक्षा के सम्बन्ध में कई कानून बने। दूसरी ओर कारखानों की दिन प्रतिदिन की व्यवस्था में सरकार हस्तक्षेप कर सके और कारखानों के संचालकों की सत्ता कम हो, इस दृष्टि से कई कानूनों की सृष्टि हुई। इसके सिवा पुनः यह घोषित किया गया कि राज्य का ध्येय सहकारी आधार पर राष्ट्र का संगठन करना है। यह भी प्रकट किया गया कि पूँजीवाद की उपयोगिता नष्ट हो गई है और राष्ट्र के जीवन में उसका कोई स्थान नहीं है। इस बीच में भारतीय जनता ने अपनी राजनीतिक क्षमता का स्वतन्त्र दृष्टिकोण प्रकट किया। यद्यपि जनता अशिक्षित और पिछड़े हुए होने पर भी उसने अपने को सच्चा लोकवादी प्रकट किया है। उसने राष्ट्र को सचेत किया है कि वह क्या चाहती है। उसने देश को श्वास लेने का अवसर दिया। पर साथ ही उसने यह भी बता दिया कि उसे कम्युनिज़्म से कोई भय नहीं है, पर वह पूँजीपतियों का साथ नहीं दे सकती। पीले और लाल रंग में वह लाल को पसन्द करते हैं। हमें राजनीतिक स्वतन्त्रता मिली, किंतु आर्थिक समानता के अभाव में वह हमारे लिए मृगतृष्णा के रूप में प्रकट हुई।

आज के युग में कोई मज़दूर या किसान काम करना नहीं चाहेगा, यदि उसके काम का नब्बे प्रतिशत श्रम का फल कुछ लोगों को मिले। आज मज़दूर इस नीति पर चलने के लिए तैयार नहीं हैं। वह देश की अर्थ-नीति और शासन दोनों में वह अपना समान अधिकार चाहता है। आज मजदूर उठ खड़ा हुआ है, वह सजग है। उसके चारों ओर की परिस्थितियाँ

उसमें जीवन दे रही हैं कि वह किस ओर बढ़े। भारतीय मज़दूर आर्थिक संगठन और देश के शासन में समान अधिकार चाहता है। नये जनमत ने यह बता दिया कि हवा का रुख किस ओर है। देश में वामपक्षियों का बढ़ता हुआ प्रभाव और निर्वाचन में उनकी विजय से पूँजीपति वर्ग भी सचेत हुआ है। किसी दल का अतीत जीवन जो कुछ भी हो, या उसका कार्यक्रम शान्त रूप या वैधानिक आधार पर हो न हो किंतु यह स्पष्ट है कि यदि देश मज़दूरों की आकांक्षाओं को पूर्ण न कर सका और उनके सुख-समृद्धि के साधन न बढ़ सके तो साम्यवादी तत्त्व उन्हें अपनी ओर खींच ले जायँगे।

राष्ट्र के उत्पादन के साधन हैं——मज़दूर और पूँजी। भारतीय मज़दूर समानता के आधार पर पूँजीवाद से समझौता कर सकता है। यदि भारतीय मज़दूर में उत्पादन-संबंधी शक्ति की कमी हुई है, तो यह उसका अपना दोष नहीं है। यदि उनके हितों की पूरी रक्षा हो तो कोई कारण नहीं है कि उनकी पूरी शक्तियाँ उत्पादन-वृद्धि में न लगें। मानवता के तथ्यों को हल करने में मजदूरों की व्यवस्था राष्ट्र की प्रधान समस्या है। भारतीय मज़दूरों को खाद्य पदार्थ की कमी, स्वास्थ्य-सम्बन्धी व्यवस्थाओं का अभाव, शारीरिक निर्बलता और रहने के अनुपयुक्त वातावरण आदि भारतीय मजदूरों को काम करने के योग्य नहीं रखते। इससे उनमें कार्यक्षमता का उत्तरोत्तर अभाव बढ़ता है।

यदि भारतीय मज़दूरों का सामाजिक जीवन उन्नत हो, उनकी शारीरिक अवस्था सुदृढ़ हो, तो उनकी कार्यक्षमता बढ़ सकती है।

सभी राजनीतिक दल अपना एक ध्येय प्रकट करते हैं। वह चाहे कांग्रेस हो, या साम्यवादी दल या कम्युनिस्ट वर्ग। सब दल किसान और मज़दूरों का शासन चाहते हैं। सब का आधार देश में सोशलिज़्म के आधार पर समाज का निर्माण करना है। कांग्रेस के कर्णधारों का कहना है कि सोशलिज़्म तुरन्त नहीं लाया जा सकता। उसके लिये समय चाहिए। कहा जाता है कि चीन को साम्यवाद लाने में बीस वर्ष लगे। पर आज तो समय इतना आगे बढ़ गया है कि वर्षों का काम महीनों और दिनों में पूरा करना है।

इसलिए देश का मजदूर वर्ग लम्बे समय की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

इन अगले पाँच वर्षों में शासन को उद्योग-धंधों के क्षेत्र में मजदूरों की सत्ता बढ़ाने की ओर तेजी से कदम बढ़ाना होगा। उद्योगपति और शासक वर्ग दोनों ही भूचाल के मुहाने पर खड़े हैं कि वे चाहें तो देश को आर्थिक क्रांति से बचाकर उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं; अन्यथा देश में हिंसात्मक आधार पर समाज की काया पलट हुए बिना नहीं रहेगी। देश चारों ओर से क्रांतिवादी शक्तियों से घिरा हुआ है और देश के प्राङ्गण में भी ये तत्त्व पनप रहे हैं और उन सब से भारतीय मजदूर अनजान नहीं है। उसे बराबर प्रेरणा मिल रही है कि वह किस दिशा में अपना कदम बढ़ाए। सरकार के आधीन संचालित होने वाले उद्योगों में भी मजदूर सहकारी व्यवस्था चाहता है। आज जो धंधे राज्य द्वारा संचालित होते हैं, उनमें और व्यक्तिगत पूंजीपति द्वारा संचालित धंधों में कोई अन्तर नहीं है। राज्य द्वारा संचालित धंधों में पूंजीपतियों के स्थान पर नौकरशाही काम करती है। इस दिशा में अधिकारी वर्ग और उद्योगपतियों में क्या अन्तर है। इसलिए मजदूर वर्ग की मांग है कि राज्य द्वारा संचालित धंधे सहकारी संगठन के आधार पर चलें। उनकी व्यवस्था में अधिकारी वर्ग और मजदूरों के प्रतिनिधि दोनों का सम्मिलन हो। इसी प्रकार निजी धंधों में भी मजदूरवर्ग उनकी व्यवस्था में अपना प्रतिनिधित्व चाहता है और साथ में यह भी माँग करता है कि उन्हें भी लाभ में हिस्सा मिले। मजदूर वर्ग इस आधार पर समाज का नव-निर्माण चाहता है। आर्थिक क्षेत्र में उसका इस प्रकार प्राधान्य होने पर शासन-सत्ता भी उसके नेतृत्व में संचालित होगी। देश में दो ही दल होंगे, एक मजदूरों का दल और दूसरा पूंजीपतियों का। अन्य किसी वर्ग के लिए राजनीति में कोई स्थान नहीं है। ज्यों-ज्यों मजदूर-दल का प्राधान्य बढ़ेगा, शासन में उसकी सत्ता बढ़ेगी, त्यों-त्यों प्रतिगामी दल की शक्ति क्षीण होती जायगी और देश में एक मात्र मजदूरों का ही दल रह जायगा।

समाज इसी ओर बढ़ रहा है। राष्ट्र का नव-निर्माण आर्थिक भित्ति पर

हुए बिना न रहेगा। देश का आर्थिक बिकास उनकी प्रगति पर निर्भर है। अब छोटे-मोटे सुधारों का समय नही रहा। यह तो समाज के नव-निर्माण का काल है। शासन-सत्ता और आर्थिक अवस्था दोनों मे किसान ओर मजदूरों की दृष्टि से आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। देश में चाहे जितनी विदेशी पूँजी लगे, और कितने ही बड़े-बड़े उद्योगो का निर्माण हो, पर उन से मजदूर समस्या का हल न होगा। भारत में मानव-शक्ति इतनी अधिक है कि उसके लिए क्रांतिकारी प्रयोगों की आवश्यकता है। पंचवर्षीय योजना या अमेरिका की आर्थिक सहायता तब तक देश में आर्थिक समृद्धि नहीं ला सकती, और श्रमजीवी वर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकती, जब तक कि समाज की व्यवस्था का सृजन नए सिरे से नही होगा। भारतीय किसान और मजदूर आज अपने परिश्रम का पूरा फल चाहते है, उनकी मांग है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका नेतृत्व और अधिकार समान आधार पर हो।

२०

इनक़लाब रुक सकेगा ?

पश्चिमीय देशों के राजनीतिज्ञों में यह विचार बल पा गया है कि एशिया में केवल भारत लोकतंत्र शासन प्रणाली का आखरी किला बचा हुआ हैं। इसलिए यदि संसार में लोकतन्त्र जीवित रखना है, तो हमें भारत की समस्याओं को हल करने में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। इसके साथ उन्हें यह भी मानना पड़ा है कि साम्यवाद से मोर्चा लेने के लिए टैंक और मशीनगनें सब से कारगर शस्त्र नहीं हैं। साम्यवाद ने दक्षिण एशिया में एक नई स्थिति उत्पन्न कर दी है। विशाल चीन में साम्यवाद का प्रसार ग्रामों से हुआ और आज भारत में भी वह *ग्रामों से आगे बढ़ रहा है। अतएव यदि हमें साम्यवाद से मोर्चा लेना अभीष्ट* है, तो हमारी सारी शक्तियाँ ग्रामों की ओर मुड़नी चाहिएं। भारत का शासन-तंत्र इस ढंग से संचालित हो कि कृषक-जनता जोर-ज़बर्दस्ती के शासन के आगे सर झुकाने की अपेक्षा स्वतन्त्रतापूर्वक पारस्परिक सहयोग से देश के नव-निर्माण की ओर अग्रसर हो।

इन राजनीतिज्ञों ने यह भी प्रकट किया :

आने वाले पांच वर्ष इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि भारत में कौनसी शासन प्रथा अधिक सफल होगी---लोकतन्त्र शासन या साम्यवाद : अधिनायकवाद--कम्युनिज्म डिक्टेटरशिप। यदि इस अवधि में भारत की आर्थिक समस्याएं हल न हुई तो चीन ने जिस प्रकार हिंसात्मक उपायों से जनता को सुख-सुविधाएं प्रदान कीं, हम पसंद करें या न करें, तब हमारे लिए और समस्त एशिया के लिए साम्यवाद का रोकना असंभव हो जाएगा।

स्वतंत्र राष्ट्रों के नेता यह भले कहें कि चीन ने अपना विकास मानव-प्राणों के निर्मम विनाश के द्वारा किया, किंतु हमें स्मरण रखना चाहिए कि अपनी दयनीय स्थिति से मुक्ति चाहने वाली अधीर जनता इस पर लक्ष्य न देगी।

पर यदि दैवयोग से भारत में लोकतंत्र की विजय हुई, तो न केवल यह देश वरन् सारे एशिया की करोड़ों जनता—विश्व का सबसे बड़ा मानव समुदाय—अपने लिए और संसार के लिए एक नई आस्था का विकास करने में समर्थ होगा।

इस स्थिति का सामना करने के लिए हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि भारत अगले पाँच वर्ष के अन्दर अपनी दारुण अन्न समस्या के हल करने के साथ साथ औद्योगिक विकास में भी इतनी प्रगति करे, जिससे कि वह अपने आर्थिक और सामाजिक ध्येयों की पूर्ति में अपनी लोकतंत्र संस्थाओं के महत्त्व का भली भाँति परिचय दे सके। आज करोड़ों किसान और मजदूरों का नेतृत्व बुद्धिवादी मध्य-वर्ग के हाथ में है। यही वर्ग लोकतंत्र के जीवन का दर्शन है, जो देश के भविष्य को बना और बिगाड़ सकता है। अतएव आगामी पाँच वर्षों में श्रमजीवी वर्गों के साथ मध्य-वर्ग की स्थिति में भी सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। आज मध्य-वर्ग समाज के दो वर्गों को जोड़ने वाली शृंखला है। पर जिस दिन यह वर्ग नव-क्रान्ति की करार पर खड़ा हो जाएगा, क्या कोई कह सकता है कि उस दिन क्या होगा? क्या इस देश में इनक़लाब न आएगा?

आज सिसकता हुआ देश अपनी मुक्ति चाहता है। यदि हमने समय रहते अपने सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन कर नई स्थिति का सामना नहीं किया, तो फिर अवस्था हमारे हाथ में न रहेगी। कर-प्रथा नियंत्रण और सम्पत्ति-वितरण की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के अतिरिक्त जाति-प्रथा पीड़ित और वर्ग भाषा-ग्रस्त समाज के उत्थान के लिए त्याग का आरंभ समाज के सिरे से किया जाए। समाज की भेद-मूलक स्थिति में एकबारगी परिवर्तन आवश्यक है। सम्पत्ति का असमान

वितरण समाज के लिए बड़ा खतरनाक है। अंग्रेज़ों ने इस भेदमूलक स्थिति का निर्माण किया था। उन्होंने करंसी नोटों की संख्या में बेशुमार वृद्धि कर व्यापारी वर्ग की लोभवृत्ति को प्रोत्साहन दिया और सहस्रों तथा लाखों व्यक्तियों को लखपति तथा करोड़पति बनाकर देश की स्थिति को विषम बना दिया। आज देश में हमें जो खराबियां दिखाई देती है, उनका मूल कारण समाज की वर्तमान आर्थिक असमानता है। इसलिए हमारे सामने केवल एक उपाय रह गया है कि हम इस आर्थिक विषमता को मिटा कर राष्ट्र के साधन और शक्तियों को उत्पादन में लगाएं। समाज की वर्तमान भुखमरी और नग्नावस्था के नाश के लिए राष्ट्र के आर्थिक स्रोतों का नवसंगठन करें।

पर हमारी वर्तमान प्रवृत्तियाँ देखकर साम्यवादियों को यह आशा है कि यह सहायता जनता को समय पर न मिल पाएगी। गांधी जी यह अवस्था हृदय-परिवर्तन के द्वारा समाज में लाना चाहते थे। किंतु साम्य-वादी आज शक्ति के बल पर उसे लाने के लिए तुले हुए हैं। उनका खयाल है कि समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन कभी स्वेच्छापूर्वक नहीं होते।

देश की इस अनुन्नत दशा का कारण सम्पन्नवर्ग का जन-कल्याण के लिए अग्रसर न होना है। वह समाज की सुरक्षा और वृद्धि नहीं चाहता है। वह जनता की प्रतिक्रिया देखता है, किंतु फिर भी उस में चेतना नहीं आई। तब क्या वह अपना सर्वस्व नाश चाहता है। देश में आज पांच महा-दुर्गुण घर कर गए हैं। वे हैं—'बढ़ती हुई आवश्यकताएं, रोग, अज्ञानता, अकर्मण्यता और समाज की असमानता।' इन्हें दूर करने में धनी वर्ग सर्वथा पिछड़ा हुआ है। वस्तुतः उसका कोई सहयोग नहीं है। वह तो अब भी अपने धन से चिपटा हुआ है। वह अपनी पूंजी को राष्ट्र के नवनिर्माण में लगाने के लिए तत्पर नहीं है। जहाँ धनियों की यह स्थिति है, वहाँ शिक्षित तरुणवर्ग में भी साहस की कमी है। वह अकर्मण्य बन गया है। उसमें उदासीनता के भाव घर कर गए हैं। आज वह साहसपूर्ण कार्यों में हाथ नहीं डालना चाहता है।

धनियों के पास पूंजी का अभाव नहीं है, शिक्षित युवकों की भी कमी नहीं है, किंतु फिर भी दोनों आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं हैं। अपनी परम्परा के आधार पर पूंजीपति आज भी सोचते हैं कि वे ऐसे किस काम में रुपया लगाएँ, जिससे उन्हें तुरंत मुनाफ़ा हो। वे लाभ-हानि की बाज़ी में अपना धन नहीं फँसाना चाहते। किसी नए बुनियादी धंधे में अपना रुपया लगाने की अपेक्षा उसे दाँतों से पकड़े रहना उन्हें अधिक पसंद है। दूसरी ओर शिक्षित वर्ग धनाभाव को सबसे बड़ा दुर्भाग्य मान कर निराशा-पूर्ण अवस्था में बैठा हुआ है। उस में आलोचना की भी दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति पैदा हो गई है। पर माना कि यह रोग केवल इसी देश में नया पैदा नहीं हुआ है। वह संसारव्यापी है। आज से पहले चीन का शासन और वहाँ की प्रजा भी इस भयानक रोग से ग्रस्त थी। आज भारतीय समाज का भी समस्त अंग इस व्याधि से पीड़ित है। अतः यह अवस्था ही विद्रोह और क्रान्ति को जन्म देती है।

जब समाज के सब वर्ग एक दूसरे पर विश्वास न कर पार्थक्य भावना से ग्रस्त हो जाते हैं, धनी वर्ग अपने कर्तव्य को विस्मृत कर समाज के साधनहीन निम्न वर्ग की उपेक्षा करता है और निर्धन बुद्धिसम्पन्न मध्य वर्ग निष्क्रिय, निश्चेष्ट तथा उदासीन हो जाता है, तब देश में एक प्रकार की वैषम्यपूर्ण अवस्था उत्पन्न होजाती है। उस अवस्था में समाज का उत्तरोत्तर पतन होना स्वाभाविक है। इन्हीं सब कारणों से समाज ऊंचा नहीं उठ पाता है। वह पीड़ा और वेदना से कराह उठता है। उस में अपनी स्थिति के प्रति क्रोध और निराशा की भावनाएं प्रबल हो उठती हैं। तब मानव विवेक-अविवेक और फलाफल की चिंता नहीं करता है। उसके सामूहिक प्रयत्न समाज में अशांति, कलह और उपद्रव पैदा करने के कारण भूत बनते हैं। यह स्थिति ही क्रान्ति है, इनक़लाब है।

यह आवश्यक नहीं है कि क्रान्ति का अंत मंगलजनक ही हो। यह सब नेतृत्व पर निर्भर है। क्रान्ति के समय क्रोध-रोष, क्षोभ और हिंसा की प्रवृत्तियां प्रबल हो उठती हैं। उस उमड़ते हुए तूफ़ान को यदि सीधे-सरल

मार्ग पर ले जाया गया, तब तो क्रान्ति सफल होती है, अन्यथा उस का परिणाम सर्व संहारक होता है। पर क्रान्ति प्रचलित अवस्था में परिवर्तन हर स्थिति में करती हैं।

आज ग्रामों की जनता नितांत श्रमशील, क्षुधा-पीड़ित, अर्द्धनग्न, एवं दरिद्रता से अभिशप्त है। एक ओर यह जन समुदाय है, तो दूसरी ओर उसके समीप में ही महल और अट्टालिकाओं में धनी वर्ग ऐश-आराम का जीवन व्यतीत करता है। वह भोगविलास में मस्त है। वह अपनी सम्पन्न स्थिति के कारण कभी कोई ऐसा प्रयत्न नहीं करता, जिससे समाज को त्राण मिले। देश का मंगल उसका कभी लक्ष्य नही होता है।

पर आज यह विषम अवस्था सारे देश में विद्यमान है। महात्मा गांधी ने कहा था—'मैं यह तो नही जानता कि साम्यवाद क्या चीज है, पर यह चाहता हूँ कि यदि धनीवर्ग निर्धनों को अपना संरक्षक मान ले, और उसके पास जो सम्पत्ति है, उसका वह अपने को अमानतदार मान ले तथा समाज की आवश्यकताओं का पूरक बन जाए तो देश में वर्तमान विषमता और उससे उत्पन्न होने वाली कलह और अशांति का नामशेष न रहे।

पर यह दुर्भाग्य कहिए कि हमने न उस महामानव के सदेश को सुना और न हम संसार की वर्तमान गतिविधि देखकर आज के नेताओं को ही सुनते हैं। हमने अपने हाथों से ही देश को नाजुक स्थिति पर पहुँचा दिया है। आज वह विनाश के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। यह सौभाग्य कहिए कि इस देश के लोगों का भगवान् पर बहुत भरोसा रहता है। इससे अपनी पीड़ित अवस्था में भी उन्होंने संतोप अनुभव किया। संभवतः यह भावना उन्हें हिंसा और अन्य दुर्दमनीय प्रवृत्तियों से दूर रखती आई हैं। पर उसका भी अब अंत आ गया। अब यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं टिक सकती है।

हमें अनेक बार अपने आज के नेताओं की साहसहीनता, अकर्मण्यता और निर्बलता पर तर्स आता है। अतः इस स्थिति में यह प्रश्न उठना

स्वाभाविक है कि क्या इस अत्यन्त गिरे हुए देश में लोकतंत्र शासन उपयुक्त है ? क्यों नहीं, हमारे नेता कमालपाशा, स्तालिन और माओ के नेतृत्व का अनुसरण करते हैं। वे क्यों नहीं शक्ति का उपयोग कर समाज की नई रचना करते हैं। मिश्र हमसे पिछड़ा हुआ था, पर जनरल नजीब ने शांतिमय-क्रान्ति द्वारा उसे संसार के समुन्नत देशों के बराबर ला खड़ा कर दिया। नजीब ने बड़े साहस से राष्ट्रद्रोहियों का नाश किया, भ्रष्टाचार का अंत किया, और लाखों किसानों को जमीन का मालिक बनाया। इस वीर नरपुंगव ने सभी विघातक तत्त्वों को सम्पूर्ण विनाश कर जिस ढंग से नए समाज की रचना की, उसे देखकर सारा संसार चकित हो गया। यदि हमारे देश के नेतागण भी स्वतंत्रता के उपरांत सामाजिक क्रान्ति की ओर इस प्रकार अग्रसर होते तो आज यह देश भी संसार में अपना मस्तक ऊँचा करने में समर्थ होता। वे क्रान्ति के अग्रदूत बनकर समाज में अंधविश्वास, धर्मांधता और अज्ञानता को मिटाते। उनके मार्ग में कौन-सी बाधाएं हैं। अन्तत: उनका लक्ष्य लोक-कल्याणकारी शासन की स्थापना करना ही है।

पर यदि उनका यह लक्ष्य नहीं है, तो वे साफ़ क्यों नहीं कहते हैं। राष्ट्र को उनका मकसद प्रकट होना चाहिए। पर यह जाहिर है कि नेताओं के पराङमुख होने के बावजूद इनक़लाब न रुक सकेगा। क्रांति समाज की विषमता के उत्तरदायियों का लेखा-जोखा ठीक करने के लिए अवश्यम्भावी है। यदि नेता गण नवनिर्माण चाहते हैं, तो उनका यह विलम्ब कैसा है ? भारतीय पूंजीपति वर्ग क्या सो रहा है ? क्या वह विश्व की उथलपुथल को नहीं देख रहा है। क्या वह देश और समाज को शाश्वत धोखा देते रहने की कला में सफलता प्राप्त करने की अब भी आकांक्षा रखता है ? क्या यह विचारधारा एक दिन उसके विनाश का कारण न बनेगी ?

भारत का धनी वर्ग यह नहीं देख पा रहा है कि इस देश में दो महान् विदेशी शक्तियाँ जोरों से कार्य कर रही हैं। एक ओर साम्यवादी रूस देश में राज्य शासन पलटने के लिए भारतीय साम्यवादियों को लाखों

रुपए की आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा है। लाल चीन और पूर्वी योरप के अन्य साम्यवादी देश भी भारतीय साम्यवादियों को सहायता देने में पीछे नहीं हैं। वे जानते हैं कि एशिया के साम्यवादी बनने के मार्ग में भारत ही एक रोड़ा है। दूसरी ओर अमेरिका अपने अरबों डालर एशिया और सुदूर पूर्व में बिखेर रहा है। वह अपनी आर्थिक सहायता से भारत में लोकतंत्रशासन की जड़ मज़बूत करना चाहता है। उसकी भी धारणा है कि किसानों की अवस्था सुधरने पर देश में साम्यवाद का खतरा मिटेगा। इसलिए वह साम्यवाद के विरोध में लोकतंत्र के प्रसार में लगा हुआ है। दोनों अपनी अपनी नीति से समाज के नव निर्माण में लगे हुए हैं।

देश की आर्थिक प्रगति में ही लोकतंत्र की सफलता निहित है। इसलिए कृषि और उद्योगधंधों के प्रसार में राष्ट्रीय सरकार सही या गलत व्यवस्था और कम या अधिक नुक्सान में बड़े-बड़े उद्योगधंधों की स्थापना में लगी हुई है। विदेशी पूंजी भी यहाँ पानी की तरह बहने के लिए चली आ रही है। ऐसी स्थिति में देश के विभिन्न वर्गों की निष्क्रियता कहाँ तक उचित है ? वे अपने इतिहास से पूछें, उन्हें प्रकट होगा कि देश के उत्थान के प्रति उनकी यह उदासीनता कितना जघन्यतम अपराध है। इस विषम स्थिति का परिणाम यह होगा कि देश की प्रगति तो रुकेगी नहीं, अलबत्ता आज के इन लोगों का नाम शेष न रहेगा। समाज में नए परिवर्तनों को क्या कभी कोई शक्ति रोक सकी है ?

२१

प्रान्तों का संघर्ष : गृहयुद्ध की विभीषिका

महात्मा गांधी ने 'हरिजन' के जुलाई सन् १९३९ के अंक में प्रान्तीयता के संबंध में लिखा था:—

'प्रान्तों के बीच में पृथक्ता और ईर्षा के भावों का कोई स्थान न होना चाहिए। पर यह अवस्था तब मुमकिन हो सकती है, जब भारत का विभाजन लड़ने वाले देशों के रूप में टुकड़े-टुकड़े में हो और उनमें हर एक केवल अपने लिए जिंदा रहता है और यदि उसका बस चलता है तो वह अपनी वृद्धि के लिए दूसरों का भी पराभव करता है। पर कांग्रेस का जीवित रहना तब व्यर्थ होगा, यदि कहीं देश पर इस तरह की विपत्ति आ जाए। इसलिए भारत को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करने के प्रत्येक प्रयत्न को रोका जाए। यह देश संगठित होने पर स्वतंत्र शक्तिशाली राष्ट्र में परिणत हो सकता है और तभी वह संसार के उत्थान में अपना महत्त्वपूर्ण भाग ले सकता है।'

पिछली दो तीन पीढ़ियों से भाषा के आधार पर नए प्रान्तों की रचना और न्यूनाधिक करने की मांग बराबर जारी है। पर जब कभी यह आवाज़ बहुत जोरों से उठी, देश में अधिक उत्तेजना आई और गर्मी पैदा हुई। प्रत्येक अवसर पर भाषावार प्रान्तों की मांग ने एक प्रान्त के लोगों को दूसरे प्रान्त के लोगों के विरुद्ध खड़ा किया। इस संघर्ष में मनुष्य मनुष्य से लड़ पड़ा। इसने अधिक से अधिक प्रान्तीयता का जहर पैदा किया। भारतीय राष्ट्रीयता में खाई पैदा की। लोगों में मदांधपन आ

गया। इस स्थिति में शायद ही किन्हीं लोगों ने इस सिद्धान्त की व्यावहारिकता पर कभी सोचा हो। जोशे-जहद में कौन सोचता है। किंतु यदि इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए, तो यह स्पष्ट है कि वह बुनियादी रूप में ही गलत प्रकट होगा। अतीत काल में कभी भी भाषा के आधार पर देश का विभाजन नहीं हुआ था।

पर स्वतंत्रता प्राप्त होने के उपरांत जिस प्रकार देश में अन्य प्रवृत्तियां उत्पन्न हुईं, उसी प्रकार प्रांतीयता के पागलपन ने भी जोर पकड़ा। पंजाब में पहले सिख राज्य की मांग की गई, उसके बाद उसका रूप बदल कर पंजाबी भाषा के प्रांत के निर्माण का आन्दोलन खड़ा हुआ। पूर्वी पंजाब और पटियाला राज्य संघ के एकीकरण का प्रश्न उठा। दक्षिण में हैदराबाद राज्य और मद्रास प्रान्त को कई टुकड़ों में बांटने की योजना तैयार की गई। आंध्र प्रान्त के निर्माण के लिए सत्याग्रह और दुराग्रह तथा विघटन उत्पन्न करने वाले साधनों का आश्रय लिया गया। बंगाल ने बिहार के विरुद्ध युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी। इन दोनों प्रदेशों का संघर्ष जिस ढंग से छिड़ा है, उससे प्रकट होता है कि मानो दोनो ही गैर-मुल्क हैं। बंगाल दो हाथ बढ़ाकर भिड़ने के लिए आगे आता है। राष्ट्र का यह कैसा पतन है!! जातीयता का विनाश हो गया है। क्या दोनों प्रान्तों के अधिवासी विशाल हिन्दू जाति के अंग नहीं हैं। यदि हैं, तब एक ही जाति के लोगों में यह कैसा संघर्ष है? आवश्यकता तो यह है कि दोनों प्रदेशों के हिन्दू सामाजिक सम्बन्ध में वृद्धि करते, किंतु वह न कर भेदभावों की ऊंची दीवार खड़ी की जा रही है।

आज बंगाल बिहार के उन जिलों को चाहता है, जिन में बंगालियों की आबादी है, पर बंगाल के इस दावे में कोई तथ्य नहीं है। इस धरातल पर विचार-विमर्श करने पर बंगाल को कलकत्ता और अन्य स्थानों से हाथ धोना पड़ सकता है। कलकत्ते का वैभवपूर्ण निर्माण गैर बंगालियों ने किया है। उत्तर भारत के विशाल व्यापार से कलकत्ते की समृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा का सारा व्यापार कलकत्ते के बंदरगाह

से होता है। अतएव किसी दिन गैर बँगाली भी यह मांग कर सकते हैं कि कलकत्ता भी दिल्ली के समान एक स्वतंत्र प्रदेश बना दिया जाए। पर आज बंगाली समाज शरणार्थियों की समस्या हल करने के लिए मानवता के नाम पर बिहार से उन जिलों की मांग करता है, जिनमें बंगाली बसे हुए हैं। यह कहा जाता है कि बंगाली हिन्दू अन्यत्र नहीं रहना चाहते हैं। यह मांग पंजाब और सिंध के हिन्दू और सिख भी कर सकते थे कि उन्हें अलग बसाया जाए। पर क्या यह संभव था। इस तर्क में भी कोई तथ्य है ?

यदि देश में यह भावना कहीं बल पा जाए तो कोई भी प्रदेश अन्य प्रदेश-वालों को बसाने के लिए तैयार न होगा। इसी प्रकार किसी प्रदेश के सीमा-वर्ती जिलों में न्यूनाधिक रूप में अन्य भाषाभाषियों के रहने पर उनके विच्छेद की मांग कर बैठना एक अजीब बात है। बंगीय नेता एक ओर मानवता की पुकार करते हैं, तो दूसरी ओर बिहार के विभाजन के लिए कमीशन की मांग करते हैं। वे बंगीय नेता जो संस्कृति और धर्म के नाम पर समस्त भारत के हिन्दुओं के साथ नेतृत्व का दंभ भरते हैं, वे इस मांग के अवसर पर बिहार के हिन्दुओं को शायद हिन्दू नहीं मानते हैं। इन्हीं साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने बंगीय प्रादेशिक कांग्रेस से कहा कि वह अपना सम्बन्ध अखिल भारतीय कांग्रेस से विच्छेद कर ले। पर इस दृष्टि से कल वे बंगाल के विधान-मण्डल से भी कह सकते हैं कि वह प्रान्त को केन्द्र के शासन से पृथक् कर ले। बंगाली हिन्दुओं के लिए यह विचार-धारा कोई नई चीज नहीं है। बंगाल की राजनीति का अखिल भारतीय संगठन से सदा प्रतिरोध रहा है। विभाजन के दिनों में भी मियां सुहरावर्दी और बंगाली हिन्दू नेताओं की यह पूरी चेष्टा थी कि पूर्व में बंगाल एक स्वतन्त्र राज्य कायम हो और उसकी किस्मत भारत और पाकिस्तान दोनों से जुड़ी हो। पर यह हल कायदे आजम जिन्ना को स्वीकृत नहीं हुआ। जो कुछ हो, आज बंगाल और बिहार—दोनों ही प्रदेशों में द्वंद मचा हुआ है। राष्ट्रीयता के विघटन के नारे लग रहे हैं और दूसरे प्रान्त के

लोगों को शत्रुवत मानकर कोई बात कहने से नहीं छोड़ी जाती है। यह कल्पनातीत भयानक अवस्था है।

इस प्रकार देश में एक छोर से दूसरे छोर तक प्रान्तीयता का जहर फैल रहा है। मद्रास, हैदराबाद और पंजाब में साम्यवादी भी इस संघर्ष में योग देने में पीछे नहीं हैं। जनता के असंतोष में ही उन्हें आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। उन्हें इससे कोई तात्पर्य नहीं कि किसी कार्य का परिणाम देश के लिए कितना विनाशकारी होगा।

मध्य प्रदेश और बम्बई राज्य भी भाषावार प्रान्त चाहते हैं। महाराष्ट्रीय हिन्दू वृहद् महाराष्ट्र के निर्माण की कल्पना करते हैं। बम्बई राज्य में भी गुजराती और मराठी भाषाभाषियों का संघर्ष है। इसी भेदभाव के कारण आज बम्बई राज्य का शासन प्रादेशिक भावनाओं से विषाक्त हो गया है। महाराष्ट्र के केन्द्र अमरावती में अखिल भारतीय भाषावार राज्य-निर्माण सम्मेलन में घोषणा की गई कि भाषा के आधार पर सारे देश का नव निर्माण हो। इस प्रकार देश के नए सिरे से विभाजन की मांग की गई है। इस सम्मेलन ने धमकी दी है कि यदि देश की शांति अभीष्ट है, तो प्रान्तों का विभाजन अविलम्ब किया जाए।

पर स्थिति यह है कि नारे लगाना आसान है; किंतु उनसे जो आशा की जाती है, उस का पूरा होना सहज नहीं है। दरअसल में भाषावार प्रान्तों के निर्माण के लिए कांग्रेस ही जिम्मेदार है। सन् १९२१ से कांग्रेस यह घोषणा करती आई कि भाषावार प्रान्तों का निर्माण उसका लक्ष्य है। पर आज जब उसने सत्ता ग्रहण की, तब उसके नेतागणों को चेतना हुई कि यह कितने खतरे का काम है। उन्हें दिखाई दिया कि मौजूदा स्थिति में प्रान्तों का विभाजन विनाश को आमंत्रण देना है।

क्या भाषा के आधार पर देश का विभाजन संभव है? प्रकट रूप में यह भले ही संभव हो, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से उसका पूर्ण होना कभी संभव नहीं है। भारत एक देश है और काश्मीर से कन्याकुमारी तक कहीं कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है कि जो एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से

पृथक् करे। यद्यपि भिन्न भिन्न भाषा के क्षेत्र स्थित हैं, किंतु निश्चयात्मक रूप से कोई यह निर्णय नही कर सकता है कि कहां से एक क्षेत्र वस्तुत: आरम्भ होता है और कहां उसका अंत होता है। एक खयाली रेखा दो भाषाओं के क्षेत्रों की सीमा निर्धारण के लिए भले ही खीची जा सके, किंतु वह भी अधूरी रहेगी, क्योंकि उन दोनों के सीमवर्ती जिले किसी प्राकृतिक घेरे से पृथक् न होने के कारण निश्चय ही दो भाषाभाषी होंगे।

आबादी के अदला-बदली के कारण स्थिति और भी पेचीदा बन गई है। उदाहरण के लिए आंध्र प्रान्त को लीजिए। आंध्र प्रान्त का निर्माण होने पर भी आंध्र में तामिल भाषा भाषियों की संख्या काफी अधिक बनी रहती है और उसी प्रकार तामिलनाड में आंध्रों की संख्या रहती है। अतएव दोनों प्रान्तों का विशुद्ध निर्माण कभी संभव नही है। यही बात बंगाल और बिहार की है। बिहार के सीमावर्ती जिलों में बंगाली बसे हुए हैं। इसी प्रकार उड़ीसा में आंध्र है। इस विभाजन में हैदराबाद राज्य के टुकड़े टुकड़े हो जाएंगे। वह कई हिस्सों में बट जाएगा। वृहद् महाराष्ट्र के निर्माण में भी अनेक अड़चनें है। इन प्रश्नों के हल करने में विभिन्न भाषाभाषियों में इतना ज़बर्दस्त संघर्ष है कि किन्हीं दो प्रान्तों की सीमाओं का निर्धारण करना सहज नहीं है।

भाषावार प्रान्तों का निर्माण इस देश के लिए नई विचारधारा है। यह योरप की विषमयी राजनीति है। हिटलर ने इसी नीति का आश्रय लिया था। उसके कार्यों का जिन्ना पर भारी प्रभाव पड़ा था। उसने जिस ढंग से आस्ट्रिया आदि में आर्यरक्त के जर्मनों की माँग के नाम पर जर्मनी का विस्तार किया, कायदे आज़म जिन्ना ने मुसलमानों की तहज़ीब और मज़हब के नाम पर पाकिस्तान के रूप में स्वतंत्र राज्य की मांग की। उन्होंने कहा कि भारत के मुसलमान अपना स्वतंत्र राज्य चाहते हैं। पर आज उस स्वतंत्र राज्य के बनने पर भी भारत में प्राय: आधे मुसलमान फिर भी बने रहते हैं। अतएव जहां जातियां सदियों से एक साथ रहती आई हैं वहां इस तरह की मांग करना पागलपन के सिवा

और क्या है। देश के दो टुकड़े होने पर भी हिन्दू और मुसलमानों की समस्या बनी रहती है। इस प्रकार का विभाजन भारत के इतिहास में प्रथम बार हुआ। अन्यथा यह देश अपने हरएक उन्नत-काल में प्रशासन, आर्थिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक दृष्टि से एक अंगीभूत रहा है। उसकी राष्ट्रीयता सारे देश के लिए एक रही है। शत्रुओं के आक्रमण के उपरांत भी भाषा आदि के बिना पर देश में कभी कोई विभाजन नही हुआ।

भारत में कभी भी भाषा तथा प्रादेशिकता के आधार पर पृथक्ता नहीं थी। इतिहास कहीं भी यह नहीं प्रकट करता कि महान् सम्राट चन्द्रगुप्त, अशोक, हर्षवर्द्धन और अकबर के समय में भाषा के आधार पर देश का विभाजन हुआ हो।

अंग्रेजों ने अलबत्ता इस आधार पर देश को विभाजित करने का प्रयत्न किया। प्रान्तीयता के भावों की वृद्धि करने में उनका लक्ष्य भारत की राष्ट्रीयता को ठेस पहुंचाना था। इसी राष्ट्रीयता को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने ऐसी चालें चलीं, जिससे प्रान्तीयता के भाव उत्तेजित हों। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि इस भावना से प्रान्तों का निर्माण होने पर केन्द्र में उनका एकीकरण बलशाली न होगा। वे सदा आपस में संघर्षजनक स्थिति में रहेंगे। किन्तु अंग्रेजों की एक न चली और भारत एक महान् राष्ट्र के रूप में स्वतंत्र हुआ।

पर उनके चले जाने के बाद प्रदेश में प्रान्तीयता की भावनाएं उमड़ उठीं। पर यह भाषावार राज्यों के निर्माण की मांग हमारी राष्ट्रीय-एकता को छिन्न भिन्न कर देगी। इस खतरे को वे लोग भी अनुभव करते हैं, जो इस विघातक आन्दोलन के अगुआ हैं। विभाजन के दुष्परिणामों को स्वीकार करते हुए डाक्टर विधानचन्द्रराय को मानना पड़ा:—

'जिस क्षण हम भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण की चर्चा छेड़ते हैं, तब हम पुनः विघटन की शक्तियों को बल प्रदान करते हैं और जिसका विनाशकारी परिणाम भारत की सुदृढ़ एकता पर बिना पड़े नहीं रहता है।'

देश के स्वतंत्र होने पर विधान परिषद के अध्यक्ष ने भाषावार प्रान्तों की रचना के संबंध में सन् १९४८ में जो कमीशन नियुक्त किया था, उसने भी यह परामर्श दिया कि देश की वर्तमान अवस्था प्रान्तों के विभाजन के अनुकूल नहीं है। यह काल भारत को सुदृढ़ राष्ट्र में परिणत करने का है। अत: आज वे सब प्रयत्न पहले सामने आएँ, जिनसे भारत की राष्ट्रीयता की वृद्धि हो और वे सब बातें जो उसके मार्ग में कण्टकाकीर्ण हों, उन्हें हटा दिया जाए या सम्प्रति उन्हें सामने न लाया जाए।

अतएव आज प्रान्तों के निर्माण की मांगों का समर्थन करना यकायक संभव नहीं है, क्योंकि इस सिद्धान्त को मान कर यदि देश किसी भी एक स्थान से आगे बढ़ा, तो विघटन का जो चक्कर घूमेगा, उससे सारा देश विच्छिन्न हो जाएगा। यह पहिया फिर न रुकेगा। इसलिए भाषावार प्रान्तों की रचना के लिए यह समय तो अनुकूल ही नहीं है, किंतु यह अनुकूलता कभी भी न होगी, यदि इस देश को एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अग्रसर होना है। इसके सिवाय विभाजन की योजना इतनी दुष्टतापूर्ण है, भारी खतरों से परिपूर्ण है कि जो अंत में भारत की आत्मा को ही कुचल देगी।

भाषावार प्रान्तों के निर्माण से प्रत्येक प्रान्त के लोगों में दुहरी राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न होंगे। वे पहले प्रान्त को मानेंगे और उसके उपरांत देश को। यह प्रान्तीय-राष्ट्रीयता देश की राष्ट्रीयता का भक्षण कर जाएगी। भाषावार राज्य में प्रान्त की राष्ट्रीयता सर्वोपरि होगी, प्रधान शक्ति होगी और देश की राष्ट्रीयता से सदा मोर्चा लेने वाली होगी। पर यदि प्रान्तों का निर्माण किसी रूप में संभव ह, तो वह शासन की सुविधा के आधार पर किया जा सकता है। उसमें भाषा और जाति तथा संस्कृति आदि का कोई विचार नहीं होता है। इस प्रकार किसी प्रदेश का नवनिर्माण होना एक उचित मार्ग है।

पर यदि हम अपनी वर्तमान आर्थिक समस्याएं हल कर लें तो यह प्रकट है कि भाषावार प्रान्तों की मांग का स्वयं अंत हो जाएगा। देश में बेकारी

न रहने पर किसी भी प्रान्त में रहने पर किसी भाषाभाषी को यह खयाल पैदा न होगा कि उसके प्रति भेदभाव का व्यवहार किया गया। यह भावना ही प्रान्तों के विभाजन की जड़ है। यदि बंगाल में हिन्दी भाषाभाषी को काम न मिले, व्यापार की सुविधाएं प्राप्त न हों और बिहार में बंगालियों को काम न मिले तो उनमें यह खयाल होता है कि उनके प्रति बहुमत समाज भेदभाव का बर्ताव करता है। यह आरोप एक बारगी असत्य नहीं है, किंतु यह भी देखा जाता है कि वे व्यक्ति जिन के समाज का प्रदेश में बहुमत होता है, अपने प्रति उल्टे अन्याय की आवाज प्रकट करते हैं। अतएव प्रान्त के वातावरण को स्वस्थ रखने के लिए अल्पमतवालों के हितों का पूरा खयाल रखा जाए।

किसी नए प्रान्त के निर्माण होने पर आर्थिक दृष्टि से यदि वह आत्मनिर्भर न हुआ तो वह देश के लिए भारी खतरा साबित होगा। उसमें प्रतिद्वन्द्विता और प्रान्तीयता का नया जहर पैदा होगा। ऐसा प्रदेश भारत के राजनीतिक अंग का बिषाक्त फोड़ा न हो, यह गैर मुमकिन नहीं है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी की चेतावनी हमारा पथ प्रदर्शन कर सकती है। भारत की नव-अर्जित स्वाधीनता नष्ट हो जाएगी, यदि हम ने उस महापुरुष के वचनों की ओर ध्यान न दिया। पिछले समय में राष्ट्रीय एकता के अभाव में इस देश को जबर्दस्त कीमत चुकानी पड़ी है। आपसी फूट और कलह के कारण ही विदेशियों के आक्रमण संभव हुए, क्योंकि उस काल में लोगों की राष्ट्रीयता अपने अपने क्षेत्र तक सीमित थी। यदि आज फिर भाषावार प्रान्तों का निर्माण किया गया, तो देश में अनेक छोटे छोटे राज्य बन जाएंगे और उस अवस्था में उन पर कोई केन्द्रीय शासन संभव न होगा। पर यह दुर्भाग्य है कि देश का इस ओर कदम बढ़ चुका है। भाषावार प्रान्तों के निर्माण की विचारधारा राष्ट्र के सामने है।

प्रकृति ने भारत की एक अंग में रचना की, तब क्या हम उसके टुकड़े टुकड़े करने की क्षमता रखते हैं। इस विच्छेद तथा विलगता के पुराने इतिहास से अब भी हमने कुछ सबक नहीं सीखा है। पर भाषा, रीति रिवाज

और प्रथाओं की विभिन्नताओं के बावजूद देश में जो राष्ट्रीय एकता है, उससे इस विशाल देश के प्रत्येक व्यक्ति की हृद-तंत्री बज उठती है। उसे हर स्थान पर अपनापन नजर आता है। किसी भी स्थान पर उसे परायेपन का खयाल नहीं होता है। आज हमें विरासत में जो महान् संस्कृति प्राप्त हुई है, वह प्राचीन और नवीन सभ्यता का बेजोड़ मिश्रण है। वेद, उपनिषद, गीता और वेदांत हरएक भारतीय में एकता की भावना प्रकट करते हैं। कला, साहित्य, संगीत और संस्कृति के नवीन और प्राचीन रूप हम में एकरूपता लाते हैं। हमारी दार्शनिकता, और धर्म तथा विज्ञान के तत्वों में कोई विभेद नहीं है। हम सब के एक ही महापुरुष हैं। कृष्ण वृन्दावन में उत्पन्न होने पर भी दक्षिण भारत के लिए उतने ही मान्य हैं। इस देश में अनेक अवतार हुए, बुद्ध और शंकराचार्य हुए, तुलसीदास, रमन महर्षि, रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी हुए। ये सब विभूतियां सारे देश के लिए पूजित हैं, वंदनीय हैं। क्या हम प्रादेशिक भावनाओं से इन्हें भूल जाना चाहते हैं।

पर आज तो हम पर पागलपन सवार है। हम प्रान्तीय विभाजन द्वारा देश के टुकड़े टुकड़े करके दम लेना चाहते हैं। हमारी यह भी आवाज है कि यदि यह समस्या वैधानिक दृष्टि से हल न हुई तो उसके लिए गृह-युद्ध छिड़ना भी मुमकिन होगा। यह सोचिए कि ऐसे वातावरण में यदि केन्द्रीय शासन कहीं जरा ढील कर दे तो सारे देश की क्या स्थिति होगी। भयंकर आग से सारा देश जलभुन न उठेगा।

२२

आग, घर के चिराग से

इतिहास के पृष्ठ पलटिए, भारत ने जब कभी स्वतंत्रता प्राप्त की, तो हमने देखा कि वह स्थिर नहीं रही। देश की अनेकता, फूट और दल-बंदियों ने उसे कुछ काल भी न टिकने दिया। महाराज अशोक का चक्रवर्ती राज्य विलीन हो गया। मुगलों के शासन की अवधि भी अधिक समय तक न रही। छत्रपति शिवाजी महाराज का अपने बाहुबल से अर्जित अटक से कटक का स्वाधीन राज्य भी ध्वंस हो गया। अंग्रेजों को चकमा देकर वीर लक्ष्मीबाई ने जिस प्रदेश पर विजय प्राप्त की थी, वह देखते देखते छिन गया। कहना न होगा कि हर बार घर की फूट और दल-बंदियों से देश ऊपर न उठ सका।

हमारा रक्त इतना दूषित हो गया है कि उसमें एकता और संगठन के कीटाणु कभी बल-वृद्धि नहीं पाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्त होने पर हम में विजयी दल के प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ और हम उससे लड़े भिड़े। परिणाम यह हुआ कि फिर देश गुलाम बन गया। महाभारत के समय से आज तक देश के राजनीतिक मंच पर यही रिहर्सल हो रहा है। एक-दो बार की घटनाओं से हमें सचेत हो जाना था। पर हम इतने मदहोश हो गए, निर्लज्ज तथा बेशर्म बन गए कि हमने इतनी पराजयों के उपरांत भी अब तक कोई सबक नहीं सीखा। जो देश किसी समय संसार का अगुआ था, सभ्यता और संस्कृति का संदेश देने में अग्रदूत था, उसका यह घोर अधःपतन !!

यह सोचा था कि पिछली दो सौ वर्षों की गुलामी के उपरांत हमने

इस बार जिस महामानव के अधिनायकत्व में स्वतंत्रता प्राप्त की है, अब हम राष्ट्र की एकता में दरार न पड़ने देंगे। पर वह नहीं हुआ। हमने अपनी पूर्व परम्परा को बनाए ही रखा। इस बार भी स्वतंत्रता प्राप्त होने पर हम सब टूट पड़े और अपना अपना अधिकार प्रकट करने लगे। किसी ने कहा कि हम अभी नहीं लड़े तो क्या हुआ, हम तो उन लोगों के अनुयायी हैं, जो आज से हजार वर्ष पूर्व लड़े थे। दूसरे कहते हैं कि हम क्रान्तिकारियों के अनुयायी हैं। अंग्रेजों के संघर्ष के समय ये सब लोग भीगी बिल्ली की तरह घरों में दुबके हुए बैठे थे, पर आज वे क्यों न सीना निकाल कर खड़े हों। अनेक व्यक्ति क्रान्तिकारियों का नाम लेते हैं। उनकी जबान यह कहते हुए आगे बढ़ती है कि देश की स्वाधीनता कोई गांधी और कांग्रेस की अर्जित की हुई नहीं है। इस का श्रेय तो क्रांतिकारियों को है और वे उन्हीं क्रांतिकारियों को अपना आराध्यदेव मानते हैं। आज शासन में अपना अधिकार पाने के लिए सब अपनी देशभक्ति, समाज सेवा और आदर्शों को प्रकट करते हैं। इसके सिवाय, देश का वह राजनीतिक दल, जो युद्धकाल में अंग्रेजों के पैसों से पल कर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में आगे था, आज विदेशी शक्ति की छात्र छाया में भारत का शासन पलट देना चाहता है।

स्वाधीनता प्राप्त होने से पूर्व देश में इने गिने राजनीतिक दल थे। या यों कहिए कि कांग्रेस के रूप में एक ही शक्तिशाली दल था। पर अब तो मिष्ठान्न खाने के समय राजनीतिक दलों की बाढ़ आ गई है। इस समय किसी से लड़ना तो है नहीं, तो अधिकारों में हिस्सा पाने के लिए कोई दल क्यों न खड़ा किया जाए। अफसोस तो यह है कि आज वे भी अपना दल निर्माण कर खड़े हुए हैं, जो अंग्रेजों के शासन के समय सरकार की चाटुकारिता करते थे, युद्ध में उनकी विजय के लिए युद्धकार्य में योग देने वाले धनियों के धन से पूजा-पाठ और यज्ञ-हवन करते थे। वह सामंत वर्ग जो शासन करना अपनी पैत्रिक परम्परा प्रकट करता है, आज छद्मवेश से नया राजनीतिक दल बना कर आगे आता है। कल

तक वह अंग्रेजों की दासता करते थे, आज अपने स्वार्थों के लिए किसानों के सेवक बनते हैं। अल्प सम्प्रदायों के लोग भी भिन्न-भिन्न दल खड़े कर अपने जातीय स्वार्थों के आवरण में उग्र राजनीतिक-दलों का निर्माण करते हैं।

हमारा यह जीवन देखकर संसार हम पर हँसता है। एक ओर हमारी बड़े-बड़े आदर्शों की बातें हैं, और दूसरी ओर हमारे इस क्षुद्रतम जीवन को देख कर हम पर कौन न तर्स खाएगा। वे महा राष्ट्र जो सारे संसार को दो हिस्सों में बांटे हुए हैं, हमारी यह अवस्था देखकर मुसकरा उठे, और उन दोनों ने हम पर छा जाने के लिए अपने जाल बिछा दिए। ब्रिटिश शक्ति निर्जीव हो गई है। वह अपने बचे-खुचे उपनिवेशों को समेट कर रखने की चिंता में है। अपनी राजनीतिक पटुता के कारण ब्रिटिश-शक्ति महाशक्तियों की गणना में अपना स्थान बनाए रखना चाहती है। राजनीतिक सत्ता क्षीण होने पर भी उसने भारत जैसे देश को अपने आर्थिक घेरे में से बाहर नहीं जाने दिया है। इस प्रकार भारत का अंग्रेजों से एकबारगी सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ है। भारत के राष्ट्रमण्डल में होने या न होने का कोई महत्त्व नहीं है। वह उस में हो या न हो, उससे किसी पक्ष का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। पर जो बात महत्त्व की है, वह है भारत के अब भी इंग्लैण्ड के आर्थिक बंधन में रहने की। भारत के आर्थिक स्रोत एक ओर अंग्रेज उद्योगपतियों की मुट्ठी में हैं तो दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन भारत का पूर्ववत् महाजन बना हुआ है। स्टर्लिंग पावने के रूप में भारत की सम्पत्ति उसके अधिकार में है। हमारी मुद्रा का चलन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्टर्लिंग-पौण्ड से बंधा हुआ है। इस प्रकार हमारे समस्त स्रोत, हमारा जीवन, हमारी श्वास-प्रश्वास ग्रेट ब्रिटेन के स्टर्लिंग की गति-विधि पर निर्भर है। पर आज स्टर्लिंग अत्यन्त दुरावस्था में है। इंग्लैण्ड की अर्थनीति दिवालिया बनने की करार पर खड़ी हुई है। हम कामना करते हैं कि इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति उन्नत हो, सुदृढ़ हो, क्योंकि हमारा हित स्टर्लिंग की मजबूती पर

निर्भर है। यदि स्टर्लिंग अधिक आय का साधन बनेगा, तो हम उसे आसानी से प्राप्त कर सकेंगे, और अपना विदेशी व्यापार दुर्लभ-मुद्रा क्षेत्रों में चला सकेंगे। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से तो अंग्रेज चले गए, किन्तु हमारे आर्थिक स्रोतों पर अब भी उनका अधिकार बना हुआ है। पर देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो फिर अंग्रेजों का शासन चाहते हैं। ऐसे लोग अंग्रेजों के हाथ में आज भी खेल रहे हैं।

कहना न होगा कि देश में विभिन्न दलों का बाहुल्य और उनमें अनेकों का निरुद्देश्य संगठन राष्ट्र की शक्तियों का ह्रास करनेवाला हुआ। इससे देश भर में अशांति के बीज का वपन हुआ। सर्वत्र एक बवंडर-सा उठ खड़ा हुआ। रचनात्मक कार्य की ओर आगे बढ़ने की अपेक्षा सबने सरकार की आलोचना करना अपना प्रधान कार्य माना। सभी राज्य-शासन के आलोचक बन गए। जवाहरलाल और कांग्रेस को कोसने में उन्होंने अपने कर्त्तव्य की इतिःश्री मान ली।

सम्प्रदायवादी और प्रतिक्रियावादी दलों की बातें जाने दीजिए। उन्हें वर्ग-विहीन तथा धर्म-निरपेक्ष राज्य की खिल्लियां उड़ाने में ही आनन्द आता है। हिन्दू जाति का शासन में बहुमत होने तथा प्रतिनिधित्व की दृष्टि से उनके हितों को कोई खतरा न होने पर भी हिन्दू नेताओं ने समाज की रचना नई परिपाटी पर नहीं की। आज यह अपेक्षित था कि हिन्दू जाति जो सदियों से विशृंखल है, विनाशकारी प्रथाओं और रूढ़ियों तथा संकुचित विचारों से बड़ी बुरी तरह ग्रस्त है, उसके नए संस्कार के लिए कदम उठाया जाता। पर साम्प्रदायिक नेताओं ने उल्टे धर्म और संस्कृति के नाम पर उन्हें और गड्ढे में ढकेलने का प्रयत्न किया। संसार की पिछड़ी हुई बर्बर जातियां भी आज धार्मिक तथा सामाजिक ढकोसलों से बाहर निकल कर संसार की सभ्य और सुसंस्कृत जातियों के निकटतम आ रही हैं। पर इधर भारत में हिन्दू जाति के नेता अपने राजनीतिक नेतृत्व के लिए उसके उत्थान को रोक रहे हैं। वे सामाजिक परिवर्तनों का विरोध कर उसी वृक्ष और उसी शाखा को

काट रहे हैं, जिस पर वे खड़े हैं। पर वे क्या यह नहीं जानते हैं कि संसार में वही जाति जीवित रहती है, जो समय के साथ बढ़ती है। संसार निर्बल और शक्तिहीनों के लिए नहीं है। इसलिए धर्म और संस्कृति के नाम पर हिन्दू समाज में सुधार न होने देना साम्प्रदायवादियों का कैसा जघन्य कृत्य है।

संसार के किसी भी देश में धर्म और संस्कृति के नाम पर राजनीतिक निर्माण की आवाज़ नहीं उठती है। पर इस देश में संस्कृति राष्ट्र के जीवन के लिए तपेदिक की बीमारी बन गई है। उस के नारे ने देश में विघटन और अराजकता की स्थिति पैदा कर दी है। धर्म-निरपेक्षता को बदनाम करने के लिए साधारण जनता को धर्म के नाम पर वरगलाया जाता है। फिर जो लोग संस्कृति का राग अलापते हैं, उन में एक भी संस्कृति की परिभाषा नहीं जानते। वे स्वयं नहीं जानते कि संस्कृति क्या चीज़ है। सम्प्रदाय विशेष का राज्य स्थापित करने का नारा लगाने वालों को भी यह कहना पड़ता है कि उनके शासन में किसी के धर्म पर प्रहार न होगा; सब धर्मों के प्रति शासन की एक समान नीति होगी। इस घोषणा के बाद वे न जाने किस मुँह से फिर भी धर्म-निरपेक्षता का विरोध कर देश और समाज में विघटन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार आज देश भर में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में बेसुरे राग प्रकट किए जा रहे हैं। हिन्दू सम्प्रदायवादियों की प्रतिक्रियाएँ अल्पमत वालों पर पड़े बिना नहीं रहीं। सिख, अछूत, और मुसलमान सभी सिर उठाने लगे हैं।

इन सब दलों का कोई राजनीतिक ध्येय नहीं है। उनके साम्प्रदायिक कारनामे होने पर भी वे अपने को राष्ट्रवादी कहते हैं। अतएव चाहे हिन्दू महासभा हो, जनसंघ हो, अकाली दल हो, शेड्यूलकास्ट फेडरेशन हो, परिगणित जाति संघ हो, या सामंतों के गणतंत्र या प्रजा दल हों अथवा मुसलिम लीग हो,—ये सब संगठन स्वतंत्र भारत को कहां ले जाएँगे। यदि कदाचित रियासतों का विलीनीकरण न हुआ होता, तो सम्प्रदायवादी संस्थाएं और प्रतिक्रियावादी संगठनों ने सारे राष्ट्र को

स्वतंत्रता को अब तक नष्ट कर दिया होता। आज भी ये सब शक्तियां देश के दुश्मनों के हाथ में खेल रही हैं। उनके कारनामे हिन्दुओं को निर्बल बनाते है और इस देश की नींव कमज़ोर करते हैं। कई प्रदेशों में साम्प्रदायिकता तथा सामंतशाही का प्रबल बोलबाला है। राजस्थान, मध्यभारत, पंजाब, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में ये तत्व जड़ पा गए हैं। यदि इन शक्तियों को बढ़ने दिया गया तो क्या ये प्रदेश कभी एक पंक्ति में खड़े हो सकेंगे। वे सारे राष्ट्र की स्वतंत्रता को एक दिन ले बैठेंगे।

एक ओर एशिया के जाग्रत राष्ट्र आज हमारी ओर दृष्टि किए हुए हैं। वे यह देखने के लिए आतुर हैं कि हमारा देश कब खड़ा होकर इस महाखंड का नेतृत्व करने के लिए आगे आएगा। वे यह कामना भी करते हैं कि हम ने जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, उसे हम बलशाली बनाएं। उनकी यह भी निगाह है कि हमारी स्वतन्त्रता पर भीतर-बाहर कहीं से आंच तो नहीं आ रही है। वे यह महसूस करते हैं कि यदि कहीं आंतरिक शक्तियों के विघटन से राष्ट्र निर्बल हो गया, उस का एक सूत्र में बलशाली संगठन न हुआ, उसकी एक आवाज़ और एक विचार धारा न हुई तथा एक-साथ आगे कदम न बढ़ा, तो यह देश स्वतंत्रता प्राप्त करने पर पंगुवत बना रहेगा। उसकी यह स्थिति राष्ट्र के लिए विघातक होगी। राष्ट्र की आंतरिक निर्बलताएं ही बाहरी शत्रुओं को आक्रमण करने का अवसर देती हैं। इसलिए यह कहना पड़ेगा कि हमारा देश आज एक ऐसे चौमुहाने पर खड़ा हुआ है, जिसकी ओर सर्वनाश की लपटें उठ रही हैं; आग सुलग रही है।

राष्ट्र के स्वस्थ जीवन में राजनीतिक ध्येयों से संगठित दलों का निर्माण होना ही वांछनीय है। पर इनमें भी उनका संगठन विघातक है, जो विदेशी शक्तियों के एजेण्ट हों और जिनका लक्ष्य हिंसात्मक राजनीति हो। पर फिर भी देश में कई ऐसे प्रमुख राजनीतिक दल हैं। उन में से कइयों का देशव्यापी संगठन है। किसान और मजदूरों की भी प्रादेशिक और अखिल भारतीय संस्थाएं हैं। इनके अतिरिक्त वे राजनीतिक दल हैं,

जिनका कोई देशव्यापी संगठन नहीं है। पर कहना होगा कि संसार के किसी भी देश में इतने राजनीतिक दलों की बाढ़ नहीं आई। यदि यह मान लिया जाए कि इन सब दलों का ध्येय राष्ट्रसेवा है और कोई तीव्र मतभेद नहीं है तो कोई कारण नहीं दीखता कि वे सब क्यों न एक हो जाएँ।

लोकतंत्र के विकास में भले ही राजनीतिक दलों की आवश्यकता अनिवार्य प्रकट हो, किंतु, भारत के वायुमण्डल में एक से दो दल का होना भी वांछनीय नहीं है। जो देश सौ दो सौ वर्षों के उपरांत अत्यन्त निर्बल अवस्था में स्वतंत्र हुआ हो और जिसके सामने सहस्रों समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हों, तथा जिसके प्राङ्गण में फूट और अनकता का बाज़ार गर्म हो, वहां तो केवल एक शक्तिशाली दल की आवश्यकता है। उसी के नेतृत्व में उसकी स्वतंत्रता की रक्षा होना संभव है। अन्यथा विभिन्न दलों के संघर्ष में देश सब संकटों के बीच में खड़ा रहेगा।

प्रमुख राजनीतिक दलों की दृष्टि से राष्ट्र के जीवन में आज भी कांग्रेस एक प्रमुख संस्था है। पिछले पचास वर्षों से उसका देशव्यापी विशाल संगठन है। भारत के प्रत्येक ग्राम, तहसील, ज़िला और नगर तथा प्रदेश में कांग्रेस के संगठन हैं। संसार के किसी भी देश में किसी राजनीतिक संस्था का कांग्रेस के समान प्रभावशाली और व्यापक संगठन नहीं है। इसी संस्था के नेतृत्व में राष्ट्र ने स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा। इस प्रकार उसके पीछे कई राजनीतिक पीढ़ियों का बलिदान और त्याग का इतिहास है। पर स्वतंत्रता के उपरांत इस संस्था का सारे राष्ट्र के प्रतिनिधित्व का रूप अधिकांश में नहीं रहा, यद्यपि उसका ध्येय तथा कार्य-पद्धति सारे देश को साथ में ले चलने की है, सब वर्गों के प्रतिनिधित्व करने की है। पर आज किसी एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने से उसका नेतृत्व संदिग्ध हो गया है। नई स्थिति में सभी वर्ग तथा जमातों का प्रतिनिधित्व करना एक विचित्र सी बात है। इस दृष्टि से जहां कांग्रेस में मध्यवर्ग का प्रभुत्व है, वहां मजदूर और किसान वर्ग का भी है। कांग्रेस में इन

सब का अस्तित्व तो समझने की चीज है, किंतु उसमें धनी समाज को शामिल करना एक खिचड़ी दल तैयार करना है । इस स्थिति में सुदृढ़ राजनीति का निर्माण नहीं होता है । इससे उसका अजीब ढांचा बन गया है । अब अंग्रेजों से लड़ने का समय नहीं है कि देश के सभी वर्ग एक लक्ष्य में आगे बढ़ें ।

पर आज तो सामाजिक निर्माण की अवस्था है । ऐसी स्थिति में कांग्रेस का प्रबल क्रांतिकारी कार्यक्रम होना चाहिए । मगर एक ओर कांग्रेस अपना क्रान्तिकारी संगठन न कर सकी, तो दूसरी ओर उसके सदस्यों का सार्वजनिक जीवन गिर गया । सत्ता ग्रहण करने पर कांग्रेस के कल पुर्जों में पुरानी सेवाओं का सौदा शुरू हुआ । कार्यकर्त्ताओं की राजनीतिक सेवाएं राजनीतिक बाजार में मौल तौल की प्रतीक बनीं । पर यदि कांग्रेसजन इस स्थिति में ऊपर उठकर देश की सेवा में रत रहते तो उनका नेतृत्व देश के लिए वरदान होता । आज कांग्रेस के सेवक ही कांग्रेस की शक्ति क्षीण करने के साधन बने । सत्ताधारी राजनीतिक दल का यह पतन देख कर केन्द्र और राज्यों की शासन व्यवस्था ढीली पड़ गई । यही कारण है देश के शासन और सार्वजनिक जीवन में घोर भ्रष्टाचार फैला । इस प्रकार हमारी स्वतंत्रता अभिशाप और कलंक का पात्र बन गई ।

पर कांग्रेस इन सब परिस्थितियों में भी देश में एक जीवित संस्था बनी हुई है । उसके नेतृत्व की बागडोर जिस नर पुंगव के हाथ में है, उसने ही उसे जीवित बनाए रखा है । पण्डित जवाहरलाल नेहरू का प्रभाव सारे देश में असर रखता है । सारा राष्ट्र उनका लोहा मानता है । राष्ट्र के अगले पांच वर्ष उनके हाथ में बंधक हैं । कांग्रेस की नौका की पतवार उनके हाथ में है । सारे राष्ट्र ने एक बार फिर इस महापुरुष के प्रति अपना अटल विश्वास प्रकट किया है । उनके गर्वीले नेतृत्व ने देश की स्वतंत्रता को कायम रखा है और वे अपनी अद्भुत शक्ति के द्वारा राष्ट्र के नव निर्माण में अग्रसर हैं ।

कांग्रेस ने राष्ट्र को अभिवचन दिया है कि वह अगले पांच वर्षों में राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं को हल करने में आगे बढ़ेगी। अपनी पंच-वर्षीय योजना द्वारा उसका लक्ष्य भोजन, वस्त्र, बेकारी और मकान की समस्याएँ हल करना है। पर सोवियट रूस ने जिस प्रकार अपनी पंच-वर्षीय योजना द्वारा रूस की काया पलट की थी, भारतीय पंचवर्षीय योजना उस दृष्टि से सर्वथा अधूरा कदम है, एक ढीलाढाला प्रयत्न है। उसमें समाज के नव-निर्माण की कोई बात नहीं है। वह तो कांग्रेस के परंपरा की प्रतीक है, जिसमें सभी दलों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व है। पर आज तो यह आवश्यकता है कि पीड़ित समाज को नवजीवन प्राप्त हो। समाज की आर्थिक विषमता का मूलोच्छेदन हो। पर कांग्रेस इस ओर जरा अग्रसर नहीं है।

भारत की सब से ज़बर्दस्त समस्या ग्रामों की है। भारत और एशिया में किसान राजनीतिक परिवर्तन का एक प्रधान अंग बन गया है। कांग्रेस ने ज़मींदारी और जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन कर किसी अंश तक क्रान्तिकारी कदम बढ़ाया है, यद्यपि वह बहुत लचीला और ढीला है। पर इसके साथ ही कांग्रेस का यह कर्त्तव्य है कि वह किसानों के अधिकारों की रक्षा करने में आगे बढ़े। समस्त किसान तथा खेतिहर मज़दूरों को काम में लगाए, नए सिरे से लगान की दर कायम करे। हमारी राष्ट्रीय मितव्ययता को मज़बूत आधार पर रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि कृषि-उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हो। खाद्यान्न की दृष्टि से राष्ट्र का स्वावलम्बी होना अत्यन्त आवश्यक है। किसानों को अग्रसर करने के लिए कृषि का विकास सहकारी-प्रथा के आधार पर किया जाए। भारत का प्रत्येक ग्राम सहकारी-कृषिव्यवस्था के अन्तर्गत आगे बढ़े।

उद्योग धंधों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति है कि राष्ट्र के बुनियादी आधारभूत धंधे राज्य के अधिकार या नियंत्रण में रहें। कांग्रेस अपने इस लक्ष्य से मुड़ी नहीं है, किंतु यह बात दूसरी है कि इस दिशा में उसका कदम न बढ़ा हो। पर इसके साथ ही उसने निजी धंधों की प्रगति के लिए

भी विस्तृत क्षेत्र खुला छोड़ा है। इस प्रकार कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्र का विकास विभिन्न तत्वों की प्रगतियों पर कायम है। यदि सारा राष्ट्र उपलब्ध साधनों का सच्चा उपयोग कर सका, तो वह अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँचेगा।

मजदूरों के सम्बन्ध में जो कानून बने हैं, उनसे उनके अधिकार और हितों की सुरक्षा हुई है। किंतु फिर भी उनकी अनेक सामाजिक समस्याएं गम्भीर रूप धारण कर रही हैं। मज़दूरों के लिए मकानों का प्रश्न बड़ा पेचीदा है। मकान केवल मिल मज़दूरों के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य सभी मजदूरों के लिए भी आवश्यक हैं। मकानों के निर्माण की समस्या उद्योगपति, स्वायत्त संस्थाएं और राज्य सरकारें सम्मिलित सहयोग से हल कर सकती हैं। उद्योग धंधों के संचालन में उद्योगपति और मज़दूरों का सम्मिलित नियंत्रण अपेक्षणीय है। इसके सिवाय मज़दूरों के मामले सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के आधार पर न्यूनतम व्यवस्था में जल्द से जल्द हल किए जाएं।

भारत के राज्य शासन का लक्ष्य सहकारी प्रणाली के आधार पर लोक-कल्याणकारी राष्ट्र के निर्माण का है। राज्य अपनी नई निर्माण-कारी योजनाओं द्वारा नगर और ग्रामों के जीवन में, आज जो असमानता विद्यमान है, उसे दूर करे। सिंचाई, विद्युत और कृषि-विकास सम्बन्धी योजनाओं द्वारा भारतीय ग्रामों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। सम्प्रति निश्चित आय वाले नीचे और ऊपर के तबकों के बीच में जो खाई है, उसे भी मिटाने के लिए पिछड़े हुए वर्ग का जीवन-स्तर उच्च किया जाए। राष्ट्र में आर्थिक समानता उत्पन्न करने के लिए सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं द्वारा सार्वजनिक धन का उपयोग किया जाए। इस दृष्टि से धनी एवं सम्पन्न वर्ग पर सम्पत्ति कर लगाना भी आवश्यक है। इससे महलों और झोपड़ियों की असमानता मिटेगी। ऐसे सभी उपाय शीघ्रतम उपयोग में लाए जाएँ, जिससे न्यूनतम और अधिकतम आयवालों के बीच में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम हो सके।

पिछले वर्षों में समाज में अधिक असमानता बढ़ी। चोरबाजारी, कर न अदा करने, विशेष प्रकार के सट्टे-फाटके और अन्य समाज-विरोधी कार्यों से अनेक लोगों ने बेहद अनुचित लाभ उठाया। उन्होंने भारी पूंजी का संचय किया। इससे भिन्न भिन्न वर्गों में भारी असमानता आ गई। अतएव सामाजिक न्याय की दृष्टि से पीड़ित और निम्न अवस्था के लोगों की रक्षा के लिए और समाज से इन अभिशापों के विनाश के लिए कठोरतम उपायों का अवलम्बन किया जाए।

महात्मा गांधी ने जिस दलित वर्ग के उद्धार का जीवन व्रत लिया था, केन्द्रीय और राज्य सरकारों का कर्तव्य है कि वे इस दिशा में अधिक प्रयत्नशील हों। दलित वर्ग और पिछड़ी हुई जातियों की सांस्कृतिक प्रगति के सम्बन्ध में भारतीय संविधान में जो लक्ष्य प्रकट किए गए हैं, उन्हें ऐसा क्रियात्मक रूप दिया जाए, जिससे देश में दलित वर्ग अतीत-काल की बात हो जाए। शिक्षा और सामाजिक सुधारों द्वारा दलितों की अवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकता है।

भारत की वैदेशिक नीति तटस्थ हो या स्वतंत्र, अथवा यह देश शक्तिशाली हो या निर्बल, पर हमारा यह लक्ष्य होना चाहिए कि हम किसी अन्याय के आगे सिर न झुकाएँ। यह माना कि भारत की किसी राष्ट्र से शत्रुता नहीं है, किंतु वर्तमान संघर्ष में उसका तटस्थ रहना संभव नहीं है। यह कहना कि भारत विभिन्न राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त करने पर भी किसी दल का अंगीभूत बन कर न रहेगा, यह तथ्य व्यावहारिक नहीं है। नैतिकता सहायता देने वाले राष्ट्र के आगे झुका ही करती है। हम भले ही किसी गुट या ब्लाक में शामिल न हों, किंतु हमारा वैदेशिक सम्बन्ध देश के हित की दृष्टि से होना चाहिए।

कांग्रेस ने अगले पांच वर्षों के लिए जो संयोजित कार्यक्रम निश्चित किया है, उसी में उसकी परीक्षा है। इस यत्न में यदि कांग्रेस का सूर्य धूमिल पड़ गया, तो निश्चय ही देश की बागडोर विध्वंसकारी लोगों के हाथ में चली जाएगी। आने वाली परिस्थितियां इतनी तेज़ हैं कि,

अब किसी भुलावे से काम न चलेगा। यदि सरकारी योजनाएं पवित्र आकांक्षाएं मात्र बनी रहीं, तो देश का भविष्य अंधकारमय है। आज कांग्रेस का नेतृत्व परीक्षा-स्थल पर खड़ा हुआ है। विजय या हार—केवल दो बातें—सामने हैं। विजय है, तो निश्चय ही उसमें राष्ट्र का मंगल है, अन्यथा नई शक्तियां आगे बढ़ने से न रुकेंगी।

कांग्रेस के बाद दो अन्य प्रमुख दल हैं। वे हैं:—समाजवादी दल—सोशलिस्ट पार्टी और तीसरा साम्यवादी दल। समाजवादी दल में पिछले समय कांग्रेस से निकले हुए आचार्य कृपलानी की किसान मजदूर प्रजापार्टी के लोग मिल गए हैं। दोनों ही संस्थाएं एक दूसरे में विलीन हो गई हैं। अब इस संस्था का नाम प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी—अर्थात् प्रजा समाजवादी दल घोषित हुआ है। कई छोटी छोटी वामपक्षी संस्थाएं भी आपस में मिलकर कोई नया दल खड़ा करना चाहती हैं। समाजवादी दल का कांग्रस से पृथक् होना अवांछनीय स्थिति का द्योतक है। कांग्रस भी सोशलिज्म को मानती है। इसके सिवाय दोनों दल गांधीवाद के नतृत्व से भी प्रभावित है। तब इन दोनों का विलग रहना देश की बदकिस्मती है।

समाजवादी पार्टी के नेता जयप्रकाश नारायण गांधीवाद और सर्वोदय सिद्धान्त के समर्थक हैं। अनेक समाजवादियों ने सर्वोदय को समाजवाद का प्रतिरूप माना है। भारत के समाजवादी नेता मार्क्सवाद के अनुयायी होने पर भी हिंसात्मक कार्य पद्धति और डिक्टेटरशिप के समर्थक नहीं हैं। वे पूर्णत: लोकतंत्र के पक्षपाती हैं।

पर आज दुर्भाग्यवश समाजवादी दल नेतृवृंद कांग्रेस और कांग्रेसी शासन का उग्र आलोचक हो गया है। पर भारतीय राजनीतिक परम्परा में ये सब कार्य अशोचनीय एवं निंदनीय हैं। हमारा विरोध उदात्त स्तर पर होना चाहिए। पश्चिमीय प्रथाओं में यह सब भले ही सह्य हो, किंतु हमारी राजनीति इन दुर्गुणों से विषाक्त न होने पाए। हम कार्य प्रणालियों की भले ही आलोचना करें, किंतु व्यक्तिगत कीचड़ उछाल तथा हिंसात्मक

प्रवृत्तियों का प्रयोग भारतीय जीवन के सर्वथा विपरीत है। इस दृष्टि से समाजवादी तो तीव्र आलोचक ही हैं; किंतु साम्यवादी दल जिह्वा और हाथबाजी दोनों में आगे है। अतः देश के वर्तमान वातावरण में सभी राजनीतिक दल आपस में टूट पड़ें तो राष्ट्र का किला ही ढह जाएगा। समाजवादी कांग्रेस को ध्वंस रूप में देखना चाहते हैं। उनकी चेष्टा है कि कांग्रेस और कांग्रेसी शासन समाप्त हो जाए। इस राजनीतिक विघटन में राष्ट्र का निर्माण कार्यों की ओर बढ़ना कैसे संभव है।

समाजवादी और कांग्रेसी दोनों ही पंचायती शासन चाहते हैं। पर समाजवादी तथा साम्यवादी दल अपने शासन में किसान और मज़दूरों के सिवाय अन्य वर्गों की सुरक्षा और न्याय प्राप्त होने का ख़याल न करे, कांग्रेस यह नहीं चाहती। उसके शासन में कानून की व्यवस्था में सब तत्त्वों को न्याय पाने का समान अधिकार प्राप्त है। समाजवादी और साम्यवादी वर्ग ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन ज़मींदारों को बिना मुआवज़ा दिए करना चाहते हैं, किंतु कांग्रेस गांधीवाद की परम्परा के आधार पर मुआवज़ा देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। मुआवज़ा देकर ज़मीन का प्रश्न हल करना शांतिमय तरीका है। सम्प्रति ज़मींदारी उन्मूलन प्रायः सभी प्रदेशों में हो गया है। हम देखते हैं कि लाल चीन में भी उत्तर-प्रदेश की व्यवस्था से आगे बढ़कर ज़मींदारी उन्मूलन नहीं हुआ। पर यदि समाजवादी और कांग्रेसी एक साथ आगे बढ़ें तो यह संभव है कि ज़मीन की समस्या वास्तविक रूप में हल हो; अभी भी एक ओर बड़े तबकों के अधिकार में काफ़ी अधिक ज़मीन है, सैकड़ों व्यक्तियों के पास बड़े-बड़े फार्म हैं, तो दूसरी ओर हज़ारों और लाखों खेतिहर-मजदूर बिना ज़मीन के हैं। जमींदारी उन्मूलन अधूरा प्रयत्न है, जब तक कि नए सिरे से ज़मीन का समान स्तर पर वितरण न हो, और लगान नए आधार पर न लगाया जाए। मध्य-वर्ग, निर्धन किसान और खेतिहर मजदूर अपनी निरीह अवस्था में जमीन पाने के लिए आतुर हैं। आचार्य विनोबा का प्रयत्न भी एक क्रांतिकारी-शांतिमय उपाय है। पर उससे समस्या

हल नहीं होती है। जिन लोगों के पास बड़ी बड़ी ज़मीनें हैं, उन्होंने भू-दान यज्ञ में एक इंच भी नहीं दी।

किसानों में आर्थिक समानता कायम होनी चाहिए। उनके प्रति सामाजिक न्याय होने पर ही भारत की महान् राजनीतिक समस्याएं हल होती हैं। आर्थिक दृष्टि से एक किसान के लिए औसतन जितनी ज़मीन आवश्यक है, उससे तीन गुना अधिक किसी किसान के पास न हो। इस व्यवस्था द्वारा किसान ज़मीन के मालिक होंगे। ज़मीन की उत्पादन शक्ति की वृद्धि के लिए सहकारी आन्दोलन को अग्रसर किया जाए। राज्य जिस ज़मीन को प्राप्त करे, उसमें संयुक्त-कृषि व्यवस्था जारी हो। ग्रामों की संगठित कृषि-अर्थ-व्यवस्था में पंचायतों का प्रमुख स्थान होना चाहिए। ये पंचायतें ही उपज की योजनाएं तैयार करेंगी और उनके संचालन में ही ग्राम विविध निर्माण कार्यों में सहकारी-आधार पर अग्रसर होंगे।

उद्योगधंधों के विकास में उत्पादन शक्ति की वृद्धि के लिए बड़े पैमाने पर आयोजन तथा संगठन होने चाहिएं। मैनेजिंग एजेंसी प्रथा सर्वथा मिटा दी जाए। उद्योगों का संचालन सर्वथा नवीन स्तर पर किया जाए। उद्योगधंधों की व्यवस्था टेक्नीशियन, वैज्ञानिक, श्रमजीवी वर्ग और छोटे दर्जे के औद्योगिक कर्मी सब के सम्मिलित प्रयत्नों से किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से राष्ट्र के उद्योगों को तीन विभागों में बांटा जा सकता है :—

क—राज्य द्वारा संचालित धंधे।

ख—मध्य दर्जे के धंधे—निजी पूंजी के संगठनों द्वारा।

ग—छोटे धंधे—सहकारी संगठनों द्वारा।

इसके अतिरिक्त सभी आर्थिक संगठन, बैंक बीमा कम्पनियां और नए औद्योगिक संगठन—लोहा-इस्पात, विद्युत और भारी रासायनिक धंधे तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के पदार्थ उत्पादन करने वाले धंधे—वस्त्र, चीनी, सीमेण्ट, खनिज और चाय आदि राज्य द्वारा

संचालित होने चाहिएँ। राज्य के अधिकार में इन धंधों के आने पर ही राष्ट्र की आर्थिक योजना सफल होगी और देश में नवीन आर्थिक युग का उदय होगा। इन परिवर्तनों के द्वारा मज़दूरवर्ग आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने में समर्थ होगा। तब मज़दूरों के रुख़ में उत्पादन वृद्धि के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन होगा। वे स्वयं अधिक से अधिक उत्पादन के बढ़ाने के लिए आगे आएंगे।

सभी नियंत्रणों की व्यवस्था में उपभोक्ताओं का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। घूसखोरी, भ्रष्टाचार, चोरबाज़ारी और अनुचित मुनाफ़े की प्रवृत्तियों ने राष्ट्र के जीवन को पतित कर दिया है। ये दुर्गुण देशभर में छा गए हैं। कौन व्यक्ति इन से अछूता बचा है, यह नहीं कहा जा सकता। छोटे दुकानदार से लेकर बड़े व्यापारियों तक में एक समान भ्रष्टाचार के तत्व पैदा हो गए हैं। इस अवस्था से देश का सार्वजनिक जीवन तथा शासन भी नहीं बचा है। इन रोगों ने राष्ट्र की नैतिकता को ग्रस लिया है। अतः राष्ट्र के अनैतिक जीवन का अंत करने के लिए कठोर शासन की आवश्यकता है। राज्यशासन में भी सहकारी अधिकारियों पर सख्त नियंत्रण की आवश्यकता है।

नरेशों के राजप्रमुख पद, विशेषाधिकार और पेंशनों का अंत कर दिया जाए। राष्ट्र की आय का स्तर समान आधार पर होना चाहिए। आय कर और सम्पत्ति कर राष्ट्र के आर्थिक जीवन में समानता उत्पन्न करते हैं। साम्पत्तिक अधिकारों में समानता लाने के लिए पूंजीगत कर उन सब धनियों पर लगना चाहिए, जिनकी सम्पत्ति पाँच लाख रुपए से अधिक हो। इससे एक झटके से जिनके पास सम्पत्ति और धन का अम्बार है, और जो विशेष प्रभुत्व रखते हैं—वह सब विलीन हो जाएगा। यह विभेद मिटने पर ही भारतीय समाज का नवनिर्माण होगा।

जाति प्रथा ने भारतीय समाज को जीर्ण शीर्ण कर दिया है। ऐसे लोगों के दल हैं, जो परम्परागत अधिकारों का उपयोग करते हैं, और ऐसी जातियाँ जो जन्मजात होने के कारण समाज में प्रभुत्व रखती हैं,

और वे बदकिस्मत निम्न जातियां हैं जो दबाई जाती हैं, जिनके प्रति घृणा और तिरस्कार प्रकट किया जाता है, और जिन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। जातिभेद मिटाने के लिए जातीय सम्बन्धों में प्रांत-भेदों को मिटा देना चाहिए। विवाह सम्बन्ध में जातीय, प्रांतीय और आर्थिक भेदभावों को कतई स्थान न दिया जाए। सब हिन्दू एक हैं, चाहे वह बंगाल या मद्रास में रहें, या पंजाब में। जातीय सम्बन्ध में पंजाब, बंगाल और मद्रास तथा उत्तर प्रदेश के ब्राह्मण में कोई भेदभाव न हो। यह विभेद मिटने पर ही प्रादेशिक भावनाओं का अंत होगा और तब एक सबल राष्ट्र का निर्माण होगा। स्वतंत्रता का अर्थ है कि हम परम्परागत संकीर्ण बंधनों को मिटा दें। समाज में हर एक व्यक्ति को बुद्धि-विकास का समान अवसर मिलना चाहिए। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों के समान अधिकार हैं। इस युग में स्त्रियों को समान अधिकार देते समय धर्म और संस्कृति के डूबने की कल्पनाएं करना और विरोधी आवाज़ उठाना हास्यास्पद है। हमें इस स्थिति का समूल नाश करना होगा। यह स्मरण रहे कि सामाजिक जीवन में नव परिवर्तन हुए बिना राष्ट्र में आर्थिक समानता उत्पन्न न होगी। धार्मिक और सामाजिक प्रभुत्व ने समाज को खोखला कर दिया है। अतः समाज का नवनिर्माण होने पर कोटि कोटि लोगों को नई प्रेरणाएँ प्राप्त होंगी।

पर यह सब निर्माण कब संभव है, जबकि देश के राजनीतिक दल रचनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हों। राज्य शासन में चाहे जिस दल का अधिकार हो, किंतु अन्य सब दलों का यह कर्तव्य है कि ये अपने लक्ष्य और सिद्धान्तों के आधार पर आर्थिक और सामाजिक कार्यों में जुट पड़ें।

कांग्रेस, समाजवादी और साम्यवादी—सभी का कर्तव्य है कि वे ईमानदारी से देश के नवनिर्माण में आगे बढ़ें। राष्ट्र की नवरचना में भारतीय आदर्श और परम्परा का खयाल रखा जाए। पर इस दिशा में साम्यवादियों का चक्र सदा विपरीत दिशा में घूमता है। उन्हें विदेशों से

भरपूर आर्थिक सहायता प्राप्त होती है । पिछले निर्वाचन में समाजवादियों की अपेक्षा साम्यवादियों ने हजारों और लाखों रुपए व्यय कर सफलता प्राप्त की । उन्हें रूस, लालचीन और पूर्वी योरप के देशों से प्रतिवर्ष हज़ारों और लाखों रुपए की आर्थिक सहायता और प्रचार-सामग्री प्राप्त होती है । अपार साम्यवादी साहित्य लोकमत परिवर्तन के लिए देश भर में फैला दिया गया है । वह मध्यवर्ग के शिक्षित युवकों को अपनी ओर आसानी से खींचता है ।

आज जब देश पीड़ित है, क्षुधा, नग्नता और बेकारी से त्राहि त्राहि मची हुई है, तब उन प्रयत्नों की आवश्यकता है, जिससे राष्ट्र वर्तमान संकट से बाहर निकले ।

कांग्रेस नवनिर्माण की दिशा में हाथी की चाल चल रही है । उसकी विशाल योजनाएं हैं, जो वर्षों में पूरी होंगी । करोड़ों रुपए की नदी-घाटी योजनाएं दीर्घकालीन प्रयत्न हैं। उनसे भूख से तड़पते हुए देश की समस्याएं तत्काल हल नहीं होती हैं । कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह चीन का अनुकरण करे । उसने अपनी कृषि समस्या के हल के लिए किसी विदेशी राष्ट्र से ऋण नहीं लिया । चीन सरकार ने हरएक किसान को थोड़ी-थोड़ी जमीन बांट दी और खेतों के पास में ही किसानों ने स्वयं ही छोटे-छोटे कुएं सिंचाई के लिए खोद लिए । इन साधारण प्रयत्नों द्वारा पचास करोड़ चीनी कृषक जनता खेती में जुट पड़ी और खाद्यान्न तथा कच्चे माल का जो भारी उत्पादन कर दिखाया, उसे देखकर संसार चकित हो गया । यदि कांग्रेस भी इस आधार पर ग्रामों में जुट पड़ती तो आज यह देश भी चीन के समान खाद्य और कच्चे माल के उत्पादन पर आत्मनिर्भर हो गया होता ।

आज देश में जो आग लगी है, उस दिशा में साम्यवादी कार्यक्रम किसान, मजदूर और मध्यवर्ग के लिए अधिक प्रेरणात्मक है । वे किसानों का ऋण खत्म कर देना चाहते हैं । वे बिना किसी मुआवज़े के लाखों और करोड़ों खेतिहर मजदूरों को जमीन का मालिक बनाने के

लिए तत्पर है। उनकी व्यवस्था में खेतिहर मजदूरों को जमीन की कोई कीमत नहीं देनी पड़ेगी। वह दल निर्धन जमींदार और किसान की सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी लेगा। इसके सिवाय साम्यवादी शासन में जहाजरानी, खानें, चाय के खेत और अन्य सब उद्योग जो विदेशियों द्वारा संचालित हो रहे है, लालचीन के समान जब्त कर लिए जाएंगे। इसके सिवाय वे राष्ट्रीयकरण द्वारा वर्तमान प्रमुख धंधों पर राज्य का अधिकार कायम करेंगे। शेष निजी धंधों को उचित मुनाफा लेने दिया जाएगा। अन्यथा सभी राज्य के अधिकार में आ जाएंगे। राज्य के व्यय से सामाजिक बीमा योजनाएं किसान और मजदूरों के लिए जारी होंगी। व्यापारिक लाभ पर राज्य का कठोर नियंत्रण रहेगा और देश में उत्पादन तथा वितरण के लिए संयुक्त-संगठनों को प्रश्रय दिया जाएगा।

इन सब कार्यों को साधारण जनता के समक्ष प्रकट कर साम्यवादी वर्ग देश में एक नवीन स्थिति पैदा कर रहा है। जनता में लोकतन्त्र के भावों को देखकर भारतीय साम्यवादी 'जनता के लोकतंत्र' की आवाज़ प्रकट कर आगे बढ़ रहे है। यद्यपि वे भारतीय संसद और राज्यों की विधान सभाओं में प्रवेश पा गए है, किंतु वस्तुतः उनके कार्यों में कोई अंतर नहीं पड़ा है। उनकी शांति के नीचे विघटन, तोड़ फोड़, हिंसा और विध्वंस सब कुछ संभव है। शस्त्र और धन का उनके पास अभाव नहीं है। साम्यवादियों के आगे बढ़ने के अपने तरीके है। उनकी शांति और उनके विविध कार्य भयानक विस्फोट का रूप धारण किए बिना न रहेंगे।

अतः साम्यवादियों की प्रगति देश की लोकतंत्र स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी। राष्ट्र को पथभ्रष्ट करने के लक्ष्य से ही उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में 'जनता का लोकतंत्र' नया मंत्र गढ़ा है।

इसके सिवाय प्रादेशिक और साम्प्रदायिक तथा भाषा आदि के आन्दोलन हैं, जिनके द्वारा भी राष्ट्रीय एकता पर तुषार पड़ रहा है। इन सब तत्वों को मिटाना ही, आज की गम्भीर समस्या है।

आज सारा राष्ट्र चिंतित है कि वह किस दल का नेतृत्व ग्रहण करे।

अभी तक देश में कहीं भी स्वस्थ राजनीतिक वातावरण उत्पन्न नहीं हुआ है। राजनीतिक दलों की बाढ़ में यह भी संभव नहीं है। इस लिए देश में अशांत और अराजकता चारों ओर से फैल रही है।

विदेशी सहायता क्या देश में शांति स्थापन करने में समर्थ होगी। विदेशियों के सहारे हम इस घर की आग को न बुझा पाएंगे। इस आग का बुझाना बाहरी शक्तियों का काम नहीं है। वह तो हमारे ही संगठित प्रयत्नों से बुझ सकती हैं। यदि हम दलबंदियां मिटा कर संगठित रूप में राष्ट्र का नवनिर्माण करने में आगे बढ़ें, तो हम सब कुछ कर सकेंगे। आज तो करोड़ों जन अशांति की आग से सुलग रहे हैं, झुलस रहे हैं और तड़प रहे हैं। हमारी नव-स्वतंत्रता हमारे लिए कैसी दुखदाई बनकर आई। स्वतंत्रता की यह कैसी प्रतारणा है। कहीं हम अपने आंतरिक संघर्षों और आर्थिक संकटों के बीच नवअर्जित स्वतंत्रता को न खो बैठें।

पर हमारी स्वतंत्रता की रक्षा कैसे होगी ? यदि समय रहते राष्ट्र की समस्याएं हल न हुईं, तो क्या यह देश भी लाल चीन न बनेगा। जन-जन की आलोचना, राजनीतिक दलों के संघर्ष और विघटन तथा संहारकारी कार्यों से कब स्वतंत्रता पनप सकेगी। संसार के वे देश भाग्यवान हैं, जिन्होंने अभी-अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है। उन देशों की जनता अपने प्राणों की बलि देकर उसकी रक्षा में आगे बढ़ी है। उन सभी देशों के लोग आर्थिक निर्माण के कार्यों में प्राणपण से लगे हुए हैं। यह प्रकट है कि देश के बलशाली हुए बिना स्वतंत्रता नहीं टिकती है। राष्ट्र के समृद्ध होने पर ही लोकतंत्र शासन मजबूत होता है।

विदेशी शक्तियां हमें नष्ट करने के लिए आगे बढ़ रही हैं। अनक देशों के गुप्त दल इस देश में मौजूद हैं। पाकिस्तान के सीमावर्ती हमले निरंतर जारी हैं। इसके सिवाय उसके गुप्तचर सर्वत्र फैले हुए हैं। रूस के एजेण्ट—भारतीय कम्यूनिस्ट इस देश में जड़ जमा चुके हैं। वे इस ताक-झांक में हैं कि उन्हें ज़रा मौका मिले और वे हिंसात्मक कार्यों से देश में बग़ावत फैला दें, राज्य शासन का तख्त उलट दें। इन सब शक्तियों

को बल देने में वे सब कार्य भी सहायक होते हैं,——जो प्रादेशिकता, धार्मिकता और साम्प्रदायिकता का चोगा पहन कर आगे बढ़ते हैं। ऐसी अवस्था में क्या हम इन अवांछनीय तत्वों को समूल रूप से नष्ट करने में समर्थ होंगे ?

हम यह प्रयत्न करें कि हम मर मिटेंगे, किंतु जीवित रहते हुए देश की स्वतंत्रता नष्ट न होने देंगे। यह भी स्मरण रहे कि देश आगे बढ़ेगा तो संगठित रूप में, और यदि उस का पतन होगा तो समूचे देश का होगा।

अतएव, हम एक साथ आगे बढ़ें, एक लक्ष्य से बढ़ें, और कदम कदम साथ साथ बढ़ें।

२३

भारत में राष्ट्रीयकरण किसलिए ?

भारतीय उद्योग धंधे और व्यापार का संचालन प्रायः निजी पूंजी और व्यवस्था के अन्तर्गत संचालित हो रहा है। किंतु स्वतंत्रता के आन्दोलन के दिनों में कांग्रेस ने यह घोषित किया था कि उसकी अर्थ-नीति का आधारभूत लक्ष्य देश के प्रमुख और बुनियादी उद्योगधंधों को राष्ट्रीयकरण में परिणत करना है । इस सिलसिले में ही कांग्रेस ने उस विदेशी पूंजी के प्रति चिंता प्रकट की थी, जो इस देश के राष्ट्रीय उद्योगधंधों पर अधिकार जमाए हुए है। देश की निजी पूंजी में सर्वाधिक भाग विदेशी पूजी का है । अतएव विदेशी उद्योगपति भारत की राष्ट्रीय भावना और स्वदेशी की वृत्ति से आर्थिक लाभ उठाते हैं। पर देश के स्वतंत्र होने पर भी राष्ट्रीय सरकार ने अपनी बेहद निर्बलता प्रकट की। किसी खास उद्योग में नियत काल के लिए विदेशी पूंजी का लगना समझ में आ सकता है, किंतु जिन धंधों पर वर्षों से विदेशियों का आधिपत्य है, उसे आज भी बरकरार रखने का यही अर्थ है कि राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र भारत के आर्थिक स्रोत विदेशियों के लिए खुले पड़े हैं। सरकार स्टर्लिंग पावने की रक़म से मुआवज़ा देकर विदेशियों द्वारा संचालित उद्योगधंधों को अपने अधिकार में ले सकती थी। उसके इस कार्य का यह अर्थ नहीं माना जाए कि भविष्य में विदेशी पूंजी न लगे। बल्कि ऐसी स्थिति पैदा की जाती कि विदेशी उद्योगपति मुआवजे के धन से इस देश में नए उद्योग धंधे खोलते। पर सरकार ने स्टर्लिंग पावने के भय से इस दिशा में चूं तक नहीं की। सरकार ने जब तब राष्ट्रीयकरण का प्रश्न उठाया,

किंतु विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में उसने मौन सा धारण कर लिया। दूसरे देशों में विदेशी उद्योग धंधे और कारबार को बिना मुआवज़े दिए ज़ब्त कर लिया। चीन में क्या हुआ, अमेरिकन और अंग्रेज खदेड़ दिए गए और उनके व्यावसायिक संगठनों पर शासन ने अधिकार कर लिया। ईरान में भी अंग्रेज़ों के साथ यही बर्ताव हुआ। पर भारत अपनी स्थिति में यह नहीं कर सकता था तो उसके मुआवज़ा चुका कर विदेशियों द्वारा संचालित उद्योगधंधों के राष्ट्रीयकरण करने में कोई बेजा कार्रवाई नहीं थी। यदि आज भी यह न हो, तो देश की स्वतंत्रता का क्या अर्थ है। देशी पूंजी का राष्ट्रीयकरण कभी भी हो, क्योंकि उसका मुनाफ़ा अंततः देश में ही रहता है। पर विदेशी पूंजी तो देश का दोहन करती है। इस देश में नए धंधे विदेशी भले ही खोलें, पर जो पूंजी सौ-पचास वर्षों से लगी है, वह तो स्वतंत्र भारत में मिट जानी चाहिए।

देश की अर्थ-नीति के सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में सन् १९४७ में जो आर्थिक समिति कायम हुई थी, उसने राष्ट्र के जीवनोपयोगी और बुनियादी धंधों के शीघ्रतम राष्ट्रीयकरण करने पर पूरा जोर दिया था। इसके उपरांत सरकारी और ग़ैरसरकारी तौर पर राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में चर्चा हुई थी। एक बार तो यह प्रकट सा हुआ कि सरकार राष्ट्रीयकरण करने ही जा रही है। किंतु अंत में इन सब विचारों की पृष्ठ-भूमि में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९४८ में भारत सरकार की ओर से जो औद्योगिक नीति प्रकट की, उससे निजी पूंजी के उद्योग धंधों को दस वर्षों के लिए छूट दी गई। पर दीखता यह है कि इस ढंग से राष्ट्रीयकरण का प्रश्न लम्बा टाल दिया गया। उसकी अवधि बढ़ती ही चली जाएगी। कारण, अब सरकार का क़दम जिस मार्ग पर है, उससे तो वह राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर पश्चात्ताप करती हुई नज़र आती है। नए उद्योगधंधों की स्थापना के सम्बन्ध में विदेशी उद्योगपतियों से बीस-बीस वर्षों के समझौते होने पर यही कहा जाएगा कि क्रान्तिकारी परिस्थिति उपस्थित हुए बिना सम्प्रति राष्ट्रीयकरण

गए-गुज़रे ज़माने की बात हो गयी । इन नए पूंजीपतियों के आगमन से देश के पुराने भारतीय और अभारतीय उद्योगपतियों को राहत मिली। उन्होंने सुख से श्वांस ली । अब तो सरकार अपनी अनेक घोषणाओं द्वारा देशी और विदेशी पूंजीपतियों को विश्वास दिलाती है कि उसका इरादा राष्ट्रीयकरण का नहीं है। प्रत्युत् वह राष्ट्र के जीवन में निजी पूंजी के अधिकार और नियंत्रण को पूर्णतया स्वीकार करती है। इस प्रकार राष्ट्र के जीवन में व्यक्तिगत अधिकार ने स्थान प्राप्त कर लिया है।

देश के औद्योगिक विकास में निजी पूंजी ने कभी कोई साहसपूर्ण क़दम नहीं उठाया । एक साधारण आदमी मोदी की दूकान खोलकर तुरन्त आटा दाल और चावल बेचने लगता है, भारत के देशी और विदेशी पूंजीपतियों ने उन्हीं धंधों को स्थापित किया, जो राष्ट्र के लिए जीवनोपयोगी थे और स्थापना होते ही जिनसे आय होने लगी । उनका साहस उन धंधों की स्थापना की ओर नहीं बढ़ा, जिनसे दस पंद्रह वर्ष उपरांत लाभ मिलना आरम्भ होता । इसके अतिरिक्त विदेशी शासन में जो धंधे स्थापित हुए, उन्हें जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। कोटि कोटि लोगों के त्याग और बलिदान की भित्ति पर ही ये धंधे फूले-फले ।

देश के धंधों की रक्षा के लिए जनता ने विदेशी माल का बहिष्कार किया । परिणाम क्या हुआ । लोगों ने सस्ते और बढ़िया विदेशी माल का परित्याग कर देश का बना हुआ घटिया और महंगा माल खरीदा । किन्हीं धनियों ने नहीं, बल्कि देश की निर्धन जनता ने देश के इन धंधों के लिए त्याग किया, अपना रक्त दिया । स्वदेशी के व्रत से भारतीय उद्योगधंधों की नींव मजबूत हुई । उनके मालिकों ने लाखों और करोड़ों रुपए कमाए । उन्होंने दिन पर दिन बढ़ने वाली आय को बीसों धंधों में लगाया । इस प्रकार देश की पूंजी इन उद्योगपतियों के पास सिमट गई । वे अनेक धंधों के मालिक बन गए । पर उन्होंने कभी एक

क्षण के लिए भी देश की जनता के त्याग की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि जिस जनता के त्याग से उद्योग धंधों की उन्नति हुई, उसके प्रति भी उनका कुछ नैतिक कर्तव्य है। पर बजाए इसके उन्होंने स्वदेशी धंधों की रक्षा के नाम पर उल्टे अधिकाधिक सुविधाएं प्राप्त कीं। इन उद्योगों के विकास में उनका एकमात्र लक्ष्य लाभ उठाना रहा। उन्होंने जब कभी सस्ता माल बेचा तो वह उस समय जबकि उन पर विदेशी प्रतियोगिता की मार पड़ी।

अन्य देशों में कुछ वर्षों में ही धंधे अपने पैरों पर खड़े हो गए, किंतु इस देश में भारतीय उद्योगपतियों की शोषण नीति के कारण अनेक पीढ़ियां बीत जाने पर भी वे सहायता के मुहताज बने रहे। देश से बार बार उद्योग-धंधों की रक्षा की मांग की गई। सन् १९२० में जब देश को आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तब राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के सहयोग से अनेक धंधों को संरक्षण प्राप्त हुआ। लोहा-स्पात, वस्त्र, चीनी, कागज और दियासलाई के उद्योगधंधे राज्य की सहायता और संरक्षण में विकसित हुए। इस संरक्षण और सहायता का आर्थिक भार देश के करोड़ों कर-दाता और उपभोक्ताओं पर पड़ा। एक ओर संरक्षण करों के लगने से उन्होंने देश का महंगा माल खरीदा तो दूसरी ओर आर्थिक सहायता का भार उन पर नए करों के रूप में पड़ा।

भारतीय उद्योगधंधे पहले महायुद्ध के काल में विकसित हुए और दूसरे महायुद्ध ने उन्हें लाभ उठाने का अवसर दिया। विश्वव्यापी महायुद्ध के कारण सभी प्रकार के भारतीय उत्पादन की माँग बढ़ने पर घटिया से घटिया तैयार माल की विक्री से उद्योगधंधों को भारी लाभ हुआ। इस प्रकार पहले महायुद्ध में वस्त्र आदि के उपयोगी धंधे विकसित हुए, तो दूसरे महायुद्ध में छोटे-बड़े उद्योगों की प्रगति के सिवा बुनियादी उद्योगधंधों की भी नींव पड़ी। इसी का परिणाम है कि आज भारत पूर्व का प्रथम औद्योगिक देश बन गया है। युद्ध काल में और उसके बाद भी उत्पादन सम्बन्धी विश्वव्यापी संकटों ने भारतीय उद्योग-धंधों

को अधिक लाभ उठाने का अवसर दिया। विदेशी भुगतान की मुद्रा-सम्बन्धी अड़चनें और कच्चे माल की कमियों ने देश के उद्योग धंधों में कोई कमी नहीं होने दी।

इस पर्यवेक्षण से यह प्रकट है कि भारतीय उद्योगधंधों की उन्नति किन कारणों से हुई। युद्ध-जन्य परिस्थितियों के सिवाय जनता ने उनकी उन्नति के लिए कितना त्याग किया और आर्थिक कष्टों का भार सहा। पर इस सब के बावजूद यह कभी नहीं देखा गया कि भारतीय उद्योग-पतियों ने राष्ट्र के संकटों की ओर कभी भी ध्यान दिया। उन्होंने तो मदा मोल तौल की नीति व्यवहार में लाई। युद्ध-जन्य परिस्थिति और विदेशी आयात के अभाव में इस देश में जो नए धंधे खुले, उनमें से किन्हीं की पूँजी दो तीन वर्षों में ही पूरी वसूल हो गई। इस दृष्टि से नैतिकता के खयाल से उन धंधों पर पूंजीपतियों का कोई अधिकार नहीं रहा। पर आज के जमाने में नैतिकता का कहाँ स्थान है, कि धनीवर्ग कहता है कि अब ये धंधे राष्ट्र के हो गए हैं, हम मजदूर और राज्य की देखरेख में इन धंधों का संचालन करेंगे। पर देश का उद्योगपति वर्ग कभी स्वार्थ-त्याग के लिए आगे नहीं आ सकता है। महात्मा गाँधी की पवित्र इच्छाएँ उन्हीं तक बनी रहीं। उद्योगपतियों से उनके पूर्ण होने की क्या आशा की जा सकती है। कौनसा उद्योगपति होगा जो अपने उद्योग-धंधों को राष्ट्र की सम्पत्ति माने और अपने को केवल अमानतदार समझे।

इन उद्योगपतियों ने जनसाधारण की देशभक्ति और स्वदेशी की भावना से तो लाभ उठाया, किंतु उनमें स्वयं अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य की भावना जाग्रत नहीं हुई। उन्होंने कभी स्वप्न में भी यह खयाल नहीं किया कि वे भी अन्य देशों के समान भारतीय तैयार माल सस्ता बेचने के लिए आगे आएँ। जापान जो युद्ध से ध्वंस हो गया था, तो दो तीन वर्षों में ही उसके उद्योगपति अपने तैयार माल से संसार में मुकाबला करने लगे। किंतु भारतीय उद्योगपति विभक्त रूप में जहाँ-के-तहाँ खड़े हैं। यदि आज वे साधारण मुनाफ़े पर भी राष्ट्र के कल्याण के लिए उद्योग-

धंधों का संचालन करते तो उन्हें मजदूर, उपभोक्ता और सरकार तीनों का ही सहयोग प्राप्त होता। यह माना कि भारतीय उद्योगपतियों ने अनेक धंधों का निर्माण किया, किंतु इस क्षेत्र में वे लाभ उठाने की भावना से ही आगे आए। उनमें कभी औद्योगिक भावना प्रकट नहीं हुई। जब कभी उन्हें संकट महसूस हुआ और उन्हें लाभ में कमी दिखाई दी तो या तो उन्होंने राज्य से संरक्षण या बाउंटी के रूप में सहायता प्राप्त की अथवा उन्होंने उद्योग को खत्म कर दिया।

युद्धकाल में सरकार ने उनसे अनुरोध किया कि वे देश के लिए कार्य करें। उन्हें भी अपनी सेवाएँ राष्ट्र के प्रति अर्पित करनी चाहिएँ। किंतु उस समय उद्योगपतियों के एक प्रतिनिधि ने स्पष्ट ही तो कहा—'उनसे देशभक्ति की चर्चा न की जाए। उनका काम व्यापार का है और वह बिना लाभ के चल नहीं सकता। यदि सरकार इस दिशा में उन्हें सहयोग दे तो वे आगे बढ़ने के लिए तैयार हैं।'

दिल्ली में देश के सभी उद्योगपतियों की ओर से यह मत प्रकट किया गया था। उनसे सिर्फ यही तो कहा गया था कि वे देश के उत्पादन में वृद्धि करें। उत्पादन में वृद्धि करना उनका देशभक्तिपूर्ण कार्य होगा। मगर उद्योगपतियों ने इसका लाजवाब उत्तर दिया कि उनकी दिलचस्पी तो केवल मुनाफ़ा कमाने की ओर है। उद्योगपतियों के इस उत्तर के आगे सरकारी प्रतिनिधि क्या कहते? यह तो युद्धकाल के समय की चर्चा है। मगर आज जिस हलचल के बीच में उद्योगपति खड़े हैं, उसमें भी वे अपने ही रागरंग में बने हुए हैं। उनकी इस गतिविधि को देखकर राष्ट्रीय मंत्रि-मण्डल के एक सदस्य को यह प्रकट करना पड़ा कि देश में सच्चे उद्योगपति का अभी तक प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। भारतीय व्यापारी वर्ग आज भी करंसी नोट, और सुवर्ण के विकृत रूप में अनुराग बनाए हुए हैं। एक उद्योग जिसमें सम्प्रति मुनाफ़ा न हो, उसे खड़ा करना या संचालित करना देश की आय-वृद्धि करना है। इस तरह के मनोविचारों से भारतीय

उद्योगपति कोसों दूर है। उनसे ऐसी आशा करना ही दुराशामात्र है। यदि उनमें उदात्त भावनाएँ होतीं तो आज यह देश विश्व के महाराष्ट्रों में अपनी गणना कराता। पर अनेक सुविधाओं के उपलब्ध होने पर भी भारतीय उद्योगपतियों ने देश के लिए कोई रेकार्ड कायम नहीं किया। उनके व्यक्तिगत जीवन का चित्रण राष्ट्र के आगे वीभत्स रूप से प्रकट हुआ। उनकी कार्यप्रणाली में योजनारहित औद्योगीकरण, भारी से भारी मुनाफ़ा अर्जन करना, अनुचित उपायों से ऊँचे भावों में माल बेचना और आयकर बचाना केवल रहा। यही उनका प्रतिबिम्ब राष्ट्र के सम्मुख है।

पर इस बदलते हुए जमाने में भारतीय उद्योगपति समाज 'निजी व्यापार की सत्ता' को लोकतंत्र शासन में अपना मौलिक अधिकार मानता है। इसका अर्थ यह है कि वे लोकतंत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के द्वारा समाज का आर्थिक नव निर्माण नहीं चाहते। यह कैसी कल्पना है। समाज का जीवन बदल रहा है। तब क्या आज भी समाज की पुरानी अवस्था बनी रहेगी। उद्योगधंधे नए रूप में न संचालित होंगे। उद्योग-पतियों की वर्तमान भावनाओं में निजी व्यवस्था कब तक राष्ट्र में स्थान पा सकती है। भारतीय उद्योगपति देश के साथ चलें, राष्ट्र की भावनाओं का अनुसरण करें, यह कब संभव है।

सौ-डेढ़ सौ वर्षों की औद्योगिक प्रवृत्ति के उपरांत भी यह देश संसार के औद्योगिक केन्द्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सका। विश्व का श्रेष्ठ औद्योगिक देश न होने के कारण भारत संसार की शक्तियों में अविकसित—पिछड़ा हुआ देश माना जाता है। इधर बड़े पैमाने पर जो धंधे स्थापित हुए, उनमें देश की जनसंख्या का बहुत थोड़ा भाग काम से लगा। इस देश में मानव-शक्ति बेहद है। उसका अधिकतर भार कृषि पर पड़ रहा है, जो स्वयं सिसकती हुई अवस्था में है। फिर बुनियादी धंधों के निर्माण में देश नितांत पिछड़ा हुआ है। इंजीनियरिंग, मशीनें, कल पुर्जे और रासायनिक उद्योगों में इस देश की प्रगति नगण्य

है । इसके सिवाय जो पुराने धंधे है, उनके संचालन की भी किसी में टेक्नीकल निपुणता नहीं है । इतने दीर्घकाल के औद्योगिक जीवन में भारत में कोई टेक्नीकल अन्वेषण नहीं हुए । यह संभव नहीं था, क्योंकि भारतीय उद्योगपतियों का लक्ष्य विदेशों से सीधे मशीनें मंगा कर विदेशी इंजीनियरों द्वारा अपने कारखाने चलाना था । इस प्रकार उनका सीधा सादा काम उत्पादन और मुनाफ़ा कमाना रहा । उन्होंने अब तक मजदूरवर्ग, कम्पनियों के साधारण हिस्सेदार और उपभोक्ता—सब का ही शोषण किया । भारतीय उद्योगधंधों के टेक्नीकल विकास की ओर अग्रसर न होने से मजदूरों के जीवन में कोई प्रगति न हुई । वे टेक्नीकल योग्यता में पिछड़े हुए रहे । इन सब दृष्टियों से यह स्पष्ट है कि भारतीय उद्योगधंधों का संचालन अवैज्ञानिक और अव्यवस्था के रूप में हुआ ।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़ कर अन्य जिन सब लोगों का वर्तमान उद्योगधंधों पर अधिकार है, वे सभी पूंजीपति हैं । पर अन्य देशों में भी पूंजीपति है । अमेरिका में भी पूंजीपति है । वह तो पूंजीपतियों का गढ़ है । परंतु दोनों को देखिए, उनमें कितना अंतर है । क्या एक दो उद्योगपतियों में भी फोर्ड और नफील्ड के समान सामाजिक भावनाएँ उत्पन्न हुई । उन्होंने क्या जनकल्याण के लिए सार्वजनिक निधियाँ स्थापित कीं ? फोर्ड फाउंडेशन की आर्थिक सहायता अमेरिका के अतिरिक्त विश्व भर में प्रसार पा रही है । पर भारत का जो धनी वर्ग सारा लाभ बटोर कर घर में रख ले, उससे जनहित कार्यों की क्या आशाएं की जा सकती हैं ?

अतएव भारतीय उद्योगपतियों में फोर्ड और नफील्ड के समान न तो दूरदर्शिता है और न आकांक्षा ही है कि वे नए स्तर पर भारतीय उद्योग धंधों का विकास करें, जिससे इस देश का आर्थिक उत्थान संभव हो । पर भारतीय उद्योगपतियों से ऐसी आशा करना दुराशामात्र है । अब तक उन्होंने उन्हीं धंधों के निर्माण में हाथ डाला, जिन में उन्हें स्थापना के बाद ही तुरंत मुनाफ़ा मिलने लगा । उनका लक्ष्य तो

एकमात्र मुनाफ़ा कमाना है। यदि उन्हें महीन कपड़े के उत्पादन से खासा अच्छा लाभ होता है तो उनकी सारी शक्तियां उसके उत्पादन में ही लगेंगी और उस समय उनका ध्यान इस ओर नहीं जाएगा कि देश की जनता के लिए मोटा कपड़ा भी तैयार होना चाहिए। अपनी इसी मनोवृत्ति के कारण भारतीय उद्योगपति बुनियादी तथा भारी धंधों की स्थापना की ओर नहीं बढ़े, क्योंकि उनसे मुनाफ़ा जल्द नहीं होने वाला था। उनका कदम तो उस ओर बढ़ा कि जिस धंधे के द्वारा उन्हें अपनी पूंजी का ब्याज वर्ष दो चार वर्षों में ही मिलने लगे। बात यह है कि भारत का व्यवसायी वर्ग औद्योगिक क्षेत्र में जमा, इससे उसमें औद्योगिक भावनाएँ नहीं आईं। उद्योगपति का जीवन इसके सर्वथा विपरीत है। वह तो जोखिम साथ में लेकर औद्योगिक क्षेत्र में बढ़ता है।

भारतीय उद्योगपतियों की कार्रवाइयां अत्यन्त खेदजनक हैं। उन्होंने अपने स्वार्थों के आगे देश और समाज के हितों को तिरोहित कर दिया। भारतीय उद्योगधंधों में अधिकांश पूंजी मध्यमवर्ग और अन्य साधारण लोगों की लगी हुई है। पर लिमिटेड कम्पनियों का जिस ढंग से संगठन है और जिस रूप में उनका संचालन होता है, उस में कम्पनियों के सदस्यों की कोई आवाज़ नहीं है। उनके साथ विश्वासघात होता है। धन किसी का होता है और उसका मालिक दूसरा कोई बन बैठता है। हिस्सेदारों की पूंजी से मुनाफ़ा उठाकर उद्योगपति अपनी जेबें भरते हैं। उद्योगधंधे बनें या बिगड़ें इसकी उन्हें कोई चिंता नहीं है। उन्हें तो अपनी संस्था—मनेजिंग एजेंसी का हर समय ख़याल रहता है। सारी कम्पनी और कारखाना मैनेजिंग एजेंसी के आधीन रहता है। अतएव वे मैनेजिंग एजेंसी को अपने लाभ के लिए चाहे जिसके हाथ में बेच देते है। वे कभी यह नहीं सोचते कि जो व्यक्ति उन्हें अधिक रकम दे रहा है, उसमें उस उद्योग की संचालन सम्बन्धी क्षमता कहां तक है? पर यह काम उनके सोचने विचारने का नहीं है। एक पिता जिस प्रकार अपनी निर्दोष पुत्री को चाहे जिसके हाथ में सौंप देता है, वही व्यवस्था उद्योगपतियों

की है । वे तो अपने लाभ के लिए कम्पनी और उसके हिस्सेदारों के स्वार्थों को चाहे जिस व्यक्ति के गले में मढ़ देते हैं । यह अनुलक्ष कर ही केन्द्रीय सरकार ने मैनेजिंग एजेन्सी के हस्तांतर पर अंकुश लगाया है । अब बिना सरकार की इजाजत के कोई व्यक्ति मैनेजिंग एजेंसी न बेच सकेगा । इसके सिवाय कम्पनी की व्यवस्था में भी सरकारी हस्तक्षेप बढ़ा है ।

नए कानूनों के आधार पर मजदूरों के अ[illegible]कारों की भी रक्षा हुई है । किंतु उनके वास्तविक अधिकार अभी तक स्वीकृत नहीं हुए हैं । यदि मजदूरों के प्रतिनिधियों को संचालन कार्य में शामिल कर लिया जाए और उन्हें मुनाफ़े में हिस्सा दिया जाने लगे तो औद्योगिक क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण के मध्य की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । इस स्थिति से मजदूरों में जिम्मेदारियाँ बढ़ेंगी, उनका जीवन अनुशासनपूर्ण होगा, और वे अधिक उत्पादन की ओर बढ़ेंगे तथा उद्योगपति भी अपने तरीकों में परिवर्तन करेगा ।

इन पूंजीपतियों का राष्ट्र की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार है । सभी उद्योगधंधे और व्यवसाय उनके नियंत्रण में हैं । वस्त्र, उद्योग, लोहा और स्पात, सीमेण्ट, विद्युत, कागज़ और चीनी आदि के अनेक प्रमुख धंधों पर उनकी सत्ता कायम है । इस दृष्टि से आज देश में उनकी शक्ति इतनी प्रबल है कि वे किसानों और मजदूरों की उद्धारक राष्ट्रीय सरकार से भी अपनी मांगें पूरी कराते हैं । वे इस तरह से पेश आते हैं कि सरकार उनके स्वार्थों की उपेक्षा नहीं कर पाती । आज वे अपनी एकाधिकार—निजी सत्ता के रूप में उद्योगधंधों का सारा लाभ ले जाते हैं । उनके इस प्रयत्न से राष्ट्र की सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण हो गया है । राष्ट्रीय भावनाओं के कारण विदेशी माल का आयात न होने से आज भी उनके तैयार माल के लिए देश के बाजार खुले हुए हैं । इसी से वे मनमाना लाभ उठाते हैं । उनके संगठनों के राष्ट्रीय आकाँक्षाओं के प्रति विपरीत मनोभाव रखते हैं । उनका व्यवहार देश के प्रति

उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं होता है। प्रश्न यह है कि क्या लोकतंत्र शासन में भी इस प्रकार के संगठनों का अस्तित्व वांछनीय है। और क्या उनके सदस्यों के निजी अधिकार लोकतंत्र व्यवस्था के प्रतीक हैं। भारतीय संविधान में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कोई व्यक्ति या वर्ग अपने कार्यों तथा स्वार्थों द्वारा सारे समाज को क्षति पहुंचाए या उसकी प्रगति न होने दे।

इसलिए यह आवश्यक है कि बुनियादी उद्योगधंधे, बैंक, बीमा कम्पनी और उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने वाले कपड़ा और चीनी आदि के धंधों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। इस राष्ट्रीयकरण का अर्थ यह है कि उद्योगधंधों का बड़े पैमाने की योजना द्वारा पूर्ण विकास हो। उन धंधों को विकास करने का पहला अवसर दिया जाए जो समाज हितकारी हों। राज्य के अधिकार में उद्योगों का संचालन होने से यह भय नहीं रहता कि कोई स्वार्थी वर्ग परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उनकी प्रगति को रोक सके। उद्योगधंधों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करने के लिए उनका नवीन ढंग से पुनर्निर्माण होना भी आवश्यक है। वैज्ञानिक विधि से उद्योगों का संचालन होने पर मज़दूरों को भी राहत मिलती है। यह होने पर ही इस देश में औद्योगिक लोकतंत्रता स्थापित होगी। तब उद्योगों के उत्पादन और आय से राष्ट्र के सभी अंग समान लाभ उठाएंगे और राष्ट्र की सम्पत्ति का उचित वितरण होगा।

राष्ट्रीयकरण के अभाव में नए उद्योगों के विकास के लिए भारी पूंजी अपेक्षित होगी और उस अवस्था में दीर्घकाल उपभोक्ताओं को अपनी आवश्यक वस्तुओं के अभाव का सामना करना पड़ेगा। पर राष्ट्रीय-करण होने पर उपभोक्ताओं के दैनिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन सहज में बढ़ जाएगा। सरकार के अधिकार में आर्थिक साधनों का नियंत्रण होने पर किसी की इतनी शक्ति न होगी कि वह सरकारी व्यवस्थाओं में विघटन पैदा करे।

सरकार का कर्त्तव्य है कि जहाँ वह नए उद्योगधंधों का स्वयं संगठन करे, वहाँ प्रस्तुत प्रधान धंधों का राष्ट्रीयकरण भी करे। इन प्रमुख धंधों की संचालन व्यवस्था अनुत्तरदायी व्यक्ति या संगठनों के अधिकार में रहने से राष्ट्रीय हितों के आघात पहुँचता है। किंतु सरकार का यह लक्ष्य है कि मौजूदा धंधे निजी पूंजी की व्यवस्था में संचालित होते रहें, क्योंकि उनके कारखाने पुराने पड़ गए है और मशीनें जीर्णशीर्ण हो गई हैं। इस अवस्था में वह उन पर अपना नियंत्रण करे। इसके सिवाय उन पर इस प्रकार नए कर लगाए जाएँ, जिससे उनके व्यक्तिगत मुनाफ़े का औसत दिन पर दिन कम हो। आज आवश्यकता है कि राष्ट्र की सारी सम्पत्ति कुछ लोगों के पास न चली जाए। हमें उसके प्रवाह की दिशा को बदलना है। इसके सिवाय राज्य को नए धंधों के निर्माण के लिए पूंजी-पतियों पर ही निर्भर न रहना चाहिए। यदि राज्य ऋण लेकर नए धंधों का निर्माण करे तो उसका आर्थिक भार सब पर समान रूप से पड़ेगा। राज्य के इस ऋण में देश की समस्त जनता भाग ले सकती है, यद्यपि पूंजीपति वर्ग यह चाहेगा कि वह अधिक विनियोग कर-सत्ता और लाभ में हिस्सा ले।

यह तो प्रकट है कि पूंजीपति वर्ग केवल राष्ट्रीयकरण का ही नहीं, देश की समस्त प्रगतिशील योजनाओं का विरोध करेगा। न्यूनतम मज-दूरी, डिवीडेंड—मुनाफ़े पर नियंत्रण, और सम्पत्ति-कर आदि के सभी सामाजिक और आर्थिक क़ानूनों की रचना में उद्योगपतियों का कभी कोई सक्रिय सहयोग नहीं होगा।

इधर विदेशी उद्योगपतियों के आगमन से देश राष्ट्रीयकरण के पथ से हटता जा रहा है। विदेशियों के तत्त्वाधान में बुनियादी धंधों का निर्माण हो रहा है। आज विश्व बैंक भी योग दे रहा है। पर यह सहयोग तभी प्राप्त हो सका ह, जबकि सरकार ने अनक बार राष्ट्रीयकारण के प्रति अपनी स्थिति स्पष्ट की और विदेशियों को नई नई सुविधाएँ प्रदान कीं। भारतीय उद्योगपतियों ने इस नई स्थिति को अपने अनुकूल माना।

इसी से उन्होंने विदेशी पूंजीपतियों और विशेषज्ञों के आगमन का स्वागत किया। पर क्या ये सब संगठन राज्यव्यवस्था में नहीं स्थापित हो सकते थे ? क्या विदेशी सरकारें और विदेशी संगठन भारत सरकार को पूंजी नहीं दे सकते थे ? विशेषज्ञों के लिए भी सरकार से समझौता हो सकता था।

राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर सरकार अक्सर चिंतित हो उठती है, यह विचार आने पर उसकी स्थिति भयावह सी हो जाती है, क्योंकि वह सोचती है कि वर्तमान धंधों का राष्ट्रीयकरण करने पर सरकार मुआवज़ा चुकाने के लिए धन कहाँ से लाए। पर यह तो कोई ऐसी कठिन समस्या नहीं है, जो सरकार हल न कर सके। उद्योगपतियों को मुआवजा नए करों के एवज़ में अदा किया जा सकता है। यदि उद्योगपतियों पर प्रतिवर्ष पूंजीगत कर लगे, तो सरकार उसकी आय पूंजीपतियों को मुआवज़े की रकम में दे सकती है। इस प्रकार यह व्यवस्था केवल हिसाब के जमा-खर्च की होगी। सरकार को अपने पास से कुछ न देना पड़ेगा। सम्पत्ति कर की आय भी मुआवज़ा चुकाने का साधन बन सकती है। सरकार उस सम्पत्ति को सार्वजनिक घोषित कर सकती है। इन व्यवस्थाओं द्वारा मुआवजा भी चुक सकता है। इसके सिवाय जिन लोगों के पास कम्पनियों के साधारण हिस्से होंगे, सरकार उन्हें बांड दे सकती है। उनकी पूंजी सरकार ऋण के रूप में मानेगी और बांड के अधिकारियों को प्रतिवर्ष नियत ब्याज मिलेगा। इस व्यवस्था से राष्ट्र में जहाँ सम्पति की असमानता दूर होगी, वहाँ राष्ट्रीयकरण के लिए पूंजी का प्रश्न भी हल होगा।

उद्योगपतियों की व्यवस्था में भी उद्योगधंधों का संचालन टेक्नीकल—विशेषज्ञ और कार्यदक्ष वेतनभोगी मैनेजर ही करते हैं। स्वयं उद्योगपति इन बातों में कुशल नहीं होते हैं। उन्हें अपने उद्योगों के संचालन के लिए इन लोगों का ही आश्रय लेना पड़ता है। यदि ये विशेषज्ञ सहयोग न दें, तो उनके उद्योग ठप्प पड़ जाएंगे। जब यह प्रकट स्थिति

है, तब इस कथन में कोई तत्व नहीं है कि यदि उद्योगपति उद्योगों का संचालन छोड़ दें, तो उनके अनुभवों के अभाव में सरकार धंधों का भली-भाँति संचालन न कर पाएगी। उद्योगपतियों का अनुभव किन अनुचित तरीकों से कच्चे माल के खरीदने और तैयार माल के बेचने में है। इससे अधिक उनकी कोई क्षमता नहीं है। उत्पादन कार्य में उनका ज्ञान शून्य-वत् है। देश में एक भी उद्योगपति इंजीनियर और टेक्नीशियन विशेषज्ञ नहीं है। ऐसी स्थिति में सरकार भी विशेषज्ञों के सहयोग द्वारा उद्योगों का सुचारु संचालन कर सकती है। जिन धंधों का राष्ट्रीय-करण हो, सरकार उनकी उपयुक्त व्यवस्था के लिए स्वतंत्र कार्पोरेशनों का निर्माण कर सकती है, जिनमें राज्य, विशेषज्ञ, और मजदूरों का प्रति-निधित्व हो। सरकार उद्योगपतियों को भी स्थान दे सकती है।

राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ उद्योगधंधों का विकेंद्रीकरण होना भी अत्यन्त आवश्यक है। सरकार उन धंधों को भी स्थापित करे, जो आरम्भ में लाभप्रद प्रतीत न हों। देश के नवनिर्माण में बुनियादी धंधों का अभाव राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध करना है। इसके सिवाय उन धंधों की भी उन्नति होनी चाहिए, जो साधारण लोगों की जीविका के साधन हैं। छोटी पूंजी के धंधों पर राज्य का कोई हस्तक्षेप न हो। सरकार यथासंभव उन्हें पूरी छूट दे। पर राज्य यह अवश्य चाहेगा कि उन सबका संगठन सहकारी व्यवस्था के आधार पर हो।

इसके अतिरिक्त बैंक, बीमा कम्पनियाँ, खान, चाय, काफ़ी, चीनी, वस्त्र, तेल, मोटर आदि का यातायात, तथा विद्युत आदि के सभी उद्योग राज्य द्वारा संचालित होने चाहिएँ। राज्य द्वारा इन धंधों के संचालित होने पर समाज में आय की वर्तमान असमानता मिटेगी। तब छोटी पूंजी के संगठन सहकारी संस्थाएँ, और राष्ट्रीयकरण के धंधे ही देश में विकास पाएंगे। इस प्रकार राष्ट्र की सम्पत्ति का विनियोजन राज्य की व्यवस्था के अन्तर्गत होगा।

२४

अन्न, जनसंख्या और क्षुधा !

माल्थस का खाद्यान्न—उत्पादन और जनसंख्या वृद्धि के सम्बन्ध में सिद्धान्त है कि उपज की प्रगति गणित के संख्याक्रम १,२,३,४,५ के आधार पर होती है, किंतु जनसंख्या में वृद्धि गुणन के आधार पर २×४×८×१६ के अनुसार होती है। इसका तात्पर्य यह कि हम किसी भी नई से नई योजना के द्वारा जितना अधिक उत्पादन बढ़ाएं, जनसंख्या की वृद्धि उससे सदैव द्विगुण होती है। माल्थस के इस सिद्धान्त के प्रति भिन्न भिन्न मत होने पर भी उसके मूलतत्त्वों की जो गति-विधि हम दैनिक जीवन में पाते हैं, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। हम जितना अधिक उत्पादन करते हैं, उसका जनसंख्या से संतुलन नहीं हो पाता है। जब खाद्यान्न बढ़ती हुई जनता के लिए पर्याप्त नहीं होता है, तब उसका सस्ता होना कैसे संभव है ? 'सौ गज चले अढाई कोस' वाली कहावत चरितार्थ होती है। हम जितनी लम्बी-चौड़ी योजनाएं बनाएं और चाहे जितना अन्न उत्पादन करें, किंतु जनसंख्या उससे अधिक ही बढ़ती है।

पूर्वकाल में जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण रहता था। ब्रह्मचर्य और नैतिक दृष्टि से संतति नियमन की भावनाएं समाज में विद्यमान होने से जनसंख्या नहीं बढ़ पाती थी। समाज में आजकल की तरह भोगविलास ऐयाशी और अनाचार नहीं फैला हुआ था। इस जनसंख्या के नियंत्रण के लक्ष्य से ही भारतीय नरेश और योद्धागण जब तब युद्ध मोल लिया करते थे। उन्होंने यह धर्म मान रखा था कि खाट पर पड़ कर मरना पतित कार्य है। वे सैकड़ों व्यक्तियों की गर्दनें कटा कर रण क्षेत्र में प्राण देते थे।

इन युद्धों से भी जनसंख्या अत्यन्त सीमित रहती थी। आर्यों ने युद्ध से कभी घृणा नहीं की। उन्होंने अनुभव किया कि युद्ध के उपरांत समाज सदा नया रूप धारण करता है।

भारत में युद्ध की प्रवृत्ति अंग्रेजों के आने के समय तक बनी रही। मुसलमानी शासनकाल में देश बराबर युद्ध में संलग्न रहा। उस समय भी जनसंख्या का संतुलन रहा। इस काल में अनाज इतना सस्ता था कि हम उसे जानकर हैरत में पड़ जाते हैं। तब समाज में विलासिता और ऐयाशी का जीवन भी नहीं था।

पर जब अंग्रेज आए तब वे भी अपने साथ जनसंख्या घटाने के साधन लाए। देश में शांति तो कायम हुई, किंतु युद्ध के स्थान पर लोगों की मृत्यु का कारण नई-नई बीमारियां बनीं। इन रोगों ने जनसंख्या की वृद्धि पर रोक रखी। एक-एक बीमारी प्रतिवर्ष हजारों और लाखों लोगों की जानें ले लेती, प्लेग और इनफ्लेंयुँजा में हजारों और लाखों व्यक्ति चटपट हो जाते। इस प्रकार प्लेग, हैजा, इनफ्लेंयुंजा, मलेरिया और कालाबुखार आदि जनसंख्या नियंत्रण के साधन बने। भारत की सेनाएं दो महायुद्धों में गईं, पर किसी में उनका इतना नाश नहीं हुआ, जितना ये बीमारियां एक वर्ष में अपना भोग लेतीं। बंगाल प्रदेश में मलेरिया का प्रकोप प्रतिवर्व हजारों व्यक्तियों के प्राण लेता।

पर जब स्थानीय और प्रादेशिक शासन में लोकप्रतिनिधियों का प्रवेश हुआ और उनके अधिकार में सत्ता आई तब इन भयंकर बीमारियों की रोकथाम के सक्रिय प्रयत्न किए गए। प्लेग का तो प्रायः अन्त हो गया है, किंतु अब अन्य बीमारियां भी तेजी से नहीं फैल पाती हैं। क्षयरोग भी खूब बढ़ा। पर उसकी वृद्धि पर भी नियंत्रण किया गया। इन प्रयत्नों से मृत्यु संख्या में उत्तरोत्तर कमी हुई।

जहां यह सब कुछ हुआ, वहां जनसंख्या बेहद बढ़ी। ऐश आराम और विलासिता फैलने पर प्रत्येक परिवार में बच्चों की बाढ़ आ गई। जिनके पास पेट भरने के लिए अन्न नहीं, रहने के लिए मकान नहीं, वे सड़क

की पटरियों पर जिंदगी बिताने वाले भिखारी भी दर्जनों बच्चे पैदा करने में पीछे नहीं रहे। एक मध्य-वर्ग परिवार की आय नपी तुली होने पर भी उसमें बच्चों की भरमार होती है। विवाह होते ही नवदम्पति वर्ष प्रतिवर्ष संतान उत्पन्न करने में लग जाते हैं। कोई नियंत्रण न होने से उन्हें पूरी छूट रहती है।

पिछली जन गणना प्रकट करती है कि भारत में सब प्रकार की बीमारियां, रोग और प्रकोपों से लोगों के मरने के उपरांत भी गत दस वर्षों में जनसंख्या में १२॥ प्रतिशत वृद्धि हुई। प्रतिवर्ष प्रायः साढ़े सत्तर लाख नए मुंह अन्न खाने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस दृष्टि से दस वर्षों में चार पांच करोड़ की औसत वृद्धि भारत की खाद्यसमस्या को संकट-पूर्ण बनाने का साधन बनती है।

यदि हम विगत पचास वर्षों पर ध्यान दें, तो यह प्रकट होगा कि सन् १९०१ की २३.८४ करोड़ जनसंख्या सन् १९५१ में ३५.६८ करोड़ हो गई। यह वृद्धि ५० प्रतिशत तक है। इस प्रकार इस लम्बे समय में १ प्रतिशत वृद्धि हुई। राष्ट्रसंघ के अंकों की दृष्टि से संसार की जनसंख्या सन् १९२० में ५४ करोड़ ४० लाख थी, किंतु वह सन् १९४० में २ अरब ४० करोड़ हो गई। इस वृद्धि का अंत कहां पर जाकर होगा। इस दृष्टि से जरा सोचिए कि अगले पचास वर्षों में संसार का क्या होगा ? पर्वतों पर तक तो जाकर हम बस आ गए, तब आगे क्या हम अधर में लटकेंगे।

विशेषज्ञों की दृष्टि से प्रति मनुष्य के लिए अन्न उत्पादन के लिए २.५ एकड़ उपयुक्त कृषि जमीन की आवश्यकता होती है और इस दृष्टि से संसार में आज जितनी जमीन में खाद्यान्न उत्पन्न होता है वह ५६० से १३३० करोड़ तक मनुष्यों की क्षुधा पूर्ति कर सकता है।

खाद्यान्न उत्पादन के अनुपात में जनसंख्या की वृद्धि का खतरा संसार के किसी देश में इतना भयावह नहीं है, जितना कि भारत में। इस देश में एक मनुष्य के अन्न उत्पादन के लिए २॥ एकड़ उपजाऊ जमीन

की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से भारत में वह अनुपात इतना कम है, कि लाखों और करोड़ों क्षुधार्थियों के पेट भरने का कोई साधन नहीं है। यदि हम नई योजनाओं के द्वारा बड़े पैमाने पर अन्न की उपज बढ़ाने में अगले पांच वर्षों में किसी हद तक सफल भी हों और हम यह सोचें कि हमने अपनी खाद्यान्न समस्या हल कर ली, अर्थात् हम अन्न के उत्पादन में स्वावलम्बी हो गए तो क्या हमारी यह धारणा सही होगी? क्या हम अपनी उपज की वृद्धि में जनसंख्या की लगातार वृद्धि का भी खयाल करते हैं? मान लिया जाए कि हमने इस मार्जिन को भी स्थान दिया, पर प्रश्न यह है कि हम उसे कब तक देते रहेंगे, क्योंकि जमीन का क्षेत्रफल और उत्पादन शक्ति दोनों ही सीमित हैं। जनसंख्या की तरह वे कोई नहीं बढ़ते हैं।

पर अधिक जनसंख्या के लिए अन्न के साथ-साथ वस्त्र और मकान भी चाहिए। भारत में वस्त्र का उत्पादन काफी है। किंतु आज देश के विदेशी व्यापार में उसका प्रधान अंग है। वस्त्र का भारी निर्यात आवश्यक हो गया है। इससे यह स्पष्ट है कि हम जितना वस्त्र तैयार करते हैं, उस सब का देश में ही उपयोग नहीं कर सकते। यदि हम सब वस्त्र देश में उपभोग करने लगें, तो हमारा विदेशी व्यापार भारी घाटे का साधन बनेगा। तब हम विदेशों से आयात करने के लिए धन कहां से लाएंगे। विभाजन के कारण देश की आर्थिक व्यवस्था बदल गई है। पाट और रुई की उपज पाकिस्तान में चली जाने से हमारा विदेशी व्यापार सदा घाटे का बन गया है।

सन् १९५१-५२ में भारत में वस्त्र की पैदाबार ५१००० लाख गज थी, जिस में ३९००० लाख गज वस्त्र मिलों का बना हुआ था और शेष १२००० गज वस्त्र हाथ के कर्घों का बना हुआ था। इसमें सन् १९५१ में ८००० लाख गज वस्त्र निर्यात के लिए रखा गया। अतः देश के उपभोग के लिए ४१६०० गज वस्त्र बाकी बचा। इस उत्पत्ति से . ११.७ गज वस्त्र प्रति मनुष्य का औसत पड़ता है, जबकि सन् १९३९-४० और

सन् १९४८-४९ में प्रति मनुष्य पीछे वस्त्र की खपत १५.७५ गज थी। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि होने पर प्रत्येक मनुष्य को कम वस्त्र मिलेगा। यदि यह कहा जाए कि हम तीन शिफ्टें चला कर उत्पादन बढ़ा सकते हैं, तो उसके लिए कच्चा माल कहां से आएगा। वस्त्र की अधिक मांग होने पर वह जनसाधारण के लिए किस प्रकार सस्ता होगा।

मकान का सवाल सबसे अधिक पेचीदा है। शरणार्थियों के आने तथा नगरों की आबादी बढ़ने से---बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए नए मकानों का निर्माण होना भी अत्यन्त आवश्यक है। कारखानों के मजदूरों के लिए १० लाख मकानों की पहले से कमी बनी हुई है। इसके सिवाय लाखों और करोड़ों व्यक्ति बिना मकानों के सड़कों पर जीवन बिताते हैं। उन सब के लिए मकान चाहिएं। हमने शासन विधान में यह घोषित किया है कि राज्य प्रत्येक मनुष्य के लिए अन्न, वस्त्र और मकान की व्यवस्था करेगा। यदि यह न हो, तो हमारी स्वतंत्रता का क्या अर्थ है? भारतीय योजना आयोग ने दो वर्षों में भारत के २७ बड़े नगरों में १ लाख नए मकान बनाने की योजना की है। इस अनुपात से दस वर्षों में २ लाख मकान बन सकेंगे। इस प्रगति से हम करोड़ों व्यक्तियों को किस प्रकार स्थान दे सकेंगे। इसकी अपेक्षा क्यों न हम प्राकृतिक सामग्री का संग्रह कर मानव शक्ति को जुटा दें कि वह अपने लिए मकान बना ले।

देश के लाखों और करोड़ों नंगे भूखे जन जो एक बार भर पेट भोजन नहीं पाते, जिनके शरीर पर वस्त्र नहीं हैं, और रहने के लिए मकान नहीं है, उनकी समस्या हम किस प्रकार हल करेंगे? अन्न का संकट मुंहबाए खड़ा है। लाखों और करोड़ों मन अनाज विदेशों से प्रति वर्ष आ रहा है। आगे हम कब तक विदेशी अन्न पर निर्भर रहेंगे। हमने उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न किए, किंतु फिर भी हम आत्म-निर्भर न हो सके। जितना हमने प्रयत्न किया, उससे अधिक अवस्था चिंतनीय होती गई। दुर्भाग्यवश प्रकृति भी हम से रूठी हुई है। समय पर वर्षा न होना या अधिक वर्षा न

होना हमारी उत्पादन समस्या को गम्भीर बना देता है। पिछले कई वर्षों से अकाल, सूखा और अति वृद्धि के प्रकोप हो रहे हैं। वर्षा के अभाव में कुएं सूख जाते हैं, खेतों की फसल की सिंचाई नहीं हो पाती हैं। घास तक नहीं ऊग पाता है। जब पशुओं के लिए चारा तक नहीं ऊगता है, तब मनुष्य के लिए अन्न कहां से उत्पन्न हो। बेचारे पशु बेमौत मरते हैं। मनुष्य भी मरते हैं। उनके पास इतना पैसा नहीं होता कि वे अन्न खरीदें। लम्बी फाका-कशी के बाद उन्हें जो रोग घेर लेते हैं, उससे वे मृत्यु-मुख में जाने से नहीं बचते। भारत के प्रत्येक राज्य में कुहराम मच जाता है। भूख से तड़पते हुए बच्चों की हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है। शिशुओं के खाली पेट पीठ से चिपक जाते हैं। गले सूख जाते हैं। सहस्रों स्त्री, पुरुष और बच्चे दाने-दाने के लिए मारे-मारे फिरते हैं। आज किस प्रदेश की यह अवस्था नहीं है। ये संकटग्रस्त व्यक्ति घर गांव छोड़कर भीख मांगते हैं, डाका डालते हैं, स्त्रियां आत्महत्या करती हैं, वे एक घड़ा पानी और सेर दो सेर दानों के लिए अपने बच्चों को दे डालती हैं। एक-एक गरीब परिवार चार-चार और पांच-पांच नन्हे बालकों को बेचकर दस पांच दिनों के लिए भोजन पाता है। गाय-बैल जो तड़प-तड़प कर मरते हैं, वे बाजार में चमड़े के मोल में बिकते हैं।

अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में लोग घास, पत्ते, जड़ें और वृक्षों की छालें खाकर जिंदा रहते हैं। उनकी हड्डियां राख हो जाती हैं। कहीं-कहीं पर मनुष्यों ने कीड़े मकोड़े, पशुओं के माँस और खाल तक खायी है। पशुओं की अवस्था भी बदतर है। वे गोबर और लीद तथा बिष्टा खाकर जिंदा रहते हैं। पर यह भी उनके लिए दुश्वार होता है। इस प्रकार सहस्रों की संख्या में पशुओं का विनाश हुआ है।

इस बीभत्स अवस्था में हम कह उठते हैं कि भगवान् कहां है, यदि वह कहीं पर है तो क्यों सोया हुआ है? वह दरिद्र नारायण की सुध लेने वाला, दीन जनों पर मर मिटने वाला महा मानव गांधी कहां है? यही तो वह देश है, जहां पुरातन समय में लोग अपने को धनी नहीं मानते थे,

धनी धनवान कहलाने में वे पाप, हीनता और कापुरुषता का अनुभव करते, यदि वे पीड़ितों की सहायता के लिए न दौड़ते । उनका प्रयत्न होता था कि नगर ग्राम और राज्य में कोई भूखा न रहे । वे अपना सारा धन लेकर लोगों की सेवा में आगे आते । पर आज ये घटनाएं देश भर में व्याप्त हैं । मद्रास, उत्तर प्रदेश, बंगाल, राजस्थान, मध्यभारत और सौराष्ट्र आदि किस प्रदेश में अन्न संकट नहीं है । रायलसीमा, सुन्दरवन, देवरिया और उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले के जैसे अन्न संकट सभी प्रदेशों में हैं ।

इस क्षुधा ने ही तेलंगाना को साम्यवाद का गढ़ बनाया था, क्या संभव नहीं है कि यदि राष्ट्र अन्न समस्या हल न कर सका, तो कहां साम्यवाद अपने पैर मजबूत न करेगा ?

आज लोग पशुओं से भी गया बीता जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ओह! कैसा पतन है !! इस स्वतन्त्रता के युग में लोग भेड़िया बन गए हैं, जो गाय भैंस का चमड़ा और मांस खाकर पेट भरते हैं ।

जिस देश में एक दिन घी दूध की नदियां बहती थीं, और जो सारे संसार के लिए अन्न का खदान था, आज उसकी यह दुर्दशा है । पर यह अवस्था हमारे ही कृत्यों का परिणाम है। भारत में अन्न की समस्या जन संख्या पर निर्भर है । जब तक आबादी की वृद्धि नहीं रुकती है, तब तक हम सारे राष्ट्र को भोजन देने में समर्थ न होंगे ।

पर जनसंख्या की वृद्धि पर रोक किस प्रकार लगे । यह प्रतिबंध स्वतः जनता द्वारा स्वेच्छापूर्वक लगाया जाना वांछनीय है । सामाजिक कानून भी जनसंख्या की वृद्धि को रोक सकते हैं । स्वेच्छापूर्वक प्रयत्नों में वयस्क विवाह, तीन या चार से अधिक संतान उत्पन्न न करना, ऐन्द्रिक-भोग विलास की कमी अथवा गर्भ निरोध के साधनों का प्रयोग और संतति निग्रह के विविध उपायों के प्रयोग और वैज्ञानिक विधियों से उत्पादक कीटाणुओं के विनाश द्वारा जनसंख्या नियंत्रित की जा सकती है । किसी भी प्रयोग की सफलता उसके उपयोग करने वाले पर निर्भर है । धर्मप्राण भारतवर्ष में जनसंख्या नियंत्रण के ऐच्छिक तथा वैज्ञानिक उपाय यकायक वृद्धि न

पाएं। किंतु प्राचीन काल में भी ब्रह्मचर्य और संतति निरोध---दोनों ही उपायों द्वारा जनसंख्या का नियंत्रण होता था। पश्चिमीय देशों ने जनसंख्या नियंत्रण के नए प्रयोग भारत के प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त किए हैं। अतः सर्व-साधारण को प्राचीन साहित्य का ज्ञान न होने से ये बातें नई लग सकती हैं। पर देखा जाए तो मूल में वे इसी देश की हैं। ऋषि गणों ने ही इन तत्त्वों की खोज की थी।

भारतीय ग्रामों में जनसंख्या का ९० प्रतिशत भाग बसता है। उनके लिए संतान ईश्वरीय देन है। ऐसे लोगों के लिए बालक इन्द्रिय सुख का साधन भी बनते हैं। हिन्दुओं में यह भी विश्वास है कि बिना पुत्र जन्म के मुक्ति नहीं मिलती है। ग्रामीणों के लिए बच्चे आर्थिक उन्नति के साधन भी बनते हैं।

यदि तीन चार बच्चे उत्पन्न होने पर स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य से न रह सकें, तो यह कहीं अधिक श्रेयस्कर है कि गर्भ धारण के स्थान को डाक्टरी चिकित्सा द्वारा न रखा जाए। यह एक सरल उपाय है, जिससे संतान की वृद्धि सहज में रुक सकती है। प्रत्येक विवाहित स्त्री-पुरुष का यह कर्त्तव्य है कि वह संतति-नियंत्रण में अपना योग दे।

राज्य के स्वास्थ्य विभाग द्वारा इस सम्बन्ध में रिकार्ड रक्खे जाएं कि किस परिवार में कितनी संतानें हुई, कितने परिवारों ने किन उपायों से संतति निग्रह किया और कितनी स्त्रियों ने गर्भ स्थान नहीं रखा। राज्य सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे संतति-उत्पत्ति की अधिकतम संख्या करार दे दें। इससे अधिक संतानें होने पर लोगों की आर्थिक स्थिति के अनुसार सौ रुपए से पांच लाख रुपए तक कर लगाया जाए।

समाज में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो स्वेच्छापूर्वक इंद्रियों पर कठोर नियंत्रण कर सकते हैं। पर जो व्यक्ति साधन हीन हैं, या अल्प आय वाले हैं अथवा भीख मांगते हैं, उनके संतति उत्पत्ति पर कठोर नियंत्रण कायम हो। ऐसे लोगों द्वारा संतानों की उत्पति ही कदापि न होनी चाहिए। भीख मांगने वालों के संतान उत्पन्न करने पर राज्य उन्हें कड़ी सज़ा दे। भारी कर

लगाने या सजा का भय होने से निर्धन लोग संतान उत्पन्न न करेंगे।

इसके अतिरिक्त जो परिवार केवल एक या दो हृष्ट-पुष्ट बलवान बच्चे पैदा करें, उन्हें राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वायत्त-संस्थाएं अथवा ग्राम पंचायतें पुरस्कार प्रदान करें। हर एक ग्राम और नगर अपनी संतानों का पूरा रेकार्ड रखे। यह कार्य उपयोगी और दिलचस्प दोनों ही होगा। हर प्रकार के प्रयत्नों से एक ओर संतति निग्रह किया जाए तो दूसरी ओर बलवान संतानों की उत्पत्ति पर ध्यान रखा जाए। प्राचीन काल में राजपूत महिलाएँ शूरमां पैदा करती थीं और कहती थीं कि एक संतान पैदा करना ही काफ़ी है, जो वीर हो, मैदान से हटने वाली न हो, देशभक्त हो और दानशील हो। अन्यथा जो संतान इन गुणों से रहित होती है, वह राजपूत स्त्री व्यर्थ ही अपना यौवन खोती है। कादर पुरुषों को राजपूत वीरांगनाएं मृत्यु मुंह में पहुंचा देती थीं।

संतति निग्रह सारे देश में एक आधार पर हो। इस व्यवस्था पर साम्प्रदायिक भावनाओं का कोई प्रभाव न पड़े। भारत की जिन जातियों में, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बहुविवाह की प्रथा को कानूनन रोका जाए, और इस संबंध में धर्मशास्त्रों के चाहे जो आदेश या व्यवस्थाएं हों। शास्त्र और कुरान का बिना खयाल किए यह सुधार जारी होना चाहिए। म्युनिसिपैलटी और राज्य के स्वास्थ्य विभाग की दाइयाँ नगर और ग्रामों में शिशु-उत्पादक कीटाणुओं के निरोध में परिवारों की सहायता करें। प्रचार द्वारा लोगों का ज्ञान बढ़ाया जाए।

इसके अतिरिक्त माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक प्रकोप—युद्ध, दुर्भिक्ष, भूचाल, महामारी और नव शिशुओं की मृत्यु के रूप में कार्य करते ही हैं।

समाज के लिए यह विचारणीय है कि प्रत्येक परिवार क्यों अधिक संतान उत्पन्न करे। कोई परिवार धनी या सम्पन्न है, तो उसका यह लक्ष्य न होना चाहिए कि दर्जनों बच्चे पैदा करे। अधिक संतानें पैदा करने वाला समाज में महान निंदनीय और तिरस्करणीय माना जाए।

अगले पांच वर्षों में हम जहां अन्न उत्पादन की वृद्धि करें, वहाँ हम जनसंख्या नियंत्रण की ओर भी किन्हीं योजनाओं के आधार पर बढ़ें। हम प्रतिवर्ष दोनों का आनुपातिक लेखा लगाएं। यदि हमने यह न किया तो अगले बीस वर्ष में भारत की जनसंख्या लगभग पैंतालीस करोड़ तक बढ़कर राष्ट्र में भयंकरता उत्पन्न कर देगी। पर आज हमारा जीवन स्तर संकीर्ण और संकुचित विचारों के घेरे में सीमित होने के कारण क्या हम जनसंख्या नियंत्रण की किसी योजना में आगे बढ़ने की वास्तविक क्षमता रखते हैं। शिक्षा और ज्ञान के अभाव में इस देश में जब लोग साधारण सामाजिक सुधारक के संबंध में धर्म की नौका डूबती हुई देखते हैं और भयंकर चीख पुकार मचाते हैं, तब समाज-विज्ञान के ज्ञान के अभाव में वे संतति-निग्रह के नवीन प्रयोगों के संबंध में क्या न अनुभव करेंगे।

मगर आज देश के लिए दूसरा कोई चारा नहीं है कि वह अपनी समस्याओं के हल करने में संतति-निग्रह के कार्यक्रम को स्थान न दे। जो पारिवारिक जीवन में ब्रह्मचर्य धारण कर सकें, वे दम्पति धन्य हैं, उन्हें साधुवाद है, उनका नेतृत्व समाज के लिए आदर्शपूर्ण है कि एक दो संतानों के उत्पन्न होने के उपरांत वे स्वेच्छापूर्वक संयमी जीवन बिताते हैं, किंतु जो ऐसा न कर सकें और नए उपायों का आश्रय लें, समाज को उनका भी विरोध न करना चाहिए। आवश्यकता यह है कि समाज को छूट है कि वह हर उपाय से संतति निग्रह करे।

२५
भारत के मुसलमान

देश का विभाजन हुआ, उसके दो टुकड़े हुए, भारत और पाकिस्तान। पर विभाजन के उपरान्त मुसलमानों की परिस्थितियों में जो परिवर्तन हुए, वे गम्भीर विचार के विषय बन गए। अविभाजित भारत में मुसलमान जिस स्थिति में थे, वह देश के दो टुकड़े होने पर उनके लिए नहीं रही। भारत में बसे रहने वाले मुसलमानों को एक रात में ही अपने पुराने विचार बदल देने पड़े। विभाजन के दूसरे ही दिन उन्हें भारत की राष्ट्रीयता में ईमान प्रकट करना पड़ा। उनके जीवन में एक नाटकीय परिवर्तन हुआ।

मुसलमानों की धार्मिक जहालत और साम्प्रदायिकता का युग, दो राष्ट्रों के सिद्धांत से उत्पन्न हुआ था, वह भारत और पाकिस्तान की स्थापना पृथक् और स्वतन्त्र राज्यों में होते ही, समाप्त हो गया। इसके साथ ही मुसलमानों की उस राजनीति का अंत सा हो गया, जो आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करती थी, और जिसकी ओट में वे देश में नई-नई मांगें मुसलिम समाज के लिए करते थे। यह जो कुछ हो, पर देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन से राष्ट्र को भारी कीमत चुकानी पड़ी।

आज भारत स्वतन्त्र सर्वप्रभुत्व सम्पन्न, लोकतन्त्र गणराज्य है, और उसका धर्म-निरपेक्ष तथा लोकतन्त्र के सिद्धांतों के आधार पर लिखित विधान है। भारत के नागरिकों को धर्म, जाति, और वर्ग भेद का बिना विचार किये समानता तथा स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। विधान ने अल्प मत सम्प्रदायों को उपयुक्त सुरक्षा प्रदान की है, जिससे कि उनका जातीय जीवन भली भाँति विकसित हो सके। उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म की हिफ़ाजत की भी गारंटी दी गई।

सारांश यह कि धर्मनिरपेक्षता और समानता के सिद्धांत कानून की दृष्टि से मान्य हुए। देश के शामितों को कानून द्वारा समान सरंक्षण प्रदान किया गया। इस व्यवस्था से कोई भी एक ऐसी बात नहीं छूटी, जिससे अल्पमत जातियों को कोई शिकायत का अवसर हो। विधान ने कोई ऐसे तत्व मान्य नहीं किये जिनसे अल्प मत वालों को कोई भय हो, शोषण होने की चिन्ता हो या यह खयाल हो कि कोई वर्ग उन पर प्रभुत्व कायम करे। बहुमत का प्रभुत्व भारतीय बिधान ने रहने ही नहीं दिया। इसकी अपेक्षा हर एक नागरिक को जीवन, विकास और उपार्जन के समान मौके दिये गए। राष्ट्रीय हित की दृष्टि से किसी के प्रति कोई पक्षपात नहीं किया गया।

ये सब क्रांतिकारी परिवर्तन उस वातावरण से सर्वथा भिन्न हैं, जिसमें मुसलमान विभाजन के पूर्व रहते थे। राष्ट्र के पुरातन और नवीन जीवन में घोर अन्तर है। इस अवस्था में उन मुसलमानों को, जिन्होंने अपना भाग्य इस देश के साथ मिला दिया है, अपनी नई स्थिति के सम्बन्ध में फिर से विचार करना है, अब उन्हें अपनी विचार-धारा में आमूल परिवर्तन करना है। नई परिस्थितियों के अनुकूल उन्हें अपना जीवन बनाना है।

इस अवस्था में भारतीय मुसलमान ज़रा अपना हृदय टटोलकर देखें और अपने तई विचार करके देखें कि इन बदली हुई परिस्थितियों में क्या उनका स्वतन्त्र राजनीतिक अस्तित्व संभव है? राजनीतिक अल्पमत के रूप में क्या धार्मिक दृष्टि से इस प्रकार का साम्प्रदायिक संगठन उपयुक्त है? क्या अब उन्हें दो राष्ट्रों का सिद्धांत जकड़े हुए है? क्या वे नये जीवन में अपने को भारतीय राष्ट्रीयता का अंश नहीं अनुभव करते हैं? क्या वे अब भी भारत में मुसलमानों की भाषा, संस्कृति, सभ्यता, और अन्य हितों की सुरक्षा के नाम पर अपने संगठन की आवाज उठायेंगे?

भारतीय मुसलमानों का कर्त्तव्य है कि वे राजनीतिक पृथक्ता का परित्याग कर दें। अब यह उचित नहीं है कि वे राजनीतिक अधिकार और

सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए वर्तमान राजनीतिक दलों से कोई सौदा करें। मुसलमान समाज में जो वर्ग सुसंस्कृत, शिक्षित और चेतनायुक्त है, वह इस स्थिति की ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दे। मुस्लिम नेताओं की जिम्मेदारी सर्वाधिक है कि वे इस नाजुक मौके पर मुसलिम समाज की वास्तविक नेतृत्व करने की दिशा में अग्रसर हों। उनके सच्चे नेतृत्व में ही मुस्लिम जाति का हित और मंगल है। यदि उन्होंने साम्प्रदायिक विष को मुसलमानों में फैलने दिया, तो उससे न केवल मुसलमानों का, बल्कि सारे देश का सर्वनाश हुए बिना न रहेगा। मुसलमानों का रवैया देश के लिए बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है। भारत की राष्ट्रीयता साम्प्रदायिक राजनीति की समर्थक नहीं है चाहे कोई अल्पमत जाति हो या बहुमत हो, वह किसी के साम्प्रदायिक विचारों को स्थान नहीं दे सकती। इस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीयता ने उन सब की भर्त्सना की, जिन्होंने जातीय तथा साम्प्रदायिक आधार पर राजनीति में पैर बढ़ाया फिर चाहे वे हिंदू हुए या सिख तथा अछूत। भारत के नए राजनीतिक जीवन में साम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं है।

आज भारत के मुसलमान अपने भाग्य के उस करार पर खड़े हैं, जहाँ उन्हें निर्भीकतापूर्वक, अपना पथ निर्धारित करना है, सारे मुसलिम समाज के जीवन और मरण की समस्या हल करनी है, वहाँ हम देखते हैं कि प्रतिक्रियावादी मुल्ला और मौलानाओं का नेतृत्व मुसलमानों को विपरीत दिशा में ले जा रहा है। वह उन्हें उकसाता है कि मुसलमान अलग होकर अपना स्वतन्त्र दल निर्माण करें, जिससे कि वे अधिकारियों से समाज के लिए राजनीतिक माँगें कर सकें।

नई राजनीति में जाति, सम्प्रदाय और धर्म के आधार पर किसी भी समाज का संगठन राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है। इसलिए भारत के मुसलमान नई दिशा में आगे आयें और नये नेतृत्व द्वारा राष्ट्र के जीवन में हिंदू-मुस्लिम विभेद मिटा दें। उन तत्त्वों को वे प्रमुख स्थान दें, जिनके द्वारा मुसलमानों का एकीकरण हो। अतएव मुसलमानों का कर्त्तव्य है है कि वे राष्ट्र को एकरूप बनाने वाले सभी अनुष्ठानों में अपना भाग लेकर

वर्तमान विभेदता का जड़ मूल से नाश कर दें। उनके हृदय में इस देश के लिए गौरव हो, गंगा, यमुना, हिमालय, काशी, प्रयाग उनके नए जीवन में प्रेरणात्मक हों। इस देश का प्राचीन इतिहास और महापुरुष उनके लिए गौरवजनक हों। धर्म परिवर्तन का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि भारत के मुसलमान इस देश के मूलभूत गौरव को भूल जायें और उनके हृदय में उसकी महानता का अभिमान न हो। वे चीन के मुसलमानों की ओर देखें। चीनी मुसलमान और बौद्ध में केवल इतना ही अन्तर है कि एक हज़रत मुहम्मद को मानता है तो दूसरा भगवान् बुद्ध को। इसके सिवाय भाषा, वेश-भूषा, संस्कृति, और नाम, तथा रीति रिवाज में चीनी मुसलमान और बौद्धों में कोई अन्तर नहीं है। चीनी मुसलमानों को कनफ्यूशियस का जितना अभिमान है, उतना किसी दूसरे का नहीं है।

नए विधान के अन्तर्गत भारत के मुसलमानों को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से सोचने विचारने की कोई चीज नहीं रही। सारे राष्ट्र के ३५ करोड़ नर-नारी, चाहे वे किसी धर्म या जाति तथा वर्ग के हों, एक साथ जुड़े हुए हैं।

पर आज हम क्या पाते हैं ? मुसलमान राष्ट्रीयता के सभी कामों में विरोध उत्पन्न करते हैं। हिंदी के राष्ट्रभाषा होने में मुसलमान अपने लिए खतरा मानते हैं। पर यह आवाज़ अंग्रेजी सीखने के समय नहीं उठी। अंग्रेज़ी सीखने पर भी उर्दू बनी रही और विकसित हुई, तब हिंदी राजभाषा के रूप में किसी भाषा का किस प्रकार नाश कर सकती है। एक भाषा होने पर भारत की सब जातियाँ एक दूसरे के अधिक निकट आयेंगी।

मुसलमान इस देश को ही अपना देश मानें और पाकिस्तान के राजनीतिक और मजहबी जहालत के मकसद को कतई छोड़ दें। उनमें किसी भी अवस्था में धर्मांधता तथा जहालतपन न होना चाहिए। यदि उनकी निगाह हर समय बाहर की ओर रहेगी, तो वे कभी इस देश में अपनी स्थिति मजबूत न कर सकेंगे। उनके पैर सदा उखड़े हुए रहेंगे। इस देश पर जो भी बाहरी राष्ट्र संकट ढाये उसके खिलाफ उनकी भी

आवाज अन्य लोगों के समान बुलन्द होनी चाहिए ।

उनके दूसरे सहधर्मी देश चाहे पाकिस्तान हो या और कोई, उन के जीवन के ध्येय न हों। अपितु, वे अपना ऐसा नया जीवन निर्माण कर, जो ऐसी एक राष्ट्रीयता का प्रतीक हो, जिससे अन्य देश चकित हो जाएँ वे अपना पुराना जीवन, और उस काल की भावनाओं तथा विचार-धाराओं का परित्याग कर दें। राष्ट्र-विरोधी कार्य उनके लिए सदा अमान्य हों।

इस स्थिति में भारतीय मुसलमान परीक्षा की स्थिति में खड़े हुए हैं। उन्हें गम्भीरतापूर्वक तय करना है कि वे इस देश में यहाँ की राष्ट्रीयता से अनुप्राणित होकर रहना चाहते हैं या अब उनकी निगाह पाकिस्तान की ओर है। आए दिन, मुसलमानों के जो कार्य दिखते हैं, वे इस देश में उनकी स्थिति संदेहजनक बना देते हैं। यह प्रकट है कि भारतीय ढाँचे में विरोधी तत्वों को कोई स्थान नहीं है। सभी सम्प्रदायों को बहुमत का हो या अल्पमत का, पृथक्ता त्याग देनी होगी।

हर एक मुसलमान समझ ले कि राजनीतिक पृथक्ता तथा साम्प्रदायिकता से उसकी दुरवस्था दूर न होगी। उसे उन राष्ट्रीय मुसलमानों का अनुकरण करना चाहिए जो सदा पहले अपने को भारतीय मानते आए हैं और जिन्होंने साम्प्रदायिक तूफ़ानों के बीच में भी अपने को भारतीय माना है। जिन मुसलमानों ने आर्थिक स्वतन्त्रता के युद्ध में किसान और मजदूरों में अपने को मिला दिया है, वे नए समाज की रचना करने में अग्रगामी होंगे। इसी में मुसलमानों की मुक्ति निहित है।

अंग्रेज पाकिस्तान की शकल और सूरत में एक ऐसी चीज़ बनाकर गए, जो मुसलमानों की ज़िन्दगी हराम किये रहेगी। उन्हें कभी सुख से नींद नहीं आएगी। पर भारत के मुसलमान अपने जीवन का रवैया बदलकर अंग्रेजों को खुली चुनौती दे सकते हैं। मगर यह तब मुमकिन है कि जब मुसलमान बड़ी कीमत चुकाने के लिए तैयार हों। वे इस देश की ज़िन्दगी में घुल-मिल जायँ। राष्ट्रीय मुसलमानों का कदम उनके लिए मार्ग-दर्शक हो। वे देखें कि राष्ट्रवादी मुसलमानों को कुछ कम तबाही

नहीं उठानी पड़ी । एक ओर मुसलमानों ने उन्हें दुतकारा तो दूसरी ओर हिंदुओं ने उन पर शक किया । मगर वे इन दोनों थपेड़ों के बीच में से आगे बढ़े । अंग्रेजों के जमाने में राष्ट्रीय क्षेत्र में आनेवाले मुसलमानों के लिए यह भी मुमकिन था कि वे एक रास्ते से आयँ और दूसरे से निकल जायँ । पर आज तो वह कुछ संभव नहीं है ।

पाकिस्तान का काम हमेशा भारत के खिलाफ़ जिहाद छेड़े रहने का रहेगा । वह कभी भारत के साथ भाईचारे के बर्ताव में आगे न बढ़ेगा । भारत की हर बात को ठुकराने में वह अपनी प्रतिष्ठा समझेगा । पाकिस्तान के संतोष के लिए यह देश चाहे जितनी कुर्बानियाँ करे, किंतु वह कभी सीधे पैर न उठाएगा । काश्मीर के मामले में उसने जो कुछ किया, उसे संसार अच्छी तरह जानता है ।

महात्मा गांधी ने यह कामना की थी कि पाकिस्तान के साथ उदारता का बर्ताव करने से न केवल काश्मीर का मामला तै होगा, बल्कि अन्य सब परिस्थितियाँ शांतिपूर्ण रूप से सुलझ जायँगी । किन्तु पाकिस्तान ने इन सब रियायतों से भारत की कमजोरी समझी, और दोनों राज्यों के बीच के मामलों में उसने कड़ेपन का रुख अख्तियार किया । पाकिस्तान और भारत का पिछले चार वर्षों का इतिहास उसकी अड़ंगेबाजी का उदाहरण है ।

काश्मीर का मामला उलझन में पड़ा है, हिन्दू और सिख शरणार्थियों की अरबों की सम्पत्ति का रुपया चुकाने की उसकी कोई नीयत नहीं है, बकों में जमा किया हुआ जेवर, रुपया और अन्य सम्पत्ति भी विस्थापितों को वापस नहीं मिल रही है । केन्द्रीय सरकार ने इस दिशा में पाकिस्तान के साथ रियायतों पर रियायतें कीं किंतु पाकिस्तान ने अन्त में अँगूठा ही दिखाया । जमीन जायदाद के सम्बन्ध में उसने दो टूक जवाब दे दिया कि चूँकि कृषिजन्य जमीन की उत्पादन शक्ति इतनी कम हो गई है कि उसे भारत को कुछ नहीं चुकाना है । यह कैसी विचित्र बात है कि विभाजन के उपरान्त पाकिस्तान की खेती-बारी की जमीन एकबारगी उत्पादन-शक्ति

खो बैठी कि उसमें एक दाना पैदा नहीं हुआ। इस प्रकार धोखा कब तक दिया जा सकेगा। फ़ौजी कार्रवाइयाँ और सीमाप्रान्त की छेड़-छाड़ पाकिस्तान के लिए आम बात है। इसके सिवा पूर्वी बंगाल में जो साठ-सत्तर लाख हिन्दू बचे हैं, यह प्रकट है कि वे उस इलाके में न रहने पायेंगे।

पाकिस्तान की इन हरकतों से हिन्दू और सिखों में जोश आता है और देश की राजनीति में नया उबाल आता है। उस समय जंग की-सी हालत खड़ी हो जाती है। साधारण लोग शासन पर जोर डालते हैं कि वह पाकिस्तान के प्रति कड़ा रुख अख़्तियार करे। उन का कहना है कि सरकार कब तक इस कायरता के आगे झुकती रहेगी। इसी समय साम्प्रदायिक जमातों के जहरीले नारे लगते हैं।

इन परिस्थितियों का सामना भारतीय मुसलमानों को करना है। चीन के मुसलमानों के लिए चीन की राष्ट्रीयता और चीन के हिताहित सब कुछ हैं। चीन के मुसलमान चीनी बौद्धों के ख़िलाफ़ अन्य मुसलमान राष्ट्रों का कोई लिहाज न करेंगे। चीन यदि किसी मुसलिम देश से लड़ता है तो चीनी मुसलमान अपने देश के लिए युद्ध में आगे आते हैं। भारतीय मुसलमानों का भी यह मार्ग होना चाहिए। यदि वे इन संकटों में से बाहर आयेंगे और अपनी प्रबल राष्ट्रीयता का ज्वलंत उदाहरण संसार के सम्मुख उपस्थित करेंगे, तो वे पाकिस्तान का रवैया बदल देंगे, और इस देश के सम्प्रदायवादी हिन्दुओं को रास्ते पर लायेंगे।

इसलिए भारतीय मुसलमानों को आगे आनेवाले दिनों में महत्त्व पूर्ण पार्ट अदा करना है, वे अपने काम से भारत को मजबूत बनाकर एशिया का नक्शा बदल सकते हैं।

२६

नेहरू, भारत और विश्व

स्वतन्त्र भारत में उत्पादन और उपज-वृद्धि के समस्त आन्दोलनों में भाग्यशाली शासक और निरीह बदकिस्मत शासितों के बीच में बराबर दुर्भावना बढ़ती हुई पाई गई। देश के इस चित्र को राष्ट्र के उस कर्णधार को भी स्वीकार करना पड़ा, जिसके हाथ में शासन की बागडोर है। पिछली घटनाओं ने देश में अधिक ग़लतफ़हमियाँ पैदा कीं। सरकार के कार्य-कलाप जनता के हृदयमें विश्वास उत्पन्न न कर सके। वह सदा निरुत्साह सी बनी रही। शासन का कोई ऐसा सक्रिय कदम न उठा, जो जनता को नए निर्माण की ओर खींचता। इस विचित्र स्थिति में कभी-कभी यह ख़याल करना पड़ता है कि हम कहाँ पर खड़े हैं। बड़ी-बड़ी योजनाएँ भले ही चमत्कार-पूर्ण हों, और आकर्षक हों, किन्तु उन का परिणाम क्या होता है।

यह माना कि आज संसार नज़दीक में आ गया है। राष्ट्र एक दूसरे के नज़दीक आ गए हैं। पर आज हम जिन आन्तरिक समस्याओं के बीच में गले तक घिरे हुए खड़े हैं, हमारे लिए क्या उचित है कि हम दुनिया भर की बातें सोचें-विचारें। घर में आग लगी है, लाखों और करोड़ों व्यक्ति अन्नाभाव और बेकारी के कारण बेमौत मर रहे हैं, तब ऐसी अवस्था में संसार की दस्तन्दाज़ी हमारे लिए क्या अर्थ रखती है। हम कैसे भी मौके पर स्थित हों, किन्तु हम तभी अपना और दूसरों का भला-बुरा कर सकते हैं, जब कि हमारी हालत मज़बूत हो। कमज़ोरों को दुनिया में कौन पूछता है।

जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, इसने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अधिक बल दिया। इसने संसार के हर एक संकट पर अपना मत प्रकट

किया। पर उस सब का परिणाम अब तक क्या हुआ। चाहे मध्यपूर्व की घटनाएँ हों, या चीन, कोरिया और मलाया आदि के उपद्रव हों, पर जिन के हाथ में शक्ति है, वे बमबाज़ी करने से पीछे नहीं रहे। कीटाणुओं का युद्ध भी उन्होंने लड़ा। इतना ही नहीं उन्होंने अपने इरादे पूरे करने में अपने साथियों को भी न पूछा। जिसकी लाठी उस की भैंस। राजनीति निर्बलों की साथी नहीं है। उसका पथ कूटनीति का है। सदाशयता और उदारता के सिद्धान्त एवं आदर्श-पालन करने की कल्पना करना मूर्खों के स्वर्ग में विचरना है। इस अवस्था में जिनकी आंखें हों, वे देखें और कान हों तो सुनें तथा दिमाग़ हो तो समझें। आज अमेरिका और सोवियट दोनों ही महादेश—जिन की शक्ति-तले संसार बटा हुआ है, और जिन के नेतृत्व में संसार के देश चल रहे हैं वे विश्व की राजनीति में नैतिकता, सभ्यता और लोकतन्त्रता का कहाँ तक पालन करते हैं। इन शक्तियों के आगे हमारा चीखना-पुकारना बेसुरा सा है। कमज़ोर नेतृत्व पर संसार कब चलता है। पर जो घटनाएँ हो चुकी हैं, वे बिखरे हुए दूध के समान हैं, उन का हम क्या प्रतिकार कर सकते हैं।

> यदि शांति की रक्षा करना है और संसार को ठंडे युद्ध से बचाना है तो उस दिशा में हमें क्रियात्मक कदम उठाना अत्यन्त आवश्यक है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की वैदेशिक नीति का यह तत्व है। इस अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सरकारी तौर पर बड़ी प्रशंसा की गई। यह बताया गया कि हमारी आवाज़ वज़नदार साबित हुई। उसका संसार के देशों पर प्रभाव पड़ा। पर कोई पूछ सकता है कि उसका कहाँ क्या परिणाम निकला। क्या हमारे नेतृत्व से किसी विदेशी शक्ति ने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन किया या उसे बदला। किसी भी शक्ति ने हमारी आवाज़ पर दाद दी? क्या हमारी पुकार से कोरिया के निर्दोष लाखों व्यक्तियों की जानें बचीं? क्या हमारी आवाज़ राष्ट्रसंघ में प्रभावोत्पादक हुई कि जिस से लाल चीन को भी स्थान मिला हो। फारमोसा के सम्बन्ध में भी

हमने कहा, पर क्या वह चीन को दे दिया गया ? क्या हमारी आवाज़ दक्षिण अफ़्रीका के अश्वेतों को अपने जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान कर सकी ? दक्षिण अफ्रीका और भारत तथा पाकिस्तान तीनों ही ब्रिटिश राष्ट्र मंडल के सदस्य हैं, भारतीयों को अफ्रीका में न्याय दिलाने के लिए हम अँग्रेजों तक को प्रभावित न कर सके। क्या हमारी विदेशी नीति ने वीटनाम और ट्यूनेशिया में उपनिवेश-शक्ति का अन्त किया ? ईरान के मामले में भारत बोला। मिश्र का भी उसने समर्थन किया। पर क्या ईरान का तेल और मिश्र के स्वेज़ का प्रश्न हल हुआ। हम अपने घर के नज़दीक देखें। क्या हम गोआ और पांडेचरी को, अपनी आवाज उठाते ही विदेशी शासन से मुक्त कर सके। इन सब का क्या उत्तर है, नहीं, नहीं, और नहीं ! तब हमारी यह निरपेक्षता किस अर्थ की है ? यदि हम निरपेक्ष हैं, तो उस से हमारे लिए अभिमान की कौनसी बात हुई ? डेन्मार्क, नारवे, स्विटज़रलैण्ड, यूनान, यूरेगे, बोलविया, तथा पेरू आदि कहाँ तक निरपेक्ष हैं ?

क्या हमने नहीं सोचा कि सच्ची निरपेक्षता वास्तविक शक्ति से प्राप्त होती है, अथवा वह सब क्लीबता है, अपौरुषेयता है।

क्या हमारी वर्तमान राजनीति ने हमें घर का या घाट का कहीं का न रखा ? काश्मीर के प्रश्न पर महाशक्तियों ने हमारे खिलाफ़ क्यों रुख अख़्तियार किया। क्या इस दृष्टि से हमारी निरपेक्षता हमें महँगी नहीं पड़ रही है ? हम चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रांगण में अग्रसर हुए होते और अपनी कौशलता से महाशक्तियों का सहयोग प्राप्त करते तो काश्मीर का प्रश्न हमारी आकाँक्षाओं के अनुकूल हल होते विलम्ब न लगता। उस अवस्था में दक्षिण अफ्रीका के गोरों को भी साहस न होता कि वे भारतीयों की नागरिकता छीनते। पर हमने अपनी विदेशी नीति द्वारा अपनी निर्बल अवस्था बना ली है, कि कोई भी छोटी या बड़ी शक्ति हमारी पर्वाह नहीं करती है। जिस चीन को हम अपना मित्र मानते हैं, वह तिब्बत में प्रवेश कर गया है। चीनी सेनाएँ तिब्बत से आगे भारत के नज़दीक पहुँच रही हैं। यह सब देख सुनकर भी हम शान्त हैं। ज़रा सा

सीलोन भी हमारी पर्वाह नहीं करता, उसने भी भारतीय मजदूरों को खदेड़ने के लिए जङ्ग छेड़ रखा है। इस पर भी हम कहते हैं कि वह हमारा छोटा भाई है, हम उस से लड़ना नहीं चाहते। पर हम यह नहीं सोचते कि कोई पशु या जन्तु भले ही किसी की हिंसा न करे, किन्तु यदि हम अपना प्रभाव खो दें, तो सब उसे समाप्त कर देंगे। सड़क पर खड़ा हुआ साँप फुफकारना छोड़ दे तो सोचिए कि उसकी क्या दुर्गति होगी। उस पर लातों के प्रहार होंगे और लोग घसीटते फिरेंगे। इसलिए, बिना शक्ति के संसार में कहीं कोई पूछ नहीं है।

हमने इंग्लैंड का भी पथ अनुसरण नहीं किया। चीन व सोवियत रूस के सम्बन्ध में वह अमेरिका का समर्थक नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन ने चीन के शासन को मान्यता दी और राष्ट्रसंघ में उसके प्रवेश का समर्थन किया। सोवियत रूस से समझौते के सम्बन्ध में इंग्लैंड की मजदूर सरकार ही नहीं बल्कि अनुदार दल के चर्चिल तक समर्थक हैं। पर बावजूद इस सब रुख के व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से ग्रेट ब्रिटेन अपनी गिरी हुई अवस्था में वह अपनी आर्थिक समस्याओं के हल में अमेरिका से हर प्रकार का सहयोग प्राप्त करता है।

राजनीति कोई धर्म का खाता नहीं है। वह तो देन-लेन की चीज है। कोई राष्ट्र हो, चाहे अमेरिका हो या रूस, बिना अपने स्वार्थ के किसी को सहयोग देने के लिए तत्पर नहीं हो सकता है। संसार मोल-तोल के आधार पर आगे बढ़ता है।

यह कहा जाता है कि राष्ट्रसंघ लोकतन्त्र देशों की सुरक्षा के प्रति जो निर्णय करेगा, उसके विमुख भारत न जायगा। यदि राष्ट्रसंघ ने लोकतन्त्र देशों की ओर से युद्ध छेड़ दिया तो उस अवस्था में क्या करेगा। क्या वह युद्ध से बचा रहेगा ? इस सम्बन्ध में बताया गया कि भारत इस अवस्था में युद्ध से बचा हुआ नहीं रह सकता।

निरपेक्ष और पृथक्त्व की राजनीति का संसार के आगे कोई महत्त्व नहीं है। इस अवस्था में दूसरे राष्ट्र यही कह सकते हैं कि भारत इसलिए निरपेक्ष

है कि उसमें इतना साहस नहीं है कि वह कोई विरोध कर सके। पृथक्त्व के सम्बन्ध में भी दूसरे देश भारत को कमजोर बतायँगे। इसी प्रकार किसी पक्ष में शामिल न होने की बात से भी दूसरे देश यही समझते हैं कि भारत का क्या साथ दिया जाय, जो संकट पड़ने पर साथ न देगा। संभवत: इन्हीं सब कारणों से भारत को अब यह कहना कि उसकी नीति निरपेक्ष होते हुए भी स्वतन्त्र है। हर मामले में वह उसके पहलुओं पर विचार कर अपना निर्णय करता है।

यह बताया गया कि भारत राष्ट्रसंघ के प्रत्येक प्रश्न पर अपनी स्वतन्त्र नीति का उपयोग करता है। उसने लाल चीन के राष्ट्रसंघ में प्रवेश होने का समर्थन किया, किन्तु उसने यह विश्वास नहीं किया चीन रूसी ब्लाक का अंगीभूत है। चीन के कम्युनिस्ट होने पर भी भारत ने राष्ट्रसंघ में उसकी सदस्यता का जो समर्थन किया, उसका यह कदापि अर्थ नहीं कि वह कम्युनिस्ट बन गया है। चीन का समर्थन करने पर भी भारत कम्युनिस्टों की गतिविधि का विरोधी है।

भारत ने किसी राष्ट्र की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का ख़याल किए बिना ही यह ऐलान किया कि राष्ट्रसंघ की सेनाएँ कोरिया में विभाजित रेखा के पार न जाएँ। इसके सिवाय भारत ने राष्ट्रसंघ में इस बात का समर्थन किया कि उत्तरी कोरिया आक्रांता है। किन्तु यह प्रकट करने पर भी उसने अपनी सेनाएँ कोरिया युद्ध में भेजने से इन्कार कर दिया। जापान के प्रश्न पर उसने अमेरिका की अप्रसन्नता की परवाह किये बिना राष्ट्रसंघ की संधि को नहीं माना। ये कुछ ऐसी बातें प्रकट की जाती हैं, जो भारत की निरपेक्ष तथा स्वतन्त्र नीति के सम्बन्ध में हैं।

किन्तु इस निरपेक्षता तथा स्वतन्त्रता के बीच में भारत लोकतन्त्र देशों की ओर अधिक झुका हुआ है। एशिया में उसकी वर्तमान स्थिति के कारण, अमेरिका उसे अपनी ओर खींचता जा रहा है। परन्तु राजनीति यहाँ वह खेल नहीं खेल पाती है, जो मध्यपूर्व के देश इंग्लैंड और अमेरिका के साथ खेल रहे हैं। भारत भी अपनी स्थिति से लोकतन्त्र देशों को

अपनी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ अपने अनुकूल हल करने के लिए मजबूर कर सकता था। पर भारत का द्वार लोकतन्त्र देशों के लिए खोल कर भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ वैसे ही खड़ी हैं। इसे हम क्या कहें? इस चाल में तो वह मात खा रहा है।

यह ठीक है कि हमने अपनी निर्भीक आवाज द्वारा सुदूर-पूर्व और मध्य-पूर्व के कुछ देशों का विश्वास अर्जन किया है। उनकी सहानुभूति और सहयोग वर्तमान स्थिति में इस देश के लिए बड़ा उपयोगी है। अरब देशों का गुट पाकिस्तान के भारत-विरोधी आन्दोलन करने पर भी इस देश के प्रति सहानुभूति रखता है। ये देश भारत के सहयोग को मूल्यवान मानते हैं।

इस दिशा में भारत ने जो कार्य किया, उसी का परिणाम है कि पाकिस्तान के मुसलिम-संघ निर्माण के मंसूबे सफल नहीं हुए। अनेक प्रयत्न करने पर भी मुस्लिम कान्फ्रेंस का आयोजन सफल नहीं हुआ। इस दृष्टि से भारत के विदेशी राजदूतों ने मध्य-पूर्व में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। आज संसार का यह भाग सुलगता हुआ मशाल सा है, उसमें ज़रा सी बत्ती लगते ही संसार भर में आग लग सकती है।

पाकिस्तान ने काश्मीर के मुसलमानों के नाम पर इन मुस्लिम देशों का सहयोग प्राप्त करने के लिए जबर्दस्त आन्दोलन किया। किन्तु देखा गया कि उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। उल्टे मध्य-पूर्व के मुसलिम देश और प्रधानतः अरब-राष्ट्र भारत के साथ राष्ट्रसंघ के अनेक प्रश्नों के हल में सम्मिलित रूप में आगे बढ़ते हैं। भारत ने यह सहयोग आसानी से नहीं प्राप्त किया। उसे मध्य-पूर्व के देशों के समर्थन में अमेरिका और इंग्लैंड का प्रकोप सहना पड़ा।

किन्तु एक ओर यह सफलता की तसवीर है, जो भारत की निर्भीक वैदेशिक नीति के द्वारा बनी, किन्तु दूसरी ओर उसने इस देश के अनेक प्रश्नों को आज तक हल नहीं होने दिया। पाकिस्तान मुसलिम देश है, किंतु उस ने काश्मीर की समस्या के खयाल से ईरान, मिश्र और ट्यूनेशिया के सम्बन्ध में

अमेरिका और इंग्लैंड आदि राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ही मौन धारण किया। पाकिस्तान की ऐसी ही राजनीतिक चालों ने काश्मीर के सम्बन्ध में उसकी स्थिति मज़बूत की। अब विदेशी समस्याओं की भी यही स्थिति है, जो भारत के पक्ष में आज तक हल नहीं हो पाई और वे उलझी पड़ी हैं। भारत अपनी इस सफलता और असफलता के बीच में झूल रहा है। अगले वर्षों में भारत की बाहरी समस्याएँ हल होनी हैं। कहा नहीं जा सकता कि उनके निर्णय का इस देश पर क्या प्रभाव पड़ेगा। कारण सभी समस्याएँ खतरों से खाली नहीं हैं। उन से न केवल दो देशों के बीच में, बल्कि संसार भर में युद्ध की ज्वाला भड़क सकती है। भारत ने अब तक शान्ति के लिए प्रयत्न किया, किन्तु यह स्पष्ट है कि वह सबल हो या निर्बल, किसी अन्याय के आगे नत-मस्तक न होगा। यदि कोई उसकी स्वतन्त्रता के साथ खिलवाड़ करेगा, तो भारत भी भीगी बिल्ली की तरह झुक न पायगा। उसे तब मजबूरन युद्ध करना पड़ेगा। वह अपने महान् आदर्शों को खोकर ज़िन्दा नहीं रहना चाहता।

२७

साम्यवाद और भारत

यह तो प्रकट है कि भारत में लोकतंत्र शासन होने पर भी साम्यवाद उसे चारों ओर से घेरे हुए है। वह देश के प्राङ्गण में भी प्रवेश कर गया है। यह देखकर स्वतंत्र जगत् के लोकतंत्र देश चिंतित हो उठे और उन सब ने भिन्न-भिन्न रूप से उस के प्रभाव को क्षीण करने के लिए प्रयत्न किए। अमेरिका इस दिशा में सब से अधिक अग्रगामी हुआ। पर इस सब के बावजूद यह कहा जा सकता है कि साम्यवाद के शिकार के खतरे से भारत बच गया? क्या तोड़-फोड़ के काम खत्म हो गए?

देश का वह जन-वर्ग जो सोवियट रूस और लाल चीन के डिक्टेटर-शिप के तरीकों के प्रति सहानुभूति रखता है और उन से लाभ उठाना चाहता है, उन्हें आगे बढ़ने से रोकने के लिए अमेरिका अपनी योजनाएँ, भेंट और सहायता से छा जाने के लिए अग्रशील हुआ। इस साम्यवाद को रोकने के लिए अमेरिका ने भारत के अनेक विरोधी वक्तव्य और प्रति-वादों के कड़ुए घूंट को पीकर सहायता का हाथ बढ़ाया। विगतकाल में भारत और अमेरिका के सम्बन्धों में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

भारतीय साम्यवादी दल ने फरवरी १९४८ से सन् १९४९ तक जिस तोड़-फोड़, हत्याओं और बमबाज़ी की नीति का अनुसरण किया, उस से वह देश में अकेली पड़ गई। एकान्तता के कारण यह आम सहायता से वंचित हुई। इस से उसकी शक्ति क्षीण हुई कही जा सकती है। किन्तु फिर भी उसे अप्रकट स्रोतों से सहायता कम न मिली। जनवरी १९५० में कोमिनफार्म ने बुखारस्ट में साम्यवादियों के लिए

एक मार्ग——नया मार्ग प्रदर्शित किया, जिसके अनुसार साम्यवादी दलों के दोनों पक्ष एक हो गए। संयुक्त रूप से दोनों पक्षों की कार्रवाई एक साथ बढ़ी। पर यह कार्य धीरे-धीरे प्रगति पाया। सन् १९५१ के मध्य में भारतीय साम्यवादी दल यह घोषित करने में समर्थ हुआ कि उसने तोड़-फोड़ और हिंसात्मक कार्यों को त्याग दिया है और भविष्य में वह शांतिमय वैधानिक तरीके से आगे बढ़ेगा। इसी का यह परिणाम हुआ कि साम्यवादी दल नए निर्वाचन में भाग ले सका। इस दृष्टि से साम्यवादियों को निम्नलिखित सफलता प्राप्त हुई :——

(क)——दक्षिण भारत के कुछ भागों में नियंत्रित शक्ति प्रकट हुई। मद्रास, ट्रावनकोर-कोचीन और हैदराबाद और कुछ उन विशिष्ट सैनिक नाकेबंदी के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में जो साम्यवादी चीन से लगे हुए हैं। सन् १९५२ में हैदराबाद राज्य के जो म्युनिसिपल चुनाव हुए, उसमें साम्यवादियों के पीपल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट ने इन क्षेत्रों में अच्छी सफलता प्राप्त की।

(ख)——विधान मण्डल और संसद् के निर्वाचन में साम्यवादी दल को सारे देश भर में प्रायः ५०½ लाख मत मिले। इस प्रकार भारतीय संसद् में साम्यवादी दल विरोधी दलों में सब से बड़ा हुआ।

(ग)——जो कांग्रेसी कांग्रेस छोड़ गए थे, वे साम्यवादी विरोधी जिन-जिन स्थानों पर नहीं रहे, वहाँ साम्यवादियों ने उन्हें निर्वाचन में सहयोग दिया और वे विजयी हुए।

(घ)——साम्यवादियों ने निर्वाचन में समाजवादियों को पीछे हटा दिया। वे बहुत थोड़े से स्थान राज्यों के विधान मण्डल और पार्लमेण्ट में प्राप्त कर सके।

समाजवादियों की असफलता साम्यवादियों की प्रगति का साधन बनी। यद्यपि निर्वाचन में समाजवादियों को देश भर में एक करोड़ मतदाताओं ने मत दिए, किन्तु इतने पर भी भारतीय संसद् और राज्य विधान-

सभाओं में उन्हें इने-गिने स्थान ही प्राप्त हो सके ।

(ङ)—साम्यवादियों ने लोकतन्त्र को चुनौती देनेवाले भावों का देश भर में प्रसार किया और कांग्रेसियों ने इन परिस्थितियों से भयभीत होकर, उनके प्रतिरोध में यह प्रकट किया कि साम्यवाद की वृद्धि इस देश में लोकतन्त्र के लिए महान् खतरा है । राष्ट्रीय-पक्ष ने देश में सर्वत्र साम्यवादियों की वृद्धि होने की आवाज प्रकट कर विपक्षी दल का ही प्रचार किया । कांग्रेसियों ने यह भी कहा कि साम्यवाद की यह प्रगति अगले निर्वाचन काल तक देश को ऐसी परिस्थिति में पहुँचा देगी, कि वह सोचेगा कि इन दो दलों में किसे पसन्द किया जाय । इसका अर्थ यह है कि साम्यवादी दल राष्ट्रीय दल की समान प्रतिद्वंद्विता में पहुँच जायगा । तब भारतीय जनता प्रकट किस का समर्थन करे लोकतन्त्रवादी कांग्रेस का या एकाधिकारी सत्ता करने वाले साम्यवादी दल का । पर यह स्थिति आज भी है । समाजवादी और किसान-मजदूर-प्रजापार्टी के एकीकरण से जो नया समाजवादी दल बना है, उसकी क्रियात्मक शक्ति साम्यवादी दल के मुकाबले में कहाँ तक व्यापक होगी, यह उसकी भावी गतिविधि-पर निर्भर है । समाजवादियों का भी मजदूरों पर असर है । किन्तु साम्यवादी दल किसान और मजदूर दोनों पर अत्यधिक प्रभाव रखता है । देश की ट्रेड यूनियन संस्थाएँ कम्यु-निस्टों के अधिकार में हैं । केवल मद्रास और हैदराबाद के किसानों पर ही नहीं, पंजाब के किसानों पर भी साम्यवादियों का सर्वाधिक अधिकार है । पंजाब के ग्रामों में कम्युनिस्टों की सम्पूर्ण शक्ति आज बीस-तीस वर्षों से लगी हुई है । कम्युनिस्टों के इस प्रभाव का सहज में उच्छेदन करना क्या किसी राजनीतिक दल के लिए संभव है । इस दिशा में कांग्रेस सब ओर से पिछड़ी हुई है । यही कारण है कि कांग्रेसी शासन के प्रति असंतोष प्रकट करने के लिए देश भर के साम्यवादी संगठन एक प्रधान स्रोत बन गए हैं ।

भारतीय साम्यवादी दल ने शिक्षित वर्ग को भी विभाजित करने और अपनी ओर खींचने में पूरी सफलता प्राप्त की है । राजगद्दियों पर से च्युत अनेक शिक्षित नवयुवा नरेश अपनी वर्तमान विक्षुब्ध अवस्था में

साम्यवाद की ओर झुकते जा रहे हैं। मध्य-वर्ग जो कांग्रेस की रीढ़ रहा और जिसके त्याग और बलिदानों से स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ा गया, उस प्रमुख दल को भी साम्यवादी अपनी ओर खींचने में अग्रसर हैं। उनके इसी प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि समाज का प्रभावशाली दल भी साम्य-वाद की ओर झुका। हम देखते हैं कि आज अनेक विज्ञान-वेत्ता, डाक्टर, जज, संसद् तथा विधान सभाओं के सदस्य, वकील, बैरिस्टर, लेखक, पत्रकार, व्यापारी और शिक्षा-विशारद एवं गांधीवादी राजनीतिक नेता तथा अर्थ-वेत्ता भी दिन व दिन साम्यवादी आन्दोलन में अनुराग ले रहे हैं। यह स्थिति क्या एक दो वर्षों में ही उत्पन्न हो गई, इसका निराकरण करना संभव नहीं है।

आज की परिस्थितियाँ कितनी तेजी से बदलीं, उन्होंने ही साम्यवाद का तीव्रता से प्रसार किया। अनेक पदच्युत नरेश अपने शासनकाल में ऐश-आराम का जीवन व्यतीत करते हों, किन्तु उनके पास पूँजी का नाम भी नहीं था। उन्हें धनी नहीं कहा जा सकता। उल्टे वे सदा ऋणग्रस्त रहे। उनके सम्बन्ध में यह उक्ति रही—'आगे-आगे चोबदार, और राजा साहब के पी-छेपीछे कर्जदार।' इससे वे अपनी वर्तमान गई-गुज़री अवस्था में किसी न किसी लक्ष्य से शासन-विरोधी बन गए। उन में प्रतिशोध की आग उठी। उन्होंने निश्चय किया कि जिस दल ने उन्हें सत्ता से विहीन किया, उसे पदारूढ़ कर दिया जाए। उन में वे मूर्ख ही होंगे, जो यह सोचते हों कि वे फिर से अधिकार प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि वे जिन राजनीतिक दलों के इर्द-गिर्द रहेंगे, उन में से किसी का भी लक्ष्य देश में एकतन्त्र शासन स्थापित करना है। किन्तु उनके वर्तमान विरोधी भावों से लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। साम्यवाद को तो आगे बढ़ने के लिए राज्यसत्ता के विरोध का वातावरण चाहिए, वह फिर चाहे लक्ष्य से हो या किन्हीं लोगों द्वारा खड़ा किया गया हो। अतएव हतप्रभ सामंतवादी अपनी वर्तमान अवस्था में इसी से संतोष करते हैं कि उन्हें एक क्रांतिकारी दल का आश्रय मिलता है।

अंग्रेज़ी शिक्षा से दीक्षित वर्ग देश में ऐसा प्रभावशाली अंग है, जो जनता के प्रतिनिधित्व की अपूर्व शक्ति रखता है। वह जहां जनता को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है, वहां अपने नेतृत्व से सरकार को भी अपनी नीति बदलने के लिए मजबूर करता है। यदि वह शिक्षित वर्ग कहीं अधिक साम्यवादी बन गया, तो वह ऐसी स्थिति उत्पन्न करने में आगे बढ़ेगा, जिस से वह शासन के अन्तर्गत और उसके बाहर—दोनों जगह सरकार को परास्त करने के लिए अपने मोर्चे खड़े कर सके। इस दिशा में साम्यवादियों ने अनेक ढंग से कार्य किए। उनके इन कार्यों को और उनके तरीकों को पकड़ पाना आसान नहीं है क्योंकि एक काम सामने आते ही वे बड़ी तेज़ी से उस में परिवर्तन कर डालते हैं। वे अपने विरोधियों को मौका नहीं देते कि उन्हें किसी रूप में पकड़ सकें।

अमेरिका ऐसे देश में शिक्षित वर्ग भले ही कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न रखता हो, किन्तु भारतीय जीवन की वह रक्त-प्रवाह धमनी है। अंग्रेज़ी शिक्षित तरुण दल देश की विचारधाराओं को मोड़ने की अनुपम शक्ति रखता है। वह लोकमत को आसानी से बदलने की क्षमता रखता है। अतः इस शिक्षित वर्ग में खाई पैदा होने पर, उसके प्रगतिशील अंग का रुख साम्यवाद की ओर होगा। इस मध्यवर्ग के साम्यवादी कैम्प में जाने से देश में साम्यवाद आक्रमणात्मक रूप में प्रकट हो सकता है। तब उसका रोकना सहज न होगा।

साम्यवाद के प्रसार के लिए देश भर में जाल-से बिछे हुए हैं। लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए कम्युनिस्टों ने कोई उपाय बाकी नहीं छोड़े हैं। उन्होंने हर प्रकार से साम्यवाद का प्रचार आरम्भ किया है:—

१. सारे देश में साम्यवादी साहित्य की बाढ़ ला दी गई। हर एक प्रदेश और जिले में साम्यवादी साहित्य बेशुमार बिखेर दिया गया। उसमें कुछ साहित्य का प्रकाशन इस देश में हुआ है, किन्तु उसका अधिक भाग मास्को और पेकिंग से आया। इस साहित्य में सोवियत यूनियन की कम्यु-

निस्ट पार्टी का इतिहास और जोसेफ स्टेलिन का जीवन-चरित्र ये दो ऐसे ग्रंथ हैं, जिनका सर्वाधिक प्रचार किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य बीसों ग्रंथ, पुस्तकें-पुस्तिकाएँ और पत्र ढेर-के-ढेर शिक्षित वर्ग में प्रसारित कर दिए गए। देश का शिक्षित तरुण और तरुणियों का वर्ग—जो क्रांतिकारी साहित्य के अध्ययन के लिए सदा क्षुधार्थी रहता है, इस साहित्य को पढ़ने से नहीं चूके। इतना ही नहीं इस क्रांतिकारी साहित्य के आकर्षक प्रकाशन ने राजमहल और अट्टालिकाओं तथा कोठियों तक में प्रवेश किया।

२. साम्यवादी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तेजी से हुआ। मास्को और पेकिंग से आनेवाले अनेक पत्रों के अतिरिक्त अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'क्रॉस रोड' का प्रकाशन किया गया। ब्लिट्ज़ का प्रकाशन दल की ओर से न होते हुए भी साम्यवाद के प्रचार का प्रभावशाली पत्र है। यह पत्र अकेला ही देश भर में व्यापक प्रचार के लिए अग्रसर है। कहना न होगा कि देश में सर्वत्र उस का व्यापक प्रचार है। इसके अतिरिक्त बंग भाषा में दैनिक स्वाधीनता, मलयालम में दैनिक देशाभिमानी, तामिल में जन-शक्ति (दैनिक) तेलगू में दैनिक प्रजा-शक्ति, और उर्दू में नया अदब एवं हिंदी में साप्ताहिक जनतन्त्र आदि का प्रकाशन, साम्यवादी दल के देशव्यापी प्रचार का द्योतक है। सोवियटलैण्ड और सोवियट भूमि का प्रकाशन, हिंदी, अंग्रेजी के सिवाय अन्य कई भाषाओं में होता है। सोवियटलैंड के सुन्दर और सस्ते प्रकाशन से उसकी माँग देश भर में बढ़ रही है। कम्युनिस्ट पार्टी के पास इन पत्रों के प्रकाशन के लिए धन का अभाव नहीं है। उल्टे पार्टी इस प्रतीक्षा में है कि उस के अधिकार में देश के चलते हुए प्रभावशाली पत्र आ जायँ। इस दृष्टि से वह बड़े-बड़े प्रेस और समाचार-पत्रों को खरीदने के लिए व्यग्र है। पार्टी यह चाहती है कि हिंदी, मराठी, और कनारसी आदि भाषाओं में नए दैनिक पत्रों का प्रकाशन किया जाय।

३. साम्यवादियों ने देश में अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन किया, जिस में रूस के अतिरिक्त लोह-दीवार के देशों ने प्रमुख भाग लिया। इस प्रदर्शनी ने देश की हजारों और लाखों जनता का ध्यान

अपनी ओर खींचा। देश का व्यापारी वर्ग भी उस ओर आकर्षित हुआ। इस प्रदर्शनी का तात्पर्य जहाँ कम्युनिस्ट देशों के उत्पादनों का प्रदर्शन करना था, वहाँ साम्यवादी तरीकों से भी जनता को प्रभावित करना था। केन्द्रीय सरकार ने यह जानते हुए भी, कि लोह-आवरण के देश भाग ले रहे हैं, प्रदर्शनी के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कीं।

४. भिन्न-भिन्न साइन बोर्ड लगा कर प्रतिनिधि मंडलों का आना-जाना नित्य की बात हो गई। संस्कृति, साहित्य और कला-कौशल आदि के भिन्न-भिन्न नामों से प्रतिनिधि मंडलों का निर्माण हुआ, जिसका सोवियत रूस और लाल चीन में आवागमन जारी रहा। इनके द्वारा साम्यवाद के प्रचार को अत्यधिक बल मिला। इस देश के जो राजनीतिज्ञ तथा विद्वान् मास्को और पेकिंग गए, उन्होंने देश में लौटकर साम्यवादी व्यवस्थाओं की खूबियों से भारतीय जनता को प्रभावित किया। एक प्रकार से इस प्रचार में सरकार का भी सहयोग समझना चाहिए, क्योंकि जो सांस्कृतिक तथा अन्य प्रतिनिधि मंडल पेकिंग और मास्को गए, उनकी व्यवस्था सरकार की ओर से हुई। इन प्रतिनिधियों के उद्‌गारों का कम्युनिस्टों ने अपने प्रचार में पूरा उपयोग किया।

५. इन के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक और अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म आयोजन भी राजनीतिक ध्येय से किए गए, और उनकी व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में हुई। भारत सरकार को पहले से पता रहा कि इन आयोजनों में रूस, चीन और चैकोस्लोवाकिया आदि साम्य-वादी देशों के प्रतिनिधि ही प्रमुख भाग ले रहे हैं। भारतीय-सोवियत-मित्र संस्था के आमंत्रण से रूसी प्रतिनिधि मंडल दो बार भारत में आया, सोवियत कलाकारों का प्रतिनिधि मंडल अपना प्रदर्शनी-साहित्य लाया।

६. अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस और सम्मेलनों का आयोजन और उनमें प्रतिनिधियों के भेजने की व्यवस्था 'कोमिनफार्म' तथा 'वर्ल्ड पीस कौंसिल' के अन्तर्गत हुई। इनमें से एक मास्को आर्थिक सम्मेलन भी है, जिसमें भारत सरकार के प्रतिनिधियों के सिवा, उद्योगपति, व्यापारी वर्ग और

अर्थवेत्ता भी शामिल हुए। ऐसा ही एक सम्मेलन विक्षिप्त बालकों के नाम पर वीना में किया गया। इसके अतिरिक्त रोम और पेकिंग तथा भारत में अन्य अनेक सम्मेलनों की योजनाएँ गर्भ में निहित हैं। भारत-सोवियत-मित्र सोसाइटी अन्य दलों के सहयोग से देश के दो दिमाग—वकील और प्रगतिशील लेखक तथा छात्रों के संगठन में अग्रसर है। भिन्न-भिन्न नामों से इन सब के देशव्यापी संगठन हैं।

७. इन सब आयोजनों में चीन ने जो भाग लिया है, उसे इस देश में 'नया चीन' घोषित किया गया। इसी भावना से प्रेरित होकर सोवियट रूस ने बड़ी गर्मी से इस नारे को बुलन्द किया कि 'नव एशिया का साम्यवाद' इसी आवाज के प्रभाव से भारतीय साम्यवादियों ने चुनाव में रूस और चीन से सहयोग प्राप्त किया। उनकी अन्तर्राष्ट्रीय पूजा के दो मन्दिर हैं—एक रूस में तथा दूसरा पेकिंग में। भारत का शिक्षित वर्ग कम्युनिस्टों के इन एक न एक तीर्थ से प्रोत्साहित हुआ। उनके इस पूजन में भारत सरकार की गतिविधि भी सहयोगपूर्ण रही।

इन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए भारत सरकार और देश का नेतृवर्ग कहाँ तक सजग रहा, यह नहीं कहा जा सकता। कोई ऐसे कार्य प्रकट नहीं हुए, जिनसे कहा जाय कि सरकार ने सोवियट खतरों का प्रतिकार किया हो। कांग्रेस के किसी अधिवेशन में साम्यवादियों की धमकियों की चर्चा नहीं हुई। अलबत्ता मद्रास के प्रधान मंत्री श्री राजगोपालाचार्य ने निःसंकोच यह घोषित किया कि भारतीय कम्युनिस्ट 'एक नम्बर के शत्रु' हैं। साम्यवादियों के निर्वाचन में विजय प्राप्त कर संसद् तथा विधान-सभाओं में प्रवेश तथा सांस्कृतिक और अन्य आदर्शवादी आयोजनों से कोई लाभ प्रकट नहीं हुआ, क्योंकि देश में साम्यवाद का खतरा पहले की तरह मौजूद है और इस स्थिति में भी केन्द्रीय सरकार ने उसे रोकने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किए। यह भले ही कठोर प्रतीत हो, किन्तु साम्यवाद के प्रति भारत सरकार की नीति 'समान पोषण करने वाली' कही जाती है। इस दृष्टि से निम्नलिखित बातें संकेत रूप में प्रकट की जा

सकती हैं:—

१. निर्वाचन के पूर्व साम्यवादी राजबन्दियों को यकायक मुक्त किया गया। ऐसे समय में भारत सरकार का कदम बढ़ाना साम्यवादियों की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त था।

२. स्टेट कौंसिल में राष्ट्रपति ने जिन आठ व्यक्तियों को मनोनीत किया, उन में कम-से-कम दो साम्यवादी विचारधारा के हैं, जिनके स्थान पाने पर क्रासरोड आदि साम्यवादी पत्रों ने हर्ष प्रकट किया।

३. भारत सरकार के आह्वान पर कम्युनिस्ट चीन का सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल भारत में आया। कांग्रेसी संस्थाओं ने उसका खूब स्वागत किया। कम्युनिस्ट डिक्टेटरशिप ने चीन में जो सफलताएँ प्राप्त कीं, उसकी प्रशंसा की गई, और साथ ही यह भी कामना की गई कि भारतीय जनता भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चीन के पथ का अनुसरण करेगी।

४. भारत का सांस्कृतिक मिशन-पेकिंग-भारत सरकार की व्यवस्था से भेजा गया। उसकी नए चीन की यात्रा को अत्यन्त महत्त्व दिया गया। इस प्रतिनिधि मंडल में आधे से अधिक व्यक्ति साम्यवादी विचारधारा के थे, जिन की चीन की कम्युनिस्ट डिक्टेटरशिप के प्रति पूरी सहानुभूति थी। इसके अतिरिक्त मास्को आर्थिक सम्मेलन और सोवियट कला प्रदर्शनी के आयोजन में केन्द्रीय सरकार ने भाग लिया। मास्को सम्मेलन में सरकारी प्रतिनिधियों ने भाग लिया और सोवियट कला प्रदर्शनी का उद्घाटन शिक्षा-मंत्री के द्वारा हुआ। कलकत्ता और बम्बई में गवर्नरों के उद्घाटन करने पर साम्यवादी पत्र यह लिखने से नहीं चूके कि सोवियट भावों से प्रभावित प्रदर्शनियों का गवर्नरों ने अनावरण किया, जो मध्य वर्ग के सांस्कृतिक विभुक्षित युवकों को साम्यवाद की नई प्रेरणाएँ देंगी। देश में साम्यवाद जड़ पकड़ रहा है। एक गांधीवादी नेता ने लाल चीन से लौटकर कम्युनिस्ट डिक्टेटरशिप के अन्तर्गत विकास पानेवाले साम्यवाद और गांधीवाद में पूर्ण समता प्रकट की। उन्होंने गांधी-जीवन को साम्यवाद

के अनुकूल बतलाया। भारत सरकार के प्रचार और विशेषत: फ़िल्म डिवीजन में साम्यवादी पत्रकारों ने स्थान प्राप्त किया और उन के निरीक्षण में प्रचार सम्बन्धी फिल्में तैयार हुई। इन के अतिरिक्त अन्य छोटे-बड़े अनेक उदाहरण हैं, जिन से केन्द्रीय सरकार का साम्यवाद की ओर झुकाव पाया जाता है। जिन आर्थिक और सांस्कृतिक सोवियट आयोजन का देश में प्रचार हुआ है, उन के मूल में क्या वास्तविकता है, इस ओर ध्यान तक नहीं दिया गया। इसकी अपेक्षा ब्रिटिश मजदूर दल के पत्र और लेखकों ने इन सब कार्यों का पर्दाफाश किया।

भारत अमेरिका आदि देशों से जो सहायता प्राप्त कर रहा है, उस सम्बन्ध में साम्यवादियों का यह खयाल है कि वह उनके हित में है। जो भारत साम्यवाद में आगे बढ़ रहा है, उसे लोकतन्त्रवादी देश चाहे जितनी सहायता दें, और चाहे जो निर्माण-कार्य करें, अन्ततः वह उनके लिए सहायक न होगी। श्रीमती रूजवेल्ट ने कलकत्ते में अपने मनोभाव प्रकट करते हुए यही कहा कि वह इस नतीजे पर पहुँची है कि जिन लोगों को हम सहायता इस आशय से दे रहे हैं, उनके प्रति हमें निगाह रखनी चाहिए। यह धारणा सत्य है, क्योंकि सहायता पाने पर भी ये देश लाल चीन न बन जाएँ। श्रीमती रूजवेल्ट ने भारत की अन्तर्राष्ट्रीय निरपेक्षता के प्रति कहा है कि भारत निरपेक्ष रहने के उद्गार प्रकट करता है, किन्तु वह निरपेक्ष नहीं है। भारत यह समझता है कि अपने कार्य और अपनी भावना दोनों दृष्टियों से कब-कहाँ खड़ा हुआ है। लुईशफिशर और सिडनेहर्जबर्ग ने भारत की अन्तर्राष्ट्रीय निरपेक्षता तथा राष्ट्रसंघ में काश्मीर के मामले पेश करने आदि के सम्बन्ध में भर्त्सना की।

सोवियट रूस और लाल चीन भारत के साथ कहाँ तक खड़े हैं, यह देखना है। काश्मीर के प्रश्न पर सोवियट रूस ने भारत का कभी-कभी छोड़ कर कभी साथ नहीं दिया। एक बार वह तब बोला, जब उस ने देखा कि काश्मीर साम्यवादियों का गढ़ बन गया है। लाल चीन का भारत से यही मैत्रीभाव रहा कि उसने तिब्बत पर अपने पूरे पैर जमा लिये। आज

की परिस्थितियों में क्या तिब्बत भारत का नहीं हो सकता था। इस प्रकार समूचे तिब्बत के अधिकार में आने के उपरान्त भारत को साधारण सुविधाएँ दी गईं।

भारत में अकाल और क्षुधा-पीड़न से अनेक प्रदेश पीड़ित हुए और आज भी वह संकट मौजूद है। संसार के अनेक देशों ने अन्न, धन, दूध और औषधियों आदि के रूप में सहायता प्रदान की। किन्तु किसी देश ने यह नहीं कहा कि यह सहायता देश के अमुक भाग में अमुक राजनीतिक दल द्वारा वितरित की जाय। किन्तु विदेशी कम्युनिस्ट देशों की सरकारों ने यह प्रकट किया कि उनकी सहायता मद्रास की कम्युनिस्ट पार्टी को दी जाय जो मद्रास के विभुक्षित हिस्सों में वितरित करेगी। देश के कई प्रदेशों में अकाल और भुखमरी पैदा हुई किन्तु लाल चीन का ध्यान केवल मद्रास की ओर गया, जो भारतीय कम्युनिस्टों का केन्द्र है। इस से प्रकट है कि भारत के इन मित्रों का रुख किस ओर है ?

विधान सभाओं में प्रवेश करने पर भी भारतीय कम्युनिस्टों के विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अन्य देशों ने शासन-परिषदों में कम्युनिस्टों का प्रवेश होना खतरे की घंटी माना है। वे अन्दर जाकर शासन के पलटने का षड़यंत्र करते हैं। भारतीय कम्युनिस्टों के संसद् और स्टेट-कौंसिल के भाषण उनके इरादों को साफ़ प्रकट करते हैं। यह भी ज़ाहिर है कि कम्युनिस्टों के पास अस्त्र-शस्त्र और धन सब कुछ है। भारत सरकार आज तक उन्हें निःशस्त्र नहीं कर सकी। कम्युनिस्ट नेताओं ने सरकार से स्पष्ट शब्दों में कहा कि हैदराबाद के कम्युनिस्ट हथियार न डालेंगे, भले ही उन्हें जंगलों में ज़िंदगी बितानी पड़े।

२८

भारत : राष्ट्रीयता की सीमाएँ

बीसवीं शताब्दी के इस द्वितीय चरण में संसार इतने नजदीक में आ गया कि प्रत्येक देश की सीमा टूट गई, उसकी राष्ट्रीयता का अन्तर्राष्ट्रीयता में विलीनीकरण हो गया। विगत महायुद्ध ने सारे जगत् को एक परिवार में लाकर खड़ा कर दिया। वह देश भी जो कल तक संसार से पृथक् था, अपने रागरंग में मस्त था, जिस की निगाहें देश की सीमा के बाहर नहीं जाती थीं, वह भी पिछली घटनाओं के कारण यह मानने के लिए विवश हुआ कि वह संसार के अन्य देशों से जुदा नहीं रह सकता। इस प्रकार दिन-ब-दिन संसार की दूरी का दायरा घटता जाता है। इस सब का परिणाम यह हुआ कि संसार के सभी देशों की अपनी-अपनी राष्ट्रीयता की संकीर्णता विदीर्ण हो रही हैं। उनका खात्मा होरहा है। आज नए विचारों का एक संसार बन रहा है। इस प्रकार संसार योरुप और अमेरिका तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि नई परिस्थितियों ने भारत और एशिया के देशों को भी उसे मानने के लिए विवश किया है।

एशिया और उसके केन्द्रीय देश भारत आदि भूचाल की ऐसी करार पर खड़े हैं कि उनके आए दिन की घटनाओं के प्रभाव से संसार का कोई देश नहीं बच पाता। अमेरिका जो कल तक संसार की राजनीति से उदासीन था, उसने अब योरुप की राजनीति में ही पैर नहीं रखा, बल्कि दक्षिण एशिया और सुदूर पूर्व के देश उसकी चिन्ता के कारण बन गए। दूसरी ओर रूस और उस के लोह-आवरण के अन्य देशों की गतिविधियाँ सारे संसार में व्याप्त हैं। उसके अपने कार्य भले ही चहारदीवारी के अन्दर

बन्द हों, किन्तु संसार की घटनाओं से लाभ उठाने के लिए वह भी सब जगह मौजूद है।

जब से संसार के राष्ट्र दो गुटों में विभक्त हुए, तब से संसार में दो प्रभावशाली राजनीतियों ने अलग-अलग पैर जमाए। संसार के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक रंगमंच पर ये राजनीतियाँ सभी देशों को अपनी-अपनी ओर खींच लाई। इस प्रकार दोनों राजनीतियों के अनुयायी देश एक ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्लब के अंगीभूत होने पर भी उन के कार्य-कलाप भिन्न-भिन्न हैं। दोनों ही गुटों के देश नए संसार की रचना अपने-अपने नक्शे और आदर्शों के अनुसार करने के लिए प्रयत्नशील हैं। परन्तु आदर्शों के इन जुदे मोर्चों के बावजूद दोनों गुटों के अगुआ संसार का विभेद मिटाने के लिए एक-दूसरे को एक साथ चलने के लिए आह्वान करते हैं।

जहाँ तक लोकतन्त्र देशों का प्रश्न है, उनमें कोई लोह-आवरण नहीं है, कहीं भी दीवार नहीं खड़ी है। उन सब के समाचार, घटनाएँ और स्थितियाँ तथा हित-अनहित के कार्य एक-दूसरे के सम्बन्ध एवं चिन्ता के कारण बन गए हैं। उनकी सारी प्रगतियाँ, कार्य-कलाप और राज्य शासन के सम्बन्ध में कोई बात गोपनीय नहीं रहती, हर एक बात संसार के सामने आती है। किन्तु दुर्भाग्यवश यह बात कम्युनिस्ट देशों के प्रति नहीं कही जा सकती। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक सभी समस्याओं के प्रति सोवियट रूस और उस के अंगीभूत देशों में कहाँ क्या हो रहा है, उस से संसार अपरिचित है। कोई भी बात प्रकट नहीं हो पाती। यह प्रकट है कि इस प्रकार की गोपनीयता और सेंसर रूसी जीवन का सदा से एक अंग रहा है, किन्तु वह इतना कठोर और जकड़ा हुआ कभी नहीं था, जितना आज है।

सन् १९२० और १९३० के बाद भी किन्हीं सीमाओं तक यह संभव था कि संसार रूस के आन्तरिक समाचार जान सके। नई आर्थिक नीति, रूस की पंचवर्षीय योजना, बाध्य-एकीकरण, १९३० का दुष्काल, १९३६ का स्टालिन विधान, और मास्को के मुकदमे आदि की अनेक घटनाएँ

संसार के समक्ष खुले तौर पर आई। किन्तु द्वितीय महायुद्ध के समय भी किन्हीं अंशों तक फिर भी स्वतन्त्रता थी। पर आज तो चीन की दीवार की तरह इतना जबर्दस्त लोह-आवरण खड़ा कर दिया गया है कि जरा से संवाद का मिलना भी दुश्वार है। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के पत्रों में जो समाचार प्रकाशित होते हैं, वे भी बिना सेंसर और आदेश के बाहर नहीं जा सकते। और यह इजाजत बहुत कम मिलती है। बेचारे विदेशी राजदूत तक रूस की भूमि में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण नहीं कर पाते।

स्वार्थ और राज्य-विस्तार की भावनाएँ योरुप के सभी देशों में है। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और हॉलैंड अपने उपनिवेशों को तब तक बनाए रखना चाहते हैं, जब तक उनमें सांस आती रहे। भारत की सीमा पर छोटे-छोटे उपनिवेश फ्रांस और पुर्तगाल के आज भी नहीं हटते हैं। वे संघर्ष की माँग करते हैं। दूसरी ओर सोवियट रूस नए रूप में अपना राज्य विस्तार करने में लगा है। वहाँ भी संसार अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए अग्रसर है। आज वह संसार के निर्बल, और पीड़ित देशों पर छा जाना चाहता है। योरुप, एशिया, मध्यपूर्व और सुदूर-पूर्व के देशों में रूसी गतिविधियों का यही तात्पर्य है कि लोकतन्त्र शासन का अन्त हो जाए।

इस अवस्था में ही संभवत: अमेरिकन को अपनी तटस्थ नीति का परित्याग कर स्वतन्त्र जगत् के सभी लोकतन्त्र देशों का एकीकरण करने और उनके जीवन की गहराई में जाकर मिलने के लिए विवश होना पड़ा। अमेरिकनों के स्वार्थ और विचारों के सम्बन्ध में जो भी धारणाएँ हों; किन्तु एक बात प्रकट है कि उनके साथ दूसरे देशों के लोग स्वतन्त्रता से कार्य कर सकते हैं। हम उन से मतभेद रखें; उन से लड़ें-झगड़ें और उन की कठोर आलोचनाएँ करें, किन्तु फिर भी उन के सहयोग और मैत्री का हाथ नहीं खिंचता है। अमेरिकन जीवन की यह अपनी विशेषता है।

इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय-जगत् में भारत का लक्ष्य स्वार्थपूर्ण नहीं है। वह अपने आर्थिक निर्माण में संसार के किसी देश का अहित नहीं सोचता। आज संसार के दो शक्तिशाली गुटों के मध्य में भारत ही अकेला खड़ा

हैं, वही शान्ति का संदेश दे रहा है, वह उसके लिए प्रयत्नशील है। वह कामना करता है कि शान्ति से ही जगत् का हित होगा, सब प्रकार के युद्धों से संसार मुक्त होगा, तभी आज की संघर्षमयी स्थिति का ही अन्त न होगा बल्कि दोनों गुट एक बनेंगे और सोवियट संघ की वर्तमान लोह-दीवारें भी भंग होंगी। उस स्थिति में लोकतन्त्र और साम्यवाद——दो विभिन्न राजनीतिज्ञों में भी संसार अधिक नजदीक आएगा।

एशिया में भारत लोकतन्त्र शासन का बेजोड़ अनुयायी है। उस के शासन का लक्ष्य न तो अपनी शक्ति द्वारा किसी देश पर अधिकार जमाना है और न अत्याचार करना है तथा न युद्ध करना है। इतना ही नहीं, जो देश इन कामों को करते हैं, भारत अपने हिताहित की भी पर्वाह न कर एवं हानि सह कर भी उनके विरोध के प्रति अपनी आवाज़ बुलंद करता है। उस की राष्ट्रीयता किसी तंग कटघरे में बन्द नहीं है। वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अंगीभूत हो गई है। इसी से भारत सदा अपनी समस्याओं पर विश्व के दृष्टिकोण से सोचता एवं निर्णय करता है। उसने पीड़ित देशों की मुक्ति का निर्भीकतापूर्वक समर्थन किया। इंडोनेशिया की स्वतन्त्रता के लिए उस ने अपनी सारी शक्तियाँ लगा दीं। सुदूर-पूर्व के अन्य देशों की स्वतन्त्रता के समर्थन में भारत आगे आया। यही कारण है कि भारतीय राजनीति से दक्षिण एशिया के देश प्रभावित हुए एवं उसकी ओर झुके। इन देशों ने अपने और भारत के मध्य में कोई अन्तर न रखा। यही कारण है कि भारत और दक्षिण एशिया के कई देश——एक परिवार में परिणत हो गए। सब एक राष्ट्रीयता के नजदीक आए।

आर्थिक संकटों से गले तक फँसे होने की अवस्था में भी भारत ने पीड़ित देशों की आवाज उठाने में अमेरिका की प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता का कोई खयाल नहीं किया। नए चीन के समर्थन में भी उसने अमेरिका की अप्रसन्नता का सामना किया। ग्रेट ब्रिटेन का चीन का समर्थन कूट-नीति का रहा, उसने अमेरिका के आगे अपना सर झुका दिया, किन्तु भारत का चीन के शासन तथा उस के राष्ट्रसंघ में प्रवेश का समर्थन उस की खुली राजनीति का

इज़हार था। अमेरिका नाराज़ हुआ, किन्तु भारत ने चीन के मामले में अपने कर्त्तव्य का पालन किया। पर इस से वह कदापि न समझा जाय कि वह साम्य-वादी बन गया। सोवियट रूस और लाल चीन के प्रति मैत्री भाव होते हुए भी भारत कम्युनिस्टों की गतिविधियों का विरोधी है।

मलाया, इंडोचीन, मिश्र, मोरक्को और ट्यूनिशिया तथा मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व के अन्य पीड़ित एवं संकटग्रस्त देशों की स्वतन्त्रता के प्रति भारत ने अपनी आवाज़ हर बार उठाई। इस के निर्भीक नेतृत्व का लोहा अरब देशों ने बनाया और वे सब अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर पाकिस्तान की अपेक्षा भारत के नजदीक में आए। भारत ने भी मिश्र, ईरान, ईराक प्रभृति देशों की समस्याओं के हल में बिना किसी पक्षपात के सच बातें प्रकट कीं। यद्यपि इन मुस्लिम देशों पर भारत के नेतृत्व का गहरा प्रभाव पड़ा, किन्तु उसे अपना यह नेतृत्व बड़ा मँहगा पड़ा। उसे प्रमुख शक्तियों को नाराज़ करना पड़ा, जो राजनीतिक समस्याएँ उस के सर पर खड़ी हैं, वे इसी से हल न हो पाईं। उस की आर्थिक प्रगति को भी गहरा धक्का लगा। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के कूटनीतिज्ञों-डिप्लोमेटों ने उस के इस कार्य को राजनीतिक मूर्खता प्रकट किया, क्योंकि आज के युग में कोई भी देश अपनी बर्बादी कर दूसरों का हित नहीं करता है। पर भारत ने देखा यही मध्य-पूर्व है, मुस्लिम देशों का जखीरा, जिसमें न जाने कब बत्ती लग जाए। यदि यह गिरोह धर्मांधता का शिकार हो गया, तो भारत को खतरा ही खतरा है। इसलिए उसने इन देशों के राजनीतिक प्रवाह को विनाश के पथ में जाने से रोका। उन्हें सच्चे अर्थों में लोकतन्त्रवादी रहने का प्रयत्न किया। भारत आज भी अपनी राजनीति इन देशों के अंगीभूत करने में प्रयत्नशील है।

पर भारत यह अनुभव करता है कि उसे इस दिशा में लम्बा रास्ता पार करना है। वह अपनी नव-अर्जित स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल में लोकतन्त्र के आदर्श एवं प्रयत्नों से अग्र-शील है। इस में उस का किंचित विश्वास नहीं है कि मानव-स्वतन्त्रता का विनाश करने वाली हिंसात्मक क्रांति और विनाशकारी उथल-पुथल के

द्वारा संसार का अभ्युदय होगा। उसका लक्ष्य तो सदा यह है कि महान् आदर्श की प्राप्ति के लिए उसका मार्ग भी सत्यता का होना चाहिए। इसलिए वह तंग राष्ट्रीयता 'जातिभेद' रंगभेद आदि की संकीर्ण दीवारों को मिटाने के लिए कोई प्रयत्न नहीं छोड़ रहा है।

इस दिशा में वह अपनी राष्ट्रीयता का पतन नहीं चाहता। शताब्दियों के उपरान्त जो महामानव भारत में अवतीर्ण हुआ था, उसने उसे सिखाया कि नैतिकता के सिद्धांत से विचार और कार्य कभी पृथक न होने चाहिए। मानव के लिए सच्चा मार्ग सत्य और अहिंसा का है।

भारत की आवाज़ संसार की समझ में न आए, दूसरे देशों के लोग उसे अपने से जुदी आवाज मानें, पर उसकी वाणी योरुप की नहीं, एशिया की है। आज वह अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का नए विचारों से मेल कर पूर्व और पश्चिम को एक स्तर पर लाने के लिए प्रयत्नशील है। वह नए और पुराने विचारों को नए ढांचे में परिणत कर संसार में प्रसारित करने की कामना करता है।

एशिया की समस्याएँ—भारत की अपनी समस्याएँ हैं। उन के साथ ही वह विश्व की राजनीति में आगे बढ़ा है। वह अपने सारे इतिहास में शांति के लिए सदा प्रयत्नशील रहा है। उसकी सारी प्रार्थनाएँ शांति के उच्चारण में अन्त होती हैं। इस प्राचीन और आज के नवोदित भारत ने महात्मा गांधी को जन्म दिया, जिन्होंने हमें शांति पर चलने का मार्ग बताया। उस मार्ग पर चलकर ही हमने स्वतन्त्रता ही नहीं प्राप्त की, बल्कि उन से भी मित्रता कायम की, जिन से कल तक हमें युद्ध करना पड़ा था।

संसार इसी पथ पर चल कर निर्भय होगा। जब सभी देश दिल और दिमाग से शांति को न भुलाएँगे और निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे के नज़दीक आएँगे, अपनी-अपनी राजनीति को एक दूसरे में घुला-मिला देंगे तब जगत् से आज के द्वेष और भय के बादल मिटेंगे। हम किसी देश का उद्धार करें या उसे सहयोग दें तो हमारा यह लक्ष्य न हो कि हम अपनी राजनीति उस पर थोप दें और उस के राजनीतिक तथा आर्थिक स्वत्व अपने

घेरे में बन्द कर लें।

यदि संसार की महान् शक्तियाँ सच्चाई से इस तत्व को मान लें तो सारे देश मित्रता और सहयोग से आगे बढ़ सकते हैं। न्याय, स्वतन्त्रता और शांति के मार्ग पर संसार के राष्ट्र तभी अग्रसर हो सकते हैं, जब सब को अपने विचार और धारणाओं के अनुसार अग्रसर होने का अवसर मिले।

हम यह अनुभव करें कि संसार एक है, और वह अविभाज्य है। कोई भी देश संसार की घटनाओं से बचा हुआ नहीं रह सकता। वह दिन भी दूर नहीं जब संसार की प्रतिक्रियाएँ सोवियट रूस और उसके साथी देशों को मजबूर करेंगी कि वे घातक बंदिशों को सदा के लिए मिटा दें, अपनी राजनीति को खुली और स्पष्ट प्रकट करें। सोवियट घेरे के देश अंगड़ाइयाँ ले रहे हैं।

भारत जहाँ अपनी राष्ट्रीयता के संकीर्ण दायरे को मिटा रहा है, वहाँ उसकी आन्तरिक प्रतिगामी शक्तियाँ इस दिशा में विपरीत प्रयत्नों में लगी हुई हैं। वे उसे उल्टे पीछे ढकेलना चाहती हैं। धर्म, संस्कृति और जातीयता के नाम पर भारत का राष्ट्र बनना और उस पर आधारित उसकी राष्ट्रीयता देश का अपघात करने वाली है। इस प्रकार की राष्ट्रीयता भारत का रक्त चूसने वाली है। वह उसे संसार में निर्बल बना देगी। यदि भारत कहीं प्रतिगामी शक्तियों के दायरे में पड़ा, तो यह निश्चय है कि उसकी स्वतन्त्रता खतरे में पड़े बिना न रहेगी।

२१

भारतीय स्त्रियों का मोर्चा

जब कांग्रेस ने स्वतन्त्रता का युद्ध छेड़ा था, उस समय अंग्रेज़ और उनके समर्थक प्रतिक्रियावादी भारतीय यह कहते थे कि स्वराज्य का आन्दोलन इने-गिने कांग्रेसियों का है, देश का उस से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर देखा यह गया कि इन कुछ लोगों ने ही सारे देश के लिए स्वतन्त्रता अर्जित की।

आज भारतीय स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में देश की वही प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ उसी पुराने बेसुरे राग को अलापती हैं कि देश में स्त्रियों की स्वतन्त्रता और अधिकारों का आन्दोलन कुछ योरुपीय भावापन्न शिक्षित स्त्रियाँ और उन के ही जैसे विचार रखनेवाले पुरुषों का खड़ा किया हुआ है। देश के स्त्री-समाज से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। बहुजन स्त्री समुदाय नए ढंग के कोई स्वत्व और अधिकार नहीं चाहता है।

पर राष्ट्र भारतीय महिलाओं के उत्थान के प्रति प्रतिज्ञाबद्ध है। महात्मा गांधी के जीवन में कौन-सा आकर्षण था जिस के बल पर नारियाँ चहारदीवारियों की बन्दी अवस्था में से बेड़ियाँ काट कर मैदान में आई थीं। तब उनके माता-पिता, भाई बन्धु और पति आदि सब देखते हुए अवाक् रह गए थे। किसी का वस न रहा था कि कोई उन्हें रोके। तब न पति अपनी पत्नी को रोक सका और न कोई भाई अपनी बहन को और न माता अपनी पुत्री को। मंत्र-मुग्ध के सदृश नारियाँ बाहर खिची हुई चली आई। असहयोग आन्दोलन में भारतीय नारियों के भाग लेने पर सारा संसार चकित हो गया था। इन नारियों ने पुरुषों से भी आगे बढ़कर हर मोर्चे पर शत्रु का सामना किया था। उन्होंने लाठियां खाई, प्रहार सहे, यातनाएँ भुगतीं,

अपमान और भर्त्सनाओं का सामना किया तथा सहस्रों की संख्या में जेलों की चहारदीवारियों में हँसते-हँसते बन्द हुईं।

देश की स्वतन्त्रता में नारियों के इस प्रकार भाग लेने पर कांग्रेस ने कराची के अधिवेशन में जिन मौलिक अधिकारों की घोषणा की, उनमें यह स्वीकृत किया गया कि भारतीय राष्ट्र के नवविधान में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे। लिंग-भेद की दृष्टि से स्त्री-पुरुषों के अधिकारों में कोई भेद न होगा। अतः जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहे सामाजिक हो या राजनीतिक, स्त्री-पुरुष के अधिकारों में भेद न होंगे। परम्परागत धार्मिक विचार और रूढ़ियों के कारण भारतीय स्त्रियों को समाजगत जीवन में हीनवत न रहने दिया जाएगा।

भारत में जब संविधान की रचना हुई, तब कराची के प्रस्ताव का विस्मरण न किया गया। विधान के मौलिक अधिकारों में वैधानिक रूप में स्त्रियों के स्वत्व और अधिकार स्वीकार किए गए। भारतीय संविधान में स्त्रियों के अधिकारों के स्वीकृत होने पर भारतीय संसद् का यह कर्त्तव्य हुआ कि वह इस दिशा में अग्रसर हो।

कहना न होगा कि भारतीय संसद् ने समाज के नवनिर्माण की दृष्टि से एक साधारण-सा कदम उठाया। स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के सम्बन्ध में जो विधेयक उपस्थित हुआ था, उस के विरोध में प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने तूफान खड़ा कर दिया। वह भले ही दफ़ना दिया गया हो, और दूसरे भी दफना दिए जाएँ, किन्तु उन से स्त्रियों की प्रगति न रुक सकेगी। उन की माँगों की पूर्ति की ओर राज्यों की विधान सभाओं और भारतीय संसद् को अग्रसर होना पड़ेगा। सदियों की दासता के जीवन से स्त्रियों का पुनरुद्धार होना समय की माँग है। हमारी स्वतन्त्रता अधूरी रहेगी, यदि देश स्त्रियों की माँग पूरी न कर सका। स्त्रियों की समस्याओं के हल हुए बिना देश का किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। संसार के प्रगतिशील देशों की तुलना में यह देश पिछड़ा हुआ रहेगा, यदि वह स्त्रियों को समाज में समान स्थान देने की ओर न बढ़ा। आज स्त्री-समाज का

बहुजन समुदाय राष्ट्र के नवजागरण से कोसों दूर हैं, किन्तु वह दिन दूर नहीं जब वे शिक्षित होकर समष्टि रूप से अपने अधिकारों को प्राप्त करके रहेंगी।

आज भले ही भारतीय नारियों का बृहत समुदाय पिछड़ा हुआ हो, और रूढ़ियों की बन्दिशों में फँसा होने के कारण प्रतिक्रियावादी पुरुषों के इशारों पर वह सुधारों का भी विरोध करे, किन्तु जिन जागृत नारियों के हाथ में उनका सच्चा नेतृत्व है, वे उन की स्वतन्त्रता का झण्डा कभी झुकने न देंगी। भारतीय नारियों का वास्तविक प्रतिनिधित्व उन्हीं के हाथ में है। वे ही उन की सच्ची प्रतिनिधि हैं। प्रतिक्रियावादी पुरुष उन के नेतृत्व का कोई अधिकार नहीं रखते हैं। आज स्त्री-समाज के अधिकारों के लिए लड़नेवाली स्त्रियों ने ही स्वतन्त्रता के संग्राम में जिस प्रकार शत्रु से मोर्चा लिया था, आगे आनेवाले वर्षों में वे उसी प्रकार समाज से ही अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़े बिना न रहेंगी। उनका अगला कदम समाज में नव क्रांति का बीजारोपण करेगा।

राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय नारियों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त हुए हैं। भारतीय जनगणना और मतदान-सूची में उन्हें उनके नाम से पृथक स्थान दिया गया है। इन सूचियों में किसी स्त्री को किसी पुरुष की पत्नी, माता या बहन तथा पुत्री के रूप में नहीं सम्बोधित किया गया। मत-दाता सूचीमें प्रत्येक स्त्री को स्वतन्त्र रूपसे उसके नाम से प्रकट किया गया है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि मतदान में पुरुषों से पृथक रूप में स्त्रियों को स्वतन्त्र नागरिक माना गया। इस प्रकार उनका अस्तित्व पुरुषों के पुछल्ले में नहीं रहा। स्त्रियों के आन्दोलन की यह प्रथम विजय है। उन का यह अधिकार ही उन्हें राष्ट्र के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में सहायक होगा।

स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार तेज़ी से होने पर समाज में उन की गति तीव्र होगी। तब वे अपना प्रबल संगठन करने में भी अग्रसर होंगी। यह होने पर ही भारतीय स्त्रियाँ राष्ट्र के जीवन-निर्माण में अधिकाधिक भाग ले सकेंगी। उस अवस्था में देश के राजनीतिक दलों में उनकी प्राधान्यता कायम

होगी। निश्चय ही उस समय भारतीय स्त्रियों का विधान-सभाओं और संसद् में प्रभावशाली प्रतिनिधित्व निर्माण होगा। उन के इस प्रतिनिधित्व के आगे पुरुष झुकेंगे। स्त्रियों के नेतृत्व को ये मंज़िलें पार करनी हैं। उन के पथ में कोई रुकावटें नहीं हैं। जिस दिन वह निश्चय कर आगे बढ़ेंगी कि उन्हें प्रत्येक अवस्था में अपने अधिकार प्राप्त करने हैं, उस दिन किस की शक्ति है कि जो उन के मोर्चे के सामने आएगा। तब वे पुरुष प्रतिनिधियों से अपने अधिकारों की भीख न माँगेंगी। वे स्वयं विधान सभाओं में अपने लिए विधान बनाएँगी।

भारतीय स्त्रियों की प्रगति रुकी हुई नहीं है। राजनीतिक क्षेत्र में उन्हें प्रथम बार इतने बड़े पैमाने पर मताधिकार प्राप्त हुए हैं। जब निर्वाचन में स्त्री-पुरुष का कोई भेद किए बिना सभी बालिगों को समान मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ है, तब विधान-सभाओं और संसद् में उन का अधिक-से-अधिक संख्या में प्रवेश होना एक प्रकट बात है। अतः पुरुषों का परम कर्त्तव्य है कि वे समाज में विषमता उत्पन्न न होने दें। वे नव-राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों को अपने साथ में लाएं। वे पुरानी कल्पनाएँ और कल्पित भावनाएँ त्याग दें।

यह स्मरण रहे कि भारतीय नारियों ने देश के निर्माण में सदा योग दिया है। वे अपने कर्त्तव्य-पालन में कभी पिछड़ी हुई नहीं रही हैं। इसी कर्तव्य की पूर्ति से अधिकारों का प्रश्न उठता है। यदि देश की स्त्रियाँ अपने अधिकारों का प्रयोग कर नागरिक-कर्त्तव्य का पालन करने में अग्रसर होंगी तो उन्हें उन के अधिकार सुलभता से प्राप्त होंगे। अतएव स्त्रियों का नागरिक जीवन में प्रवेश होना परमावश्यक है। इस दिशा में पैर रखना ही उन के कर्त्तव्य-पालन की पहली सीढ़ी है। यदि समस्त नारियाँ इस ओर झुक गईं तो वे इस देश में नई क्रांति खड़ी कर देंगी। तब राष्ट्र का सामाजिक और आर्थिक जीवन ही पलट जाएगा। स्त्रियाँ ही देश का भाग्य निर्णय कर सकती हैं। जिस दिन उन्होंने यह संकल्प कर लिया, कि समाज की नए सिरे से रचना करेंगी, तब किस की ऐसी शक्ति है कि उन्हें रोक सकेगा।

आज विधान सभाओं और संसद् में पुरुष वर्ग उनके अधिकारों के प्रति अनुदारता प्रकट करे, किन्तु उनका बहुमत होने पर वे उनकी ओर मुँह न ताकेंगी। तब उनके प्रतिनिधित्व के आगे पुरुषों के मस्तक झुकेंगे और उनमें जोड़-तोड़ के लिए योजनाएँ बनाएँगे। स्त्रियाँ आगे बढ़ रही हैं, एक बार वे पुनः पुरुषों को नया मार्ग दिखलाएँगी। भारतीय राजनीति में स्त्रियों का व्यापक प्रभाव कायम होने पर वे किसी की सहायता की अपेक्षित न रहेंगी, प्रत्युत पुरुष ही उनके सहयोग की कामना करेंगे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जो सम्भव न हो। भारत के अतीतकाल की घटनाएँ जाने दीजिए, अभी भी इस देश के अनेक सीमावर्ती भागों में समाज में स्त्रियाँ सर्वोपरि स्थान रखती हैं। पर हम उनके प्रभाव प्रत्यक्ष ही क्यों न देखें। अमेरिका में ट्रूमैन को राष्ट्रपति का पद स्त्रियों के बहुमत से प्राप्त हुआ था क्योंकि उनका जीवन स्त्री-समाज की उन्नति में खपा था। इसलिए उनके मतों ने हारती हुई बाजी विजय में परिणत कर दी थी।

भारतीय नारियों को बहकाया नहीं जा सकता। परिवारगत जीवन में उन्हें जो यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं, उनमे वे अपनी पूर्ण निवृत्ति चाहती हैं। शास्त्र और पुराणों की बड़ी-बड़ी बातों से अब काम न चलेगा। समाज को आज की स्थिति में अपना निर्णय करना है, उसे प्रत्येक परिवार का नया निर्माण करना है। यदि पुरुष वर्ग ने नव गठन का अवरोध किया, तो स्त्रियाँ अब इतनी भीरु और निर्बल नहीं हैं कि वे उनके आगे दब जायँगी। उन्हें नारियों के प्रचण्ड प्रकोप का सामना करना पड़ेगा; क्योंकि जिन स्त्रियों के हाथ में अपने वर्ग का नेतृत्व है, उनकी सक्रियता कुछ कम नहीं है। जिन स्त्रियों ने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में पूर्ण बलिदान दिया, वे अपने वर्ग की मुक्ति के लिए आज कब पीछे रहने वाली हैं। उनमें हीनता की भावना तिरोहित हो गई है कि हम पिछड़ी हुई हैं और हमें पुरुषों के ही आधीन रहना चाहिए। जिस कूपमण्डूकता के विरुद्ध वे इतने काल से समाज से संघर्ष करती आई हैं, उससे उद्धार पाने में अब उनके लिए विलम्ब नहीं है।

समाज में देखें कि स्त्रियाँ अब उन्हीं पुरुषों को मत देंगी जो विधान-

सभाओं और संसद् में उनके हितों की रक्षा करेंगे। जनसंख्या में स्त्रियों का अनुपात पुरुषों से कम नहीं है, इसलिए प्रत्येक उम्मेदवार को स्त्रियों के मत अपेक्षित होंगे। ऐसी अवस्था में उनके संगठन और नेतृत्व के आगे नत होना पड़ेगा। पारिवारिक जीवन को सुख-समृद्ध बनानेवाली भारतीय स्त्रियाँ राष्ट्र के प्रांगण में भी अपना कौशल प्रकट करेंगी। आज भी वे राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में भाग ले रही हैं, और यह नहीं कहा जा सकता कि वे किसी में हीन साबित हुई हों। विश्व राष्ट्र-संघ की जनरल एसेम्बली में आज तक संसार की किसी महिला ने भाग नहीं लिया और न किसी देश की महिला आज तक राजदूत बनी। पर पिछड़े हुए भारत की वीरांगना ने राष्ट्र-संघ में जनरल स्मटस् के छक्के छुड़ा दिए थे, सारी जनरल एसेम्बली उसके भाषण से चकित हो गई थी और उसने ही कई देशों में भारत की ओर से राजदूत-पद पर कार्य किया। देश में अनेक स्त्रियाँ शासन में पुरुषों के समान भाग ले रही हैं, कोई संसद् और राज्य-सभाओं की मंत्रिणी हैं, तो कोई अध्यक्ष पद पर कार्य कर रही है। स्त्रियाँ जज, वकील, मजिस्ट्रेट और प्रोफ़ेसर, डाक्टर आदि अनेक पदों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। पुलिस में उनकी सेवाएँ महती साबित हुई हैं। राष्ट्रीय सरकार ने उनके वर्ग की पृथक् पुलिस नियुक्त की है। जब प्राचीन काल में स्त्रियाँ तलवार लेकर शत्रुओं से लड़ी थीं, तब वे आज सैनिक कार्यों में अपनी सफलता प्रकट कर सकती हैं। भारतीय स्त्रियाँ हवाई जहाज़ चलाने लगी हैं। यदि उनके वर्ग ने करवट बदली, और वह अपनी सुषुप्त अवस्था से उठ खड़ा हुआ, तो वे राष्ट्र की ऐसी कौन-सी समस्या है, जिसे हल न कर सकेंगी। भारतीय स्त्रियाँ वर्ग-संघर्ष नहीं चाहती हैं, वे तो देश और समाज के समान कल्याण की कामना करती हैं। पर यदि पुरुष उनके मार्ग में रुकावटें खड़ी करेंगे तो यह प्रकट है कि वर्ग-संघर्ष होगा।

भारतीय स्त्रियों ने नए समाज के निर्माण की दृष्टि से योजना आयोग से माँग की है कि समष्टि रूप से राष्ट्र के कल्याण के लिए प्रयत्न किया जाए। राष्ट्र का तो पुरुष हो या स्त्री सबके प्रति समान न्याय हो और समान

व्यवस्था हो। राष्ट्र की नई अर्थ-नीति के संचालन में कोई वर्गभेद का स्थान न हो। जन्म, जाति, मत, वय और लिंगभेद के विचार से किसी व्यक्ति के प्रति कोई भेद-भाव का बर्ताव न हो।

भारतीय नारियों की यह घोषणा है कि राष्ट्र के नए जीवन में स्त्रियाँ समाज की समान अंग हैं। इसलिए जीवन के हर क्षेत्र में वे समान सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार रखती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, कारबार, शासन और सम्पत्ति के अधिकार वितरण और उत्तराधिकार में उन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार दिए जायँ।

समाज के नए आर्थिक संगठन में स्त्रियों के स्वत्वों के प्रति कोई निर्देश नहीं किया गया है। यह नहीं बताया गया है कि समाज में उनका क्या स्थान होगा? पर यह स्मरण रहे कि किसी योजना के कार्यान्वित करने के समय स्त्रियों की उपेक्षा किसी प्रकार संभव न होगी। फिर मानव-हित की दृष्टि से भी स्त्रियाँ अपने लिए न्याय चाहती हैं। वे यह कभी नहीं चाहती हैं कि उनके प्रति कोई दया की जाए, या उन्हें रियायत दी जाए, वे तो समाज में न्यायतः अपना अधिकार चाहती हैं, इसके लिए वे किसी से भिक्षा नहीं माँगती हैं, वे तो राष्ट्र के जीवन में समान आधार पर आगे बढ़ना चाहती हैं।

समाज में अब तक उन पर जो भयानक एवं अमानुषीय अत्याचार हुए, उनसे ऊब कर वे बाहर निकली हैं। आज उनमें नई चेतना आई है, नव-जागरण उत्पन्न हुआ है। वे यह अनुभव करती हैं कि उनका वर्ग किन-किन प्रथाओं और रूढ़ियों द्वारा कुचला गया। उन पर कितने घोर अत्याचार किए गए। प्रथाओं और रूढ़ियों का धर्म और संस्कृति से कोई संबंध न होने पर भी पुरुषों ने उन्हें धर्म का रूप दिया। यह कैसा धर्म है, कैसी व्यवस्था है जो जीवित प्राणी को पशुवत् बना दे। जो कुछ हो सन् १९३० के आन्दोलन ने स्त्रियों में जो जागरण उत्पन्न किया, उससे भारतीय नारियाँ केवल सामाजिक सुधारों से संतुष्ट होने वाली नहीं हैं, बल्कि वे राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अपने वर्ग का समान अधिकार चाहती हैं। अब वे अपने वर्ग के प्रति भेदभाव का बर्ताव कभी सहन न करेंगी। अगस्त १९४० को राष्ट्रीय

महासभा ने समाज के नव-निर्माण के सम्बन्ध में यह घोषणा की :—

(क)—नियोजित समाज में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के समान होगा। समान पद, समान सुविधाएँ और समान जिम्मेदारियों का लक्ष्य स्त्रियों के अधिकारों की व्यवस्था के प्रति होगा। उनके प्रति कोई भेदभाव न होगा और इस दृष्टि से :—

(ख)—स्त्रियों को केवल इस विचार से कि वे स्त्रियाँ हैं किसी काम के करने से वंचित न किया जाएगा।

(ग)—नागरिक जीवन के सम्पूर्ण और समान उपभोग के लिए विवाह का प्रश्न कोई अड़चन डालनेवाला न होगा। वे स्वतन्त्र रूप से आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का उपभोग कर सकेंगी।

(घ)—राज्य प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष हो या स्त्री) को समाज का बुनियादी अंग मानेगा।

इन्हीं तत्त्वों को मौलिक अधिकारों के रूप में संविधान में भी स्थान दिया गया।

कोई भी व्यक्ति समाज में स्त्रियों की वर्तमान अवस्था देखकर यह कहे बिना न रहेगा कि वे कितनी पिछड़ी हुई हैं। उन्हें अपने अधिकारों का भान तक नहीं है। वे जिस जीवन में रह रही हैं, उससे वे इन अधिकारों के उपभोग से बेहद दूर हैं। उन्हें बहुत मार्ग पार करना है। समाज के जीवन में कानूनी और गैर-कानूनी बंदिशें होते हुए वे कब समान रूप से अपने अधिकारों का उपभोग कर सकती हैं। जब तक उनके अधिकारों का अपहरण करने वाली कानूनी रुकावटें दूर न होंगी, और कानूनी रूप से उन्हें नए अधिकार न मिलेंगे तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रियों का समाज में समान स्थान है। और तब तक स्त्रियों के उद्धार का नव-मार्ग भी प्रशस्त नहीं होता है।

यदि राष्ट्र ने अपने कर्त्तव्य का पालन न किया तो यह स्त्रियों के प्रति विश्वासघात होगा। जब समाज चारों ओर से नई उथल-पुथल के द्वार पर खड़ा है, तब यह प्रकट है कि स्त्रियों का मोर्चा पीछे न रहेगा। उनका

क़दम आगे बढ़ा हुआ है, जो वर्षों का मार्ग दिन और क्षणों में पार कर रहा है। नव विप्लव में भारतीय स्त्रियाँ झंडा ऊँचा किए हुए बाहर आएँगी। तब संसार देखेगा कि भारतीय स्त्रियों ने भारत को एक नया भारत बनाया। वह दिन दूर नहीं है।

३०

विस्थापितों की समस्या : एक नया दर्द

भारत की स्वतन्त्रता अपने साथ बिस्थापितों की भी समस्या लाई। देश का विभाजन हुआ, जहाँ-तहाँ टुकड़े हुए, और लाखों व्यक्तियों को अपना घर-बार, जमीन-जायदाद और सब कुछ छोड़कर शरणार्थी बनकर आना पड़ा। जिस आग और तपन में से पश्चिमी पंजाब, सीमा प्रदेश, सिंध और पूर्वी बंगाल के लोग आए, उस समय उनकी श्वाँस प्रश्वाँस से शोले निकल रहे थे। प्रतिहिंसा, प्रतिशोध और बदला लेने की चीत्कारों से धरती गूँज रही थी। चारों ओर हाहाकार मचा था। उस समय उन्हें शांत करना आसान न था। समय बीता, विस्थापित बसे और काम-काज में लगे। इस प्रकार चार वर्ष बीते। किन्तु विस्थापितों को आज भी शांत करना दुस्तर कार्य है। उनकी समस्याएँ जहाँ की तहाँ खड़ी हैं।

भारतीय जीवन की यह परम्परा है कि लोग प्राण दे दें, किन्तु अपनी जमीन और मकान नहीं दे सकते। एक बार सारा धन चला जाय, पर जमीन-जायदाद न जाय। कोई भी व्यक्ति अपने जीते जी अपनी जमीन नहीं दे सकता। पर विभाजन की बिभीषिका में लोग अपने आत्मीयों की बलि देकर भी एक इंच जमीन नहीं बचा सके। मातृभूमि के जिस भाग में युगों से रह रहे थे, उसका उन्हें बरबस परित्याग करना पड़ा।

विस्थापितों का प्रश्न पिछले चार वर्षों से राष्ट्र को बेचैन किए हुए है। इस दीर्घकाल में राष्ट्रीय सरकार ने विस्थापितों की समस्याओं को सदा प्रथम स्थान दिया। अब तक वह प्रायः दो अरब रुपए उनकी पुनर्स्थापना में व्यय कर चुकी है। इसके अतिरिक्त विस्थापितों को खेती-बारी के लिए

ज़मीन दी गई, उनके रहने के लिए नई-नई बस्तियाँ बनाई गई, बाज़ारों का निर्माण किया गया, कारबार की छूट दी गई और उद्योग-धन्धों के लिए ऋण दिए गए तथा जीवन-निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता दी गई। पंजाब और सिंध के विस्थापितों ने अपने फिर से बसने में अपने पुरुषार्थ प्रकट करने में कमी नहीं की। उनके पुरुषार्थ और राज्य के सहयोग ने इस समस्या को बहुत हद तक हल किया।

इतने पर भी विस्थापितों की समस्याएँ मुँह बाएँ खड़ी है। वे उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती हैं। जहाँ अभी तक पंजाब और सिंध के विस्थापितों का प्रश्न हल करने की समस्या देश के सामने उपस्थित थी, वहाँ पूर्वी बंगाल के विस्थापितों की समस्या अत्यन्त भयंकर है। डेढ़ करोड़ बंगाली हिन्दुओं में से पाकिस्तान में सत्तर-अस्सी लाख हिन्दू रह गए हैं। वे भी वहाँ अधिक काल तक न रह पाएँगे। वहाँ उन पर मुसीबत के पहाड़ ढाए जा रहे हैं। धर्म परिवर्तन, स्त्रियों का अपहरण, उनका सतीत्व नष्ट, आर्थिक प्रतिबन्ध, और दैनिक जीवन की अनेक रुकावटें उनके आगे भयंकर रूप में खड़ी हैं। लाखों बंगाली हिन्दुओं के पूर्वी बंगाल से आने पर भारत सरकार उनके रहने के लिए ज़मीन की माँग नहीं कर सकी। उससे जब कहा गया, तो यह बताया गया कि इस तरह ज़मीन की माँग करना दो देशों में युद्ध की स्थिति पैदा कर देगा। जब भारत की सुख-शान्ति की अवस्था में रहने वाले मुसलमान पश्चिमी बंगाल, और आसाम से पाकिस्तान में जाने के बजाय उल्टे पूर्वी बंगाल से सहस्रों की तादाद में और वापस आते हैं, तब फिर डेढ़ करोड़ हिन्दुओं के लिए ज़मीन की माँग न करना एक विचित्र बात है। क्या भारत सरकार सोचती है कि यदि करोड़-दो-करोड़ मुसलमान भारत को किसी दिन छोड़ें, तो क्या पाकिस्तान इस तरह चुप रहेगा। वह नई ज़मीन पाने के लिए आकाश-पाताल एक कर देगा। और तब वह ज़मीन प्राप्त करके रहेगा। इस समय पूर्वी बंगाल में जो बर्बरता जारी रही है, उससे बंगाली हिन्दुओं का निष्कासन बराबर जारी है। निकट भविष्य में पूर्वी बंगाल, सिंध और पंजाब के समान एकमात्र मुसलिम प्रदेश हो

जाएगा। इस स्थिति में या तो करोड़-दो-करोड़ मुसलमानों को पाकिस्तान में भेजा जाय या इतने हिन्दुओं को बसने के लिए जमीन की माँग की जाए। इस कार्यवाही में भारत का धर्मनिरपेक्षता का आदर्श यथावत् बना रहता है।

विस्थापित वर्ग लाखों और करोड़ों रुपए की सम्पत्ति पाकिस्तान में छोड़ आया है। केवल पंजाब और सिंध के विस्थापित बीस अरब रुपए की सम्पत्ति छोड़ आए हैं। पर पाकिस्तान उनका अनुमान चार-पांच करोड़ रुपए से अधिक नहीं लगाता है। पाकिस्तान कितनी भी सम्पत्ति का मुआवजा देने के लिए तैयार नहीं है। वह तो उस सम्पत्ति को भी नहीं लौटाता है, जो बैंकों में जमा है। एक ओर भारत सरकार का व्यवहार उन मुसलमानों के प्रति कितना उदार है, जो अपनी सम्पत्ति पाकिस्तान में ले जाकर भी यहाँ के नागरिक बनते हैं और इस प्रकार बची हुई सम्पत्ति पर अपना अधिकार प्राप्त करते हैं। ऐसे लोगों की भारत में स्थित सम्पत्ति विस्थापितों के हिस्से में आती थी। पर सरकार की सदाशयता ने इस देश में मुसलमानों की सम्पत्ति को बहुत कम कर दिया और इस प्रकार जो सम्पत्ति बची, उसका मूल्यांकन कम नहीं किया।

सरकार के इस कार्य को क्या कहा जाय? इसे न्याय कहना कहाँ तक उचित है? यह सदाशयता और उदारता है अथवा निर्बलता एवं क्लीवता है। सरकार के इस व्यवहार से विस्थापितों का विरोध बढ़ना और कटु-आलोचक बनना स्वाभाविक है। राजनीति दया की पात्र नहीं है। वह तो यथावत् के मार्ग पर चलती है। यदि हम यथागत व्यवहार न करें तो हमारा दिवाला पिट जाएगा, राष्ट्र हतप्रभ हो जाएगा और तब हम खड़े ही नहीं रह सकते। शठ के प्रति शठता प्रकट करना कर्तव्यवत् है।

क्या कर्त्तव्य का पालन कभी पाकिस्तान की ओर से भी हुआ है? उसने हर मामले में भारत को अँगूठा दिखाया है। जो बातें सामने नहीं थीं, उन्हें भी हल करने के लिए उसने भारत सरकार को मजबूर किया। हर बात में उसने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की, जिससे भारत को उसके हल का प्रयत्न करना पड़ा। कभी किसी भी अवसर पर या किसी मामले में भारत

ने कोई समस्या अपनी ओर से खड़ी नहीं की। यदि भारत सरकार का बर्ताव सजगता और दृढ़ता का होता, उसके किसी निर्देश को न मानती, तो पाकिस्तान सीधे मार्ग पर आए बिना न रहता और उस अवस्था में विस्थापित सरकार के कहीं अधिक समर्थक होते। उस अवस्था में किसी प्रश्न के हल न होने पर भी विस्थापितों का रोष शांत होता। पर वह कुछ न हुआ। इस विशाल देश में जहाँ अनेक भयंकर समस्याएँ राष्ट्र को संकट में डाले हुए हैं, वहाँ विस्थापितों का प्रश्न एक नई मुसीबत है। यह बड़ा पेचीदा सवाल है और पूर्वी बंगाल की घटनाओं के कारण इतना विस्तार पा रहा है कि कई पीढ़ियों तक उसका शान्त होना सम्भव न होगा।

यह प्रकट है कि भारत सरकार ने विस्थापितों के बसाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। भविष्य के लिए विस्थापितों के निवास के लिए करोड़ों रुपए की योजनाएँ कार्यरूप में परिणत हो रही हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि संसार में किसी भी देश में इतने अधिक शरणार्थियों की समस्या कभी उत्पन्न नहीं हुई और जहाँ उत्पन्न हुई वहाँ वर्षों व्यतीत हो गए और वह हल न हो सकी। पर जो भारत चारों ओर से संकटग्रस्त था, उसने अपने इन देशवासियों को गले से लगाया और उन्हें बसाने तथा सुविधाएँ देने में कोई प्रयत्न न उठा रखा। भारत के इस कार्य की दूसरे देशों से तुलना करने पर महत्ता प्रकट होती है। आज देश की जैसी स्थिति है, उससे यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार ने कुछ नहीं किया या उसके साधन असीम हैं, और वह सब कुछ कर सकती है।

पंजाब और सिंध के विस्थापितों की अपेक्षा बंगाल के विस्थापितों का प्रश्न बड़ा नाजुक है। पंजाब और सिंध के हिन्दू और सिख बहुत-कुछ धन-सम्पत्ति साथ में लाए, इसके अतिरिक्त उनका जीवन पहले से उद्योगशील, परिश्रमी और ऊँचे स्तर पर रहा। उनमें शायद ही कोई दीन-हीन रहा हो। इन प्रदेशों के लोग खुशहाल और सम्पन्न थे। किन्तु बंगाल की यह अवस्था नहीं है। वह बड़ा गरीब प्रान्त है। वहाँ के लोग पंजाबी और सिन्धियों के समान कर्मशील और पुरुषार्थी नहीं हैं। वे भीरु और

निर्बल हैं और अपने पैरों पर खड़े होना नहीं जानते। अपने लिए विपरीत परिस्थितियों में अपने ही प्रयत्न से कोई-न-कोई साधन जुटाने में असमर्थ-से रहते हैं। अतएव उनकी अवस्था अधिक कष्टप्रद और चीत्कारपूर्ण है। वे दीन-हीन कंकाल शरीर के रूप में पूर्वी बंगाल से लौटते हैं।

विगत दो वर्षों से पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों का प्रश्न उपस्थित है और वह कब तथा किस रूप में समाप्त होगा, इसे कोई नहीं जानता। इधर पूर्वी बंगाल के विस्थापित पश्चिमी बंगाल में रहना चाहते हैं यह एक विचित्र समस्या है। पश्चिमी बंगाल में पहले से घनी आबादी है। अत: बंगाली विस्थापितों के रहने के लिए बिहार, आसाम और उड़ीसा में व्यवस्था की गई है।

इधर बंगालियों का आना लगातार जारी होने पर भारत सरकार का कर्त्तव्य है कि वह पाकिस्तान के साथ इस प्रश्न को नए सिरे से हल करने का प्रयत्न करे। या तो जनसंख्या का परिवर्तन स्वीकार किया जाए, या आसाम और बंगाल को उस अनुपात में ज़मीन दी जाए। इस दिशा में स्थायी निर्णय होना आवश्यक है। पाकिस्तान के शासन में हिन्दू कभी सुख-चैन से न रह सकेंगे। अत: इस समस्या का किसी-न-किसी रूप में हल होना आवश्यक है। पूर्वी बंगाल की अवस्था है, कि यदि वहाँ की शासन-व्यवस्था और राजनीति का संचालन वहाँ के लोगों के अधिकार में हो तो दोनों बंगालों के बीच की दीवार इतनी नाज़ुक है कि वह कभी भी मिट सकती है। बंगाल के दोनों भाग कभी भी एक हो सकते हैं। दोनों बंगालों की ऐसी समस्याएँ हैं, जो केंद्र से मतभेद रखती हैं। संस्कृति और भाषा और जीवन की एकरूपता राजनीतिक विभाजन को मिटा सकती है। इसके लिए न तो युद्ध की ज़रूरत है और न अखंडता के नारे ही प्रयोजनीय हैं। जिस शांति से भारत से अंग्रेज़ चले गए, उसी शान्ति से दोनों बंगाल संसार के देखते-देखते एक हो सकते हैं।

यदि पूर्वी पाकिस्तान पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं के निष्कासन पर तुला ही हुआ है, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन हिन्दुओं की व्यवस्था करें। पर

यदि वहाँ हिन्दू रहते भी है, तो यह भय निर्मूल नहीं है कि उन्हें इस्लाम स्वीकार न करना पड़े। धीरे-धीरे पाकिस्तानी शासन हिन्दुओं के बड़े भाग को इस्लाम का अनुयायी बना देगा और उसके उपरान्त शेष हिन्दुओं को भारत में आने के लिए मजबूर करेगा। यह सच है कि इतनी विशाल संख्या में लोगों के आने पर देश के सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित होगी। अभी तक पंजाब और सिन्ध के विस्थापितों का प्रश्न हल नहीं हो पाया है। ऐसी अवस्था में बंगाल के करोड़-डेढ़-करोड़ हिन्दुओं का शरणार्थी बनकर आना देश के लिए एक नई तबाही है।

भारत सरकार का कर्तव्य है कि वह पाकिस्तान को सावधान करे कि यह देश इतनी बड़ी संख्या में पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को स्थान देने में असमर्थ है। उसके पास ज़मीन और साधन का अभाव है। किन्तु यदि पाकिस्तान अपने अल्पसंख्यकों की समुचित रक्षा नहीं कर सकता तो उस अवस्था में भारत का कर्त्तव्य है कि वह इस ज़िम्मेदारी को उठाए। हम अपने अस्सी-नब्बे लाख सहधर्मियों को मौत के मुँह में नहीं छोड़ सकते। हम नहीं सह सकते कि उनका नाश हो या वे धर्म-परिवर्तन करें। उन्होंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि हम जीवित रहें और स्वतन्त्रता का भला-बुरा उपभोग करें और वे यातनाएँ झेलें। उनका प्रश्न तो राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है।

पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिन्दुओं की ज़िम्मेदारी से भारत मुक्त नहीं हो सकता है। उसके इस निर्णय का चाहे जो परिणाम हो, किन्तु वह कैसे अपने कर्त्तव्य से च्युत हो सकता है। जब पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं का आना जारी है, तब पाकिस्तान में आज से अधिक उनकी अवस्था क्या नाज़ुक होगी। अत: बंगाल के अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर कान मूँद लेना हमारी कायरता और निर्लज्जता के सिवा और क्या होगा। हमें पूर्वी बंगाल के विस्थापितों का प्रश्न राष्ट्र-संघ के द्वारा हल करना चाहिए। पर वर्तमान अवस्था हमारी निरी निर्बलता की सूचक है। बहुत भला होना भी अपघात का कारण होता है।

भारत सरकार ने विस्थापितों को उनकी सम्पत्ति का आंशिक मुआ-

वज़ा देना निश्चय किया है । भारत में मुसलमान जो सम्पत्ति छोड़ गए है, उसका उपयोग इस मुआवजे में होगा । पर इतने धन से विस्थापितों की आंशिक क्षति-पूर्ति भी पूरी न होते देखकर सरकार ने अपने कोष से भी धन देने का वचन दिया है । बड़े विस्थापितों की अपेक्षा छोटे विस्थापितों को अधिक मुआवज़ा मिलेगा । सरकार ने यह निर्णय विस्थापितों के प्रतिनिधियों के सहयोग से किया है । अतः इससे यह प्रकट होता है कि पाकिस्तान से भारत सरकार को कुछ न प्राप्त होगा । उसने अपनी चाल से सारी सम्पत्ति हज़म कर ली ।

विस्थापितों का कर्त्तव्य है कि वे इस साधारण क्षति-पूर्ति को स्वीकार कर अपने निर्माण में आगे बढ़ें । स्वतन्त्र भारत के नागरिक के रूप में अब वे अपना संयमी और अनुशासनपूर्ण जीवन बनाएँ । अपनी पिछली सब घटनाएँ भूल जाएँ । वीर जाति का यही गुण है । पुरुषार्थी बन्धु कर्मशील हैं, उद्योगी हैं, उनके लिए धन हाथ का मैल है । आज वे जहाँ बसेंगे, उसी भूमि को फिर सोना बना देंगे ।

पर भारत को अपनी इन सन्तानों का बड़ा गौरव है । उनके बलिदान, त्याग और साहस की गाथाएँ भारतीय इतिहास में सदा अमिट रहेंगी । राष्ट्र उन्हें कभी भुला न सकेगा ।

३१

भारतीय लोकतंत्र पर काले बादल

जब भारत ने दीर्घकालीन प्रतीक्षा के उपरांत सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्त की, तब देश के नर-नारियों ने यह आशा की कि अब उनके सुख के दिन आए, वे बिना किसी नए युद्ध के लोकतन्त्र शासन का लाभ उठाएँगे। किन्तु वस्तुतः जनता को यह अनुभव करना पड़ा कि लोकतन्त्र का युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ, उसे तो प्रति क्षण, प्रति पल और प्रति दिन नए रूप में जीतना है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति में आंतरिक जागरूकता हो या न हो, किन्तु लोकतन्त्रता की प्राप्ति बिना उसके कभी सम्भव नहीं है।

हमारे जैसे नए राज्य में जहाँ हमारे लोकतन्त्रीय विचार और अनुभव नहीं से हैं, नए खतरे और समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं, जो हमारी नवलोकतन्त्रता को टुकड़े-टुकड़े कर सकती हैं। किसी हद तक ये खतरे और समस्याएँ एकाधिकार का प्रतिछाया हैं, जो वर्तमान संसार के लिए चिंतनीय बनी हुई हैं। परन्तु हमारे सामाजिक-आर्थिक जीवन में ये अधिक समाए हुए हैं। उन देशों में भी, जो लोकतन्त्रता के जिम्मेदार माने गए हैं, व्यावहारिक रूप में लोकतन्त्र के सिद्धान्तों की अनेक बातें पूरी नहीं हो पातीं हैं। भारत के लिए यही एक गौरव की बात है कि यहाँ कोई दल अपने को फ़ासिस्ट नहीं कहता। सभी अपने को लोकतन्त्रवादी प्रकट करते हैं। प्रतिक्रियावादी, सम्प्रदायवादी और सामंतवादी दल भी लोकतन्त्रवादी होने का दम भरते हैं। इस विचित्र स्थिति में जन-साधारण विचलित हो जाता है, जब वह देखता है कि सर्वोदय, समाजवाद, मार्क्सवाद, सहकारी संघ-राज्य, सामन्तवादी प्रतीक-गणतन्त्रदल, प्रजापार्टी, किसान-मजदूर

प्रजा पार्टी, जनसंघ, रामराज्य, हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग आदि सभी लोकतन्त्रवादी बनते हैं ।

भारत में साधारण जनता लोकतन्त्रवाद का उपभोग निर्वाचन भर के लिए करती है । वह उसके जीवन का आधार नहीं बनता है, जिससे मानव के व्यक्तित्व का विकास होता है और उसके समान अधिकारों की रक्षा होती है । वह दल सत्ताधारी है, और वह दल विरोधी है, और नागरिक इसे या उसे मत देते हैं, अनेक लोगों के लिए ही नहीं प्रत्युत राजनीतिज्ञों तक के लिए लोकतन्त्रवाद का यहीं तक अर्थ मानते हैं । पर लोकतन्त्र यहीं तक सीमित नहीं है । यह तो लोकतन्त्र का बाहरी आवरण है । असली चीज़ लोकतन्त्र के सिद्धान्त हैं, जो उसकी आत्मा के रूप में हैं । यह आत्मा ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, किन्तु भारत में अभी इन तत्त्वों के अंकुर ही विकसित हुए हैं ।

पर भारत में लोकतन्त्र जीवन के लिए लोगों में जिस नैतिकता और सच्चे विश्वास की आवश्यकता है, उसका सर्वथा अभावसा है । वर्तमान परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति में आसानी से लोकतन्त्र के गुणों का विकसित होना कठिन है । लोकतन्त्र के विकास के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं । लोग उसके बुनियादी तत्त्वों को नहीं जानते । उसकी आत्मा को नहीं पहचानते । वह स्वतन्त्रता को किस रूप में स्वीकार करती है, और उसकी विचारधारा का क्या रूप है , इसका भी हर किसी को ज्ञान नहीं है । ऐसी अवस्था में चारों ओर से रुकावटें हैं । बहुमत शासन के ज़ुल्म मानव गुणों की पवित्रता को नष्ट कर सकते हैं । दलगत अनुशासन और दलगत राजनीतियाँ विचार और भाषण की स्वतन्त्रता के लिए रोक हो सकती हैं । ये खतरे काल्पनिक नहीं हैं । पिछले चार वर्षों में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में वे तेज़ी से बढ़े हैं ।

भारत का नव विधान हर दृष्टि से लोकतन्त्रवादी है । उसके सिद्धान्त और उसका ढाँचा—दोनों ही लोकतन्त्र व्यवस्था पर आधारित हैं । उसका प्रधान लक्ष्य है कि भारत में वैधानिक शासन की प्रगति हो । किन्तु इसके

साथ ही उसमें कुछ ऐसी बातें हैं, जिनका विवेचन होना आवश्यक है। हम देखते हैं कि हमारा विधान कानूनों से जकड़ा हुआ है। उसका सारा लक्ष्य आज की स्थिति पर है। ऐसी स्थिति में पार्लमेंटरी व्यवस्था के अनुभव और परम्पराओं के अभाव में वह कहाँ तक कार्य करेगा ? समाजवादी और साम्य-वादी प्रहारों के उपरांत भी वह जीवित बचेगा ? क्या वह इस आधार पर बना है कि देश में अब क्रान्ति न होगी ? इस दृष्टि से उसकी आखिरी रचना हुई है ? वह शासन को स्थायित्व प्रदान कर सकेगा ? भारत के राजनीतिक जीवन को विघटनकारी प्रवृत्तियाँ उसके द्वारा मिट सकेंगी ? क्या वह वर्गहीन समाज का नेतृत्व कर सकेगा ? इस प्रकार के बीसों प्रश्न हैं, जिनका उत्तर देना सहज नहीं है। किन्तु इन प्रश्नों ने उत्तरों पर ही केवल भारत में लोकतन्त्रता की सफलता निर्भर है।

यह प्रकट है कि हमारा विधान लोकतन्त्र राज्य-शासन का प्रतीक है। किन्तु लोकतन्त्र को कार्यरूप में परिणत कर दिखाना संसार में कहीं आसान नहीं हुआ है। भारत में तो वह और भी कठिन है। इस देश का सामा-जिक और आर्थिक जीवन बड़ा विचित्र-सा है। सेक्यूलरिज़्म—धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त के प्रयोग में इतनी अधिक अड़चनें प्रकट न होंगी, जितनी कि शासन-सत्ता के एकरूपता के लाने में। साम्प्रदायिक और धार्मिक दलों के अधिकारों की माँग इस एकता के मार्ग में जबर्दस्त रोड़े हैं। इसके अति-रिक्त सामाजिक, धार्मिक, जातीय, आर्थिक और प्रादेशिक भिन्नताएँ तथा प्रतियोगिताओं के बीच का समान न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व का प्रतिपादन कभी आसानी से सम्भव न होगा। अतः मौलिक अधिकारों के जारी होने में ही सच्चे लोकतन्त्र की परीक्षा है। उसके बाहरी कार्य-कलाप से ही लोकतन्त्र की सफलता नहीं मानी जा सकती।

भारत का राजनीतिक ढाँचा निर्बल आधार पर खड़ा है। प्रत्येक नागरिक के हृदय में लोकतन्त्र में विश्वास की जड़ें नहीं जमी हैं। सम्प्रदाय-वाद, प्रांतीयता और जातिगत भाव जो सब लोकतन्त्रवाद के विनाशक हैं, वे हमारी राजनीति में अब भी बने हुए हैं। इसके सिवाय हमारे

राजनीतिक दलों पर व्यक्तिगत प्रभुत्व है, दल-गत श्रद्धा है, उसमें राष्ट्रीय हित और लोकतन्त्र के सिद्धांतों की कोई चिन्तना नहीं है। फिर हमारा विधान जो आदर्शवाद से परे है और जो एकरूपता का प्रतीक नहीं है, इन प्रवृत्तियों को अधिक प्रोत्साहित करेगा। उसमें प्रभावशाली प्रतिरोध की भावना नहीं है।

इन सब परिस्थितियों में भारत अकेला लोकतन्त्र की परीक्षा के मैदान में खड़ा हुआ है। एशियाई देश उसकी ओर दृष्टि किए हुए हैं। अगले पाँच वर्षों में उसकी राजनीतिक घटनाएँ न केवल उसकी बल्कि समस्त एशिया की भाग्य-निर्णायक होंगी। उससे जहाँ एशिया का राजनीतिक नक्शा बदलेगा वहाँ देशों की आर्थिक कायापलट भी होगी। भारत ने अपने प्रथम निर्वाचन में जो सफलता प्राप्त की, वह लोकतन्त्र की अपूर्व विजय है। पर भारत की राजनीति में लोकतन्त्र की यह विजय अधूरी ही रहेगी, यदि उसे आर्थिक क्षेत्र में सफलता न मिली।

आज भारत को यह सफल कर दिखाना है कि उसका लोकतन्त्र-शासन अपनी समस्याओं को हल करने में कहाँ तक समर्थ हुआ है। इस पर ही उसके वर्तमान राजनीतिक जीवन का अस्तित्व रहना या न रहना निर्भर है। यह प्रश्न उसके जीवन-मरण की समस्या है। उसकी नव-अर्जित स्वतन्त्रता और उसके लोकतन्त्र जीवन की स्थिरता इस बिना पर कायम है कि अगले पांच वर्षों में उसकी लोकतन्त्रीय राजनीति, आर्थिक समस्याओं के हल करने में सफल होगी या नहीं।

लोकतन्त्र-शासन जनसाधारण की जीवन समस्याएँ जितनी शीघ्रता से हल करने में समर्थ होगा उतनी ही अधिक उसकी मजबूत नींव इस देश में पड़ेगी। आज उसकी सफलता इस पर निर्भर है कि वह अन्न का प्रश्न जल्द-से-जल्द हल करे, लाखों और करोड़ों बेरोजगारों को काम-धंधे में लगाए, और आश्रयहीनों को मकानों की व्यवस्था करे। इन समस्याओं की पूर्ति करने पर ही भारत अपने लक्ष्य पर पहुँच सकेगा। लोगों को अन्न वस्त्र और काम चाहिए। यदि इस ओर देश प्रगति कर सका तो यह कहा जा सकेगा

कि भारत की लोकतन्त्रता आर्थिक क्षेत्र में भी सफल हुई। तब यह देश संसार के स्वतन्त्र देशों में लोकतन्त्रवाद का नेतृत्व करने में समर्थ होगा।

भारत अपने राजनीतिक जीवन में लोकतन्त्र का केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से समर्थक नहीं है, बल्कि वह उस के जीवन में समाया हुआ है। उस की लोकतन्त्र भावना देखकर ही साम्यवादी जैसे राजनीतिक दल भी लोकतन्त्रवाद की आवाज़ उठाते हैं। पर भारत लोकतन्त्र राजनीति में अपने ही आदर्श रखता है। वह संसार के समस्त देशों की स्वतन्त्रता में पूर्ण विश्वास रखता है। उस की राजनीति शांति के सन्देश में युद्ध, प्रतिहिंसा और द्वेष की कोई भावना नहीं रखती है। उस की राजनीतिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ समष्टि रूप से हिंसात्मक कृत्यों से पृथक् हैं। उस ने अपने महान् नेता से यह सबक प्राप्त किया कि महान् कार्य की प्राप्ति के लिए हमारे साधन भी महान् चाहिए। संसार में सम्भवतः भारत ही एक अकेला देश है, जिसकी राजनीति में साधन की महानता है और कार्य में कोई गोपनीयता नहीं है।

पर जैसी परिस्थितियाँ हैं उन में यह देश अपने आंतरिक और बाह्य दोनों क्षेत्रों में लोकतन्त्र की सफलता के लिए तलवार की धार पर से गुज़र रहा है। अधिनायकवाद की राजनीति उस का जीवन नहीं है। वह उस का घोर विरोधी है। यदि कदाचित् देश में सोशलिज़्म पनपा तो भी लोकतन्त्रवाद के मौलिक तत्व कायम रहेंगे। सोवियट रूस का नियंत्रित यन्त्रवत् जीवन उसे सह्य नहीं है। वह लोकतन्त्र शासन में भी पश्चिमीय लोकतन्त्रवादी देशों का अनुयायी नहीं है। उसे उन की लोकतन्त्रीय कूटनीतियाँ पसन्द नहीं हैं। वह उन के राजनीतिक छलफरेब, कपट-षड्यन्त्र और प्रतिशोध से सर्वथा परे है, वह विश्व के नव निर्माण के लिए महात्मा गांधी का अमर संदेश रखता है। वह यह भली भाँति जानता है कि आज का मानव सभ्यता की दौड़ में एक ऐसे भयानक स्थल पर पहुँच गया है जैसे इस से पूर्व किसी भी विनाश के काल में नहीं पहुँचा था। आज समस्त संसार संकटग्रस्त है। महान् शक्तिशाली देश, दलित और पिछड़े हुए देश सभी चिन्ताग्रस्त हैं। अपने

अस्तित्व का सबको खतरा है । आज जीवन की सभी अर्हताएँ—नैतिक, भौतिक, धार्मिक और बौद्धिक विदीर्ण और खण्ड-खण्ड हो गई हैं । इसी से पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या, घृणा और अविश्वास की विनाशकारी शक्तियाँ राजनीति में खुलकर खेल रही हैं, उन्होंने युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। आर्थिक और सामाजिक साधन उन्हें दबाने में असमर्थ है । कूटनीतिक हरकतें भी उन पर काबू पाने में समर्थ नहीं हुई हैं ।

मानव समाज को विज्ञान की विनाशकारी शक्तियों के प्रकोपों से मुक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलें । यह माना कि आज संसार उस से बहुत दूर चला गया है, किन्तु हमारी यह सतत चेष्टा हो कि हम उसे अपने मार्ग पर लाएँ। हम अपने प्रयत्न में कोई कमी न करें । यह सच है कि यदि भारत अपने आदर्शों के अनुरूप लोकतन्त्र शासन में सफलता प्राप्त कर सका, तो वह संसार को अपनी ओर मोड़ सकेगा । उस के आदर्श संसार में फैल सकेंगे ।

आज भारत ने संसार में अपना स्वतन्त्र और सम्मानित स्थान अपने आदर्शों के कारण ही प्राप्त किया है । संसार के राजनीतिक प्रांगण में शत्रु और मित्र की परवाह न कर वह निर्भीकतापूर्वक अपनी आवाज़ प्रकट करता है । वह किसी भी देश को अपना शत्रु नहीं मानता है, पर वह सब के साथ मैत्री रखने पर भी उन की अनीति के आगे सर नहीं झुकाता । उसने किसी भी अवस्था में संसार की महाशक्तियों के आगे कभी दीनता और दब्बूपन के भाव नहीं प्रकट किए । अपने राजनीतिक नेतृत्व में उस ने सहयोग प्राप्त करने वालों का भी मुलाहज़ा नहीं किया । विगत चार वर्षों का इतिहास भारत के निर्भीक राजनीतिक नेतृत्व का परिचायक है ।

संसार के देश जो लोकतन्त्रवाद के समर्थक हैं, और दूसरे जो साम्य-वाद—अधिनायकवाद—डिक्टेटरशिप को मानते हैं, उन दोनों के संघर्षों में भारत अकेला खड़ा है । इस दिशा में उसका राजनीतिक नेतृत्व किसी को प्रसन्न नहीं कर सका । पश्चिमीय देश उस की राजनीति के मानदण्ड का मूल्यांकन नहीं कर सके । अमेरिका यह नहीं समझ पाता कि लोकतन्त्रवादी

भारत राष्ट्रसंघ में कम्युनिस्ट चीन का किस प्रकार समर्थन करता है ? कोरिया में कम्युनिस्टों को आक्रान्ता मानने पर भी उस ने अपनी सेनाएँ मित्रराष्ट्रों की सेनाओं के साथ लड़ने के लिए नहीं भेजीं – पर इस गतिविधि में न तो भारत कम्युनिस्ट बना, और न कम्युनिस्ट-विरोधी। अंग्रेजों को भी यह शिकायत है कि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य होने और साम्यवादियों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों का विरोधी होने पर भी उस ने मलाया की ब्रिटिश कार्रवाइयों का सख्त विरोध किया। इस प्रकार अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस आदि भारत से सचेत रहते हैं। आंतरिक दृष्टि से सभी उस से अप्रसन्न हैं, क्योंकि उसने ईरान, ईराक, ट्यूनिशिया, मोरक्को और मिश्र आदि की माँगों का समर्थन किया।

पर लोकतन्त्र भारत की विदेश नीति परिस्थितियों का दर्पण है। वह जिस अवस्था में एशियाई देशों के साथ आगे बढ़ रहा है, उस का उचित मूल्यांकन करना हर किसी के लिए सम्भव नहीं है। भारत की निरपेक्ष-नीति के देश में भी आलोचक हैं। इनका कथन है कि राष्ट्र का बाह्य जीवन उस के आन्तरिक जीवन का प्रतिरूप होता है। आंतरिक निर्बलता तथा दीनता बाह्य जीवन पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती है। कोई भी देश अपने आंतरिक जीवन से बाह्य जीवन का स्वतन्त्र निर्माण नहीं कर सकता। गृहनीति और विदेश-नीति एक ही राजनीति के दो पहलू हैं। पर इतने पर भी अपनी कमजोरियों के होते हुए भारत ने विदेशों के अन्याय के आगे सर नहीं झुकाया।

भारतीय राष्ट्र में लोकतन्त्र के पूर्ण विकास और नवजीवन के सृजन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम पुरातन जीवन की प्रवृत्तियों से संबंध-विच्छेद करने में कोई मोह न करें। हमारा जीवन नए ढाँचे पर निर्माण हो, जिसका एकमात्र लक्ष्य देश का अभ्युदय और हित साधन हो।

हमारा वैदेशिक नेतृत्व भी लोकहित की दृष्टि से हो। विश्वशांति तथा विश्व-बंधुत्व के प्रयास में हम अपने देश का अहित न कर बैठें। ऐसा करना हमारे लिए घातक होगा। हम एक बार आदर्शवाद

में दूसरे के हित में अपने हित का बलिदान भी कर दें, किंतु हम देखेंगे कि वह सहायता पाने वाला देश आगे आने वाले अवसरों पर हमारा साथ न दे सकेगा, क्योंकि उस के अपने स्वार्थ उसे विपरीत मार्ग पर ले जाने के लिए बाध्य करते हैं। इसलिए संसार में युद्ध हो या शांति, भारतीय लोकतंत्र की वैदेशिक नीति स्वदेश के हितों का अपघात करने-वाली न बने। इसी प्रकार हमारे लोकतंत्र का विकास स्वतंत्र आधार पर हो। हमें उसके लिए किसी विदेशी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं है। हम अपनी राजनीति को विदेशी राजनीति का पुच्छल्ला न बनाएँ। मार्क्सवाद हो या और कोई वाद, हम उन के अच्छे तत्त्वों को भले ही ग्रहण करें, किंतु वे लोकतंत्र के एकमात्र आधारभूत न बनें। हमारी राजनीति संसार से स्वतंत्र रहे, उस के निर्माण में हमारी परंपरागत संस्कृति और आध्यात्मिकता आधारभूत हो।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शतरंज पर विदेशी शक्तियों ने भारत को चोट पहुँचाने में कोई कसर न रक्खी। हमारे स्वार्थों को हर बार धक्का पहुँचाया। हमें इस स्थिति में पहुँचाया कि हम अपने लोकतंत्र के आदर्श को कायम न रख सकें। इस से बाहरी मामलों में हमें असफलताएँ ही प्राप्त हुई। अतएव हमारा अब तक का इतिवृत्त हमारी निर्बलताओं का सूचक है। एशिया और मध्यपूर्व में योरुपीय साम्राज्यवादियोंका विरोध करने के कारण राष्ट्रसंघ में अमेरिका और योरुपियन देशों का अपनी समस्याओं के हल में कोई सहयोग प्राप्त न कर सका। उसका गणतंत्रवादी राजनीतिक निर्माण होने पर भी राष्ट्रमंडल की सदस्यता उस के लिए अहितकर एवं अपमान-जनक ही हुई। दक्षिण अफ्रीका तथा अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों की भर्त्सना और अपमान भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान का कारण नहीं बनता है। वे पड़ोसी देश जो कल तक भारत के अंग थे, और जो धर्म तथा संस्कृति की दृष्टि से भारत से भिन्न नहीं हैं, वहाँ भी आज भारतीयों पर मुसीबतें ढाई जा रही हैं। भारत के साथ ब्रह्मदेश और सीलोन का छोटे-बड़े भाई का यह कैसा बंधुत्व है। मलाया में एक ओर भारत के सहयोग से अंग्रेजों ने

गोरखा सेना खड़ी की, दूसरी ओर भारतीय ही फाँसी के तख्तों पर लटकाए गए।

लाल चीन की मित्रता भी भारत से लाभ उठाने तक सीमित है। उस का भी लक्ष्य है कि भारत में साम्यवाद का विस्तार हो। इन्हीं निर्बलताओं के कारण हम अभी तक भारत में लगे हुए साम्राज्यवादी सफ़ेद धब्बों को नहीं मिटा सके, जो हमारी लोकतंत्रता के लिए खतरे हैं। इन सब स्थितियों में दूर के देश ही नहीं, हमारे समीपवर्ती देश भी हम पर हर समय प्रहार करने से बाज़ नहीं आते। वे तमाचे मारते हैं, कठिनाइयाँ खड़ी करते हैं और हमें हर बात में मजबूर करते हैं। पर हम अपने मामलों में भी नाराजगी का इजहार नहीं करते। यदि पाकिस्तान, सीलोन और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों को हमारी शक्ति का भय होता, तो वे क्या कभी हमारा सामना करने का साहस करते, उल्टे थर्रा उठते, काँपते और सोचते कि इस छत्ते में कौन हाथ डाले।

लोकतन्त्र के इस आरंभ-काल में, हमें जहाँ जनता को लोकतंत्रीय परम्पराओं से दीक्षित करना है, वहाँ हमें अपनी सेना का भी उस रूप में निर्माण करना है। एशिया की नई घटनाएँ हमें सचेत करती हैं कि हमारा लोकतंत्र शासन मज़बूत आधार पर खड़ा हो। अतएव सारा भारतीय राष्ट्र पूर्ण संगठित हो, एक प्राणमय हो, और एक ही आवाज़ हो। उस की आवाज़ इतनी तेज़ हो कि शत्रुओं को कंपा देने वाली हो। निरे सौहार्द और सदाशयता से दृढ़ शासन का निर्माण होना संभव नहीं है। हम अपने राष्ट्र में ऐसी प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न करें कि जिस के आगे कोई आँख न उठा सके।

भारत में लोकतंत्र शासन की सफलता और सुरक्षा हमारे जीवन-मरण की विकट समस्या है। हमें अपने अस्तित्व की रक्षा तथा नव-अर्जित स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए ठोस कदम रखकर बढ़ना है। सृष्टि के आरंभ से ही मानव इस ठोस पृथ्वी पर पैर रखकर आकाश की ओर निहारता है। राष्ट्रीय जीवन के मोर्चे के घात-प्रतिघातों में हमें सभी ओर निगाह रखकर आगे बढ़ना है। जब तक मनुष्य मनुष्य है, और जब तक उस के

अन्दर रहनेवाला पशु संस्कारों के प्राचीर को तोड़कर अपने तीखे दांत मानवता की कृश-काया में गड़ाता रहेगा, शांति और समझौतों के आगे सर न झुकानेवालों के आगे पथ प्रदर्शन की आवश्यकता बनी रहेगी।

आज लोकतंत्र-भारत क्या इस दिशा में बढ़ रहा है कि वह पालमिण्टरी शासन-पद्धति को सफल कर दिखाए। भारत का लोकतंत्र शासन परीक्षा की कसौटी पर है। ग्रेट ब्रिटेन ने अपनी लम्बी परम्पराओं के द्वारा लोकतंत्र शासन की नींव मजबूत की। किन्तु इतने पर भी संसार की वर्तमान हलचल में उसकी पार्लमिण्टरी डेमोक्रेसी का भविष्य भी डाँवाडोल स्थिति में है। ग्रेट ब्रिटेन की आंतरिक नीति उसकी विदेश नीति से भिन्न है। यह उस की अपनी व्यावहारिकता है। वहाँ समाजवादी मजदूर दल का शासन हो या अनुदार दल का, वैदेशिक नीति सब की एक है। ग्रेट ब्रिटेन के वैदेशिक अधिकार और स्वार्थ कोई शक्ति नष्ट नहीं करना चाहते। किन्तु अब इसी ग्रेट ब्रिटेन में ऐसा लोकमत जागृत हुआ है, जो मलाया में अंग्रेज़ों के कारनामों को नफ़रत से देखता है, वह पाँच महाराष्ट्रों में समान स्तर पर सच्चा और समान समझौता चाहता है। शांति स्थापन के लिए तोपें और बन्दूकें नहीं, बल्कि अन्न और वस्त्र की आवश्यकता प्रकट करता है। जहाँ ग्रेट ब्रिटेन के अधिकाँश तरुण यह धारणा रखते हैं कि रूस की कूटनीतिक चालें संसार का अपघात करती हैं, वहाँ उन का यह भी कहना है कि पश्चिमीय देश भी शांति का वह वातावरण नहीं पैदा करते हैं, जो पूर्व में भारत और अन्य एशियाई कर रहे हैं। इंग्लैंड के लिबरलों की यह धारणा है कि अतीत-काल के समान वर्तमान पार्लमिण्टरी नियंत्रण न तो उतना क्रियात्मक ही है, और न उतना प्रभावशाली ही। कई व्यवस्थाओं के कारण पार्लमिण्ट की शक्ति अत्यन्त निर्बल पड़ गई है। जहाँ ग्रेट ब्रिटेन के लोकतंत्रीय शासन में क्षीणता आई है, वैधानिक शक्ति का ह्रास हुआ है, वहाँ पिछले काल में ब्रिटिश पार्लमिण्ट का रंगमंच परम्परागत अनुशासन को खो बैठा है, पार्टियों का अखाड़ा बनता जा रहा है, और राष्ट्र की सेवा से दूर सा-हट गया है। जो दो प्रधान राजनीतिक दल हैं, उन्होंने सारे देश को दो खेमों में बाँट रखा

है । आज यह हो रहा है कि प्रत्येक पार्लमिण्ट का बहुत-सा समय उन कामों को मिटाने में लगता है, जिन्हें पिछली पार्लमेण्ट कर आई है । यह सब यह जानते हुए भी हो रहा है कि विरोधी दल के पुनः सत्तारूढ़ होने पर वह पुनः पूर्व स्थिति ला देगा । यह चित्रण उस देश का है, जहाँ की पार्लमेंट को संसार की पार्लमिण्टों की जननी घोषित किया जाता है । किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इंग्लैंड का राजनीतिक जीवन शत प्रतिशत अनुशासनपूर्ण है । जो भी दलबंदियाँ हैं, वे राजनीतिक आधार पर हैं और कोई भी विरोधी दल हो, अवैधानिक कदम नहीं उठाता है । भारत के समान न तो सत्याग्रह की धमकियाँ दी जाती हैं और न हिंसात्मक प्रतिरोध ही । इस दृष्टि से हम देखते हैं कि लोकतंत्र के पथ पर चलना आसान नहीं है ।

लोकतंत्र के वैधानिक शासन में विनाशकारी कार्य और बाहरी प्रतिरोध राष्ट्र की शक्तियों को क्षीण करते हैं । ऐसी अवस्था में पार्लमिण्टरी शासन नहीं पनप पाता । अपने उत्तराधिकारियों के कार्यों को बिना सोचे-समझे एकबारगी मिटा देने के लिए प्रवृत्त होना लोकतंत्र को दफ़नाने के समान है । दलगत नीति के द्वारा विघटन के कार्य लोकतंत्र के जनाज़े में कील गाड़ना है । भारत तो ऐसी ही स्थिति में खड़ा है । उस के दो दिन के लोकतंत्रीय शासन पर आरंभ से ही काले मेघ छा गए हैं । बरसाती मेढ़कों के समान अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण इस देश में लोकतंत्र को बलशाली बनाने की ओर कदम नहीं है । इस में तो लोक-शासन दुर्गति को प्राप्त कर रहा है ।

भारत एक विचित्र मनोवृत्ति का देश है । अनुशासन और नियंत्रित जीवन उस की परंपरा नहीं है । यहाँ जिस कार्य से लाभ हो, प्रतिष्ठा बढ़ती हो, उस पर लोग टूट पड़ते हैं । वे अनुशासन और संयम को त्याग कर अलग-अलग बीसों दल खड़े कर के भयंकर प्रतिद्वन्द्विता करते हैं । इस प्रकार वे राष्ट्र की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर के ही दम लेते हैं । आज देश में यही सब कुछ हो रहा है । ऐसी दयनीय स्थिति में हमारा राष्ट्र किस प्रकार लोकतंत्र शासन को बलशाली बनाने में सफल होगा । समाजवादियों का दावा है कि

वे सत्तारूढ़ होते ही विधान बदल देंगे और कांग्रेस के एक भी कार्य को अवशेष न रखेंगे। कम्युनिस्टों का पार्लमिण्टरी शासन में प्रवेश सैनिक चाल है। अवसर पाते ही वे विधान को मिटाए विना न रहेंगे। भीतर और बाहर सभी ओर से उनकी चेष्टाएँ इसी लक्ष्य से है। वे तोड़-फोड़ के कार्यों का कभी परित्याग नहीं कर सकते। इस देश के शासन में वे बड़ी तेजी से आगे बढ़े हैं। ग्रेट ब्रिटेन की पार्लमिण्ट में अभी तक कम्युनिस्टों का कोई स्थान नहीं है। पर भारत की राजनीति ऐसी ही ढील किए रही, तो कम्युनिस्ट अगले निर्वाचन तक अधिक-से-अधिक सत्ता हस्तगत किए बिना न रहेंगे। एक दिन वे देश को रूस के चरणों में झुका देंगे। ऐसी अवस्था में आनेवाले वर्षों में लोकतंत्र शासन कहाँ तक उन्नति कर सकेगा? वह तो क्षीणकाय रूप में श्वाँस लेते हुए प्रकट होगा।

अमेरिकन डालर इस देश में लोकतंत्रता को कहाँ तक स्थिरता प्रदान करेंगे? उस के समाजवादी प्रोग्राम किसानों को लोकतंत्र की ओर खींच सकेंगे? ये भारत के किसान ही हैं जो पूर्व में लोकतंत्र को कायम रख सकते हैं। उन की समस्याएँ हल करने में, अन्न उत्पादन करने में यह देश कहाँ तक आगे बढ़ता है! भारत की लोकतंत्रता की कड़ी यहीं अटकी हुई है। जो देश यह कामना करते हों कि पूर्व में लोकतंत्रीय व्यवस्था कायम रहे, तो यह उन के अपने हित में है कि वे भारत को पूर्ण सहयोग दें। वैसे तो भारत प्रयत्नशील है कि अपने पैरों पर ही खड़े रहकर, अपनी बुभुक्षित अवस्था में भी लोकतंत्र को जीवित रखे।

भारतीय नेतृवृन्द के लिए यह कठिन परीक्षा की वेला है। उन के ही दृढ़ निश्चय, त्याग और कठोर साधना से भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। यह प्रकट है कि भारत की लोकतंत्रता के लिए खतरे के चिन्ह बढ़ते आ रहे हैं। वे नित नए और पैदा हो रहे हैं। उसकी आंतरिक समस्याएँ दिन-पर-दिन भयंकरता धारण कर रही हैं। चारों ओर से तूफ़ान खड़ा है। हमारी नौका मझधार में है, वह इस पार कि उस पार, यह सब भावी घटनाओं पर निर्भर है। भारत का भाग्य अधर में लटका हुआ है। उस के उत्थान और

पतन में ही अन्य देशों का भी भाग्य जुड़ा हुआ है। यदि वह अपनी समस्याएँ हल न कर सका, तो चीन के समान यहाँ भी नवक्रांति सामने खड़ी है। तब यह नया देश होगा, नए नेता होंगे और नई राजनीति होगी।

३२

हमारे स्वप्नों का मूर्तिमंत रूप !!

आज भारत का यह कैसा आवरण है ! पूर्व का यह महान् देश स्वतंत्र होने पर भी क्लीवता धारण किए हुए है। पर यह वही देश है, जिसे युगों से धनी और निर्धन, संत और असंत, ज्ञानी और अज्ञानी तथा विदेशों से आने वालों ने नित नया रूप दिया। उन्होंने उसे न केवल वैभवशाली बनाया, महान् राष्ट्र में परिणत किया, बल्कि उसे समस्त जगत् का दीप-स्तंभ बनाया। उसने संसार को ज्ञान विज्ञान का प्रकाश दिया। अतः आज उस देश से यदि किसी व्यक्ति का जी ऊबता है, तो यह समझ लेना चाहिए कि वह अपने जीवन से ही ऊब गया है। यदि यह स्थिति विदेशी शासनकाल में मौजूद थी, तो आज वह कितनी है। स्वतंत्रता प्राप्त करने पर आज हमारे सामने नए भारत की रचना का प्रश्न है। हम उसके लिए संकल्पबद्ध हैं। किंतु हम इस दिशा में आशा और निराशाओं के बीच में खड़े हुए हैं। हम यह नहीं जान पाते कि क्या यह समय है, जो हमारे सामने से गुज़रा जा रहा है, अथवा हमारा यह देश है, जो तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा है। कौनसी परिस्थिति हमारे सामने है ?

यह प्रकट है कि अब हम गुलाम नहीं हैं। हमारी दासता का अंत हो गया है। देश से विदेशी शासन चला गया और उसके स्थान पर राष्ट्रीय शासन ने अपना अधिकार किया। पर यह स्थिति हमारे बड़े प्रयत्न से आई है। हमें वे दिन आज भी विस्मरण नहीं हुए हैं, जब यह देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कटघरे में उसी प्रकार बन्द था, जिस प्रकार

हिंसक पशु पिंजरे में बन्द होते हैं। पर इस देश की यह विचित्रता है कि वह अधिक काल तक किसी भी विदेशी सत्ता के आधीन नहीं रहा है। अतः अंग्रेजों के आधिपत्य में भी, उसने तुरंत ही करवट बदली और स्वतंत्रता का युद्ध छेड़ दिया। उसने अपनी साधारण शक्तियों से ब्रिटिश-शक्ति से मोर्चा लिया। उसके इस संघर्ष को देखकर सन् १६०० में लॉर्ड-कर्जन ने भारत मंत्री को यह पत्र लिखा था:—

> **कांग्रेस अपने विनाश के लिए डगमग हो रही है और भारत में रहते मेरी सबसे महान् कामना यह है कि मैं उसकी शांतिपूर्ण मृत्यु होने में सहायता दूं।**

पर राष्ट्रीय-कांग्रेस जिस के पीछे ४० कोटि जनता की शक्ति थी, उसका यह वीभत्स उपहास था। पर हकीकत तो यह है कि ४७ वर्षों के उपरांत उसी राजसत्ता के प्रतिनिधि लॉर्ड माउंटबेटन ने यह कहीं अच्छी तरह से लिखा होता:—

> **भारत में ब्रिटिश राज्य अपने विनाश के लिए डगमगा रहा है, और मेरा महान् कार्य उस की शांतिपूर्ण मृत्यु में सहायता देना है।**

सन् १६४७ में भारत विदेशी शासन से मुक्त हुआ। वह स्वयं ही स्वतंत्र नहीं हुआ, बल्कि उस के साथ साथ उस के नजदीक के देश भी बंधनमुक्त हुए। भारत की स्वतंत्रता ने ब्रह्म देश, सीलोन और इंडोनेशिया आदि देशों को भी आजाद किया। स्वतंत्र भारत ने एशिया के पीड़ित देशों को नव-जागरण का संदेश देने में जरा भी अवसर नहीं खोया। इन देशों को भारत की वाणी नई स्फूर्ति और नई प्रेरणा देने वाली प्रकट हुई। उसने यह घोषित किया कि एशिया और अफ्रीका के सभी देशों में योरोपियनों की उपनिवेशसत्ता का अंत हो, वे सब एक में मिलें, और एक नए जगत् की रचना करने में आगे बढ़ें। भारत के इस संदेश से अटलांटिक और प्रशांत-घेरे के सभी छोटे-बड़े देश उठ खड़े हुए और वे विदेशी शक्तियों से मोर्चा लेने के

लिए बढ़े ।

यह प्रकट है कि भारत की स्वतंत्रता एशियाई देशों की मुक्ति पर आधारित है। अतएव अपनी सुदृढ़ स्थिति के लिए उसका यह नेतृत्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम है । हम देखते हैं कि आज संसार में कोई भी देश सबसे पृथक् रहकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता है । अतः प्रत्येक छोटे-बड़े देश की स्वतंत्रता एक-दूसरे से बंधी हुई है। आज संसार के महाराष्ट्रों को भी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने के लिए सभी देशों के आगे झुकना पड़ रहा है। वे सब यह चाहते हैं कि संसार के अधिक से अधिक देश उनके साथ रहें। न तो अमेरिका की पृथकता रह सकी और न रूस के अकेलेपन की नाकेबंदी ही । इन दोनों ही महादेशों को अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ना पड़ा। दोनों ही देश विश्व में अपने अपने लिए राजनीतिक , आर्थिक और सैनिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए अग्रसर हैं।

भारत एशिया के मध्य-बिंदु में है । आज वह भिन्न-भिन्न शक्तियों से घिरा हुआ है । उसकी यह महत्त्वाकांक्षा है और उसके लिए वह प्रयत्नशील भी है कि पूर्व में न पुराने साम्राज्यवाद टिकने पाएं और न साम्राज्यवादों की नींव पड़े । वह इन दोनों ही स्थितियों का समर्थक नहीं है। पर उसकी यह आकांक्षा कहीं अधिक सफल होती, यदि आज उसका नेतृत्व बलशाली होता । पर अपनी आंतरिक निर्बलता के कारण वह दूसरों से सबल मोर्चा नहीं ले सका। यदि कहीं वह अपनी आज की स्थिति में अधिक तेजोमय और बलवान होता, तो आज एशिया के किसी भी कोने में श्वेत दाग दिखाई न पड़ते ।

यह आंतरिक निर्बलता देश के सामने जबर्दस्त समस्या है । अपनी निर्बल स्थिति में हमारा दूसरे देशों की सहायता करना तो दूर रहा, हम अपनी स्वतंत्रता की भी रक्षा नहीं कर सकते हैं। सोचिए, आज जिस देश के सामने इतनी अधिक समस्याएं मुंह बाए खड़ी हों और जिसकी

स्थिति जर्जर हो गई हो, उसका नेतृत्व क्या अर्थ रखता है ? जब वह अपना ही निर्माण नहीं कर सकता है, तब वह किस प्रकार आगे बढ़ सकता है।

भारत आज अपने का स्वयं विधाता है। वह संसार को शांति और मुक्ति का संदेश देने के अपने चिरकालीन ध्येय में भी सफलता प्राप्त कर सकता है। पर यह कब संभव है ? हम देखते हैं कि यह देश स्वतंत्रता होने पर भी अपने पुराने जीवन के धरातल पर खड़ा हुआ है। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा है। यही कारण है कि उसकी सारी महत्वाकांक्षाएं और आशाएं महान व्याधियों और रोगों से ग्रसित हो गई हैं। उसकी वर्तमान अवस्था इतनी भयावह है कि यह आशंका है कि कहीं दूसरे देश उसकी स्वतंत्रता को न हड़प लें। इस स्थिति का मूलकारण भारत के सामाजिक जीवन में विनाशकारी तत्त्वों का अस्तित्व है। उनका जबतक समूलनाश नहीं होता है, तब तक इस देश का उठना संभव नहीं है। स्वतंत्रता के युद्ध से भी कहीं अधिक भयंकर संघर्ष समाज के आंतरिक तत्त्वों से मोर्चा लेने में है। देश में प्रचलित आर्थिक व्यवस्थाओं और सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों का मिटना आसान नहीं है। उनसे युद्ध छेड़ना बड़ा दुस्तर है। कारण, इसका तात्पर्य यह है कि पैंतीस कोटि जन एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हो जाएं। यह रूप गृह-युद्ध की स्थिति में परिणत होता है।

पर राष्ट्र को तो हर हालत में अपने निर्माण पथ पर अग्रसर होना है, इसके लिए चाहे शांतिपूर्ण परिवर्तन हो या सैनिक-क्रान्ति। इसके बिना हमारी स्वतंत्रता, विश्व में हमारा स्थान और हमारा नव-उत्थान तभी सजीव और साकाररूप ग्रहण कर सकता है, जबकि समाज की रचना का नए सिरे से इतिहास लिखा जाए। देश में वर्ग-विहीन नव लोकतंत्रात्मक समाज का उदय हो, जिस में जन्मजात, धर्म और वर्ग आदि का कोई विभेद न रहे। प्रत्येक नागरिक को अपने विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हों। राष्ट्र में ऐसा नव-वातावरण उपस्थित हो, जिसमें कोई वर्ग किसी दूसरे का शोषण न कर सके। समाज की सारी विषमताएं

लोप हो जाएं। अतः इस महान् कार्य में समस्त युवा-शक्ति का जुट जाना आवश्यक है। अब तक देश को अनेक महापुरुष मिले और उनके नेतृत्व में वह आगे-पीछे चला, किन्तु अब उसे जन-जन का नेतृत्व प्रयोजनीय है। भारत को आज ऐसे बलशाली नेतृत्व की आवश्यकता है, जिसके दर्शन आज नवीन चीन, नवीन ईरान और नवीन मिश्र में हो रहे हैं। कहना न होगा कि इस प्रकार के नेतृत्व के अभाव में ही इस देश की स्वतंत्रता अधूरी रह गई। हमें यह घोषित करना पड़ा कि हमारा युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। अब हमें आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के लिए लड़ना है। इस नए युद्ध की प्रतीक्षा में देश का प्रत्येक व्यक्ति आंख लगाए हुए है। हरएक व्यक्ति आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में विप्लव की कामना करता है।

हम देखते हैं कि चीन हम से बाद में स्वतंत्र हुआ। इतना ही नहीं उसने लड़ते-लड़ते स्वतन्त्रता प्राप्त की। इस देश के समान उसे स्वतंत्रता नहीं मिली। किंतु इतने पर भी इन तीन वर्षों में पचास कोटि की जन-संख्या के इस विशाल देश ने अपने ही पैरों पर खड़े होकर अपना नवनिर्माण किया। उस ने पुराने सड़े-गले शासन और व्यवस्थाओं को मिट्टी में ध्वंस कर जनता के गणशासन को जन्म दिया। इस नए शासन ने सारी चीनी जनता का भाग्य बदल दिया। उसने समाज-विरोधी शक्तियों का निर्मूलन कर—देश से भूख, बीमारी, गरीबी और अज्ञान को मिटाया। उसने अपने ही प्राप्त साधनों से अपना निर्माण किया। उसने अपनी योजनाओं की पूर्ति के लिए संसार की किसी भी शक्ति के आग हाथ नहीं पसारा। इतना ही नहीं, स्वतंत्र होते ही उसने अपनी समस्याओं के हल करने में एक क्षण भी नहीं खोया। इस प्रकार नवीन चीन ने अपने राष्ट्र को सुख-सम्पन्न बनाने के लिए अत्याचार, पीड़न, दुरावस्था के जीवन की काली अंधेरी-रातों का अंत कर दिया।

चीन की स्वतंत्रता और शासन-व्यवस्था नई समाज रचना के साथ प्रकाश में आई। उसने स्वतन्त्र होने पर भारत के समान किंकर्तव्य विमू-

ढ़ता प्रकट नहीं की। चीन के नए नेतृवंद ने अपने आर्थिक और सामाजिक जीवन को एकवारगी बदल दिया। उसकी नई समाज रचना और आर्थिक प्रगति को देखकर सारा संसार चकित हो गया। आज उसने यह विश्वास दिला दिया कि संसार ने इस देश में जिस प्रभात के दर्शन किए थे, उसकी किरणें प्रकाश-हीन नहीं थीं।

चीन ने अपनी समाज-रचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। चीनी कृषक और चीनी मजदूर जमीन और उद्योग धंधों के मालिक बने। इस अवस्था में उनका जीवन ही बदल गया। चीन में पूंजीवाद और सामंतशाही का नाम शेष न रहा। धर्म और संस्कृति के नाम पर समाज को दासता के पाश में जकड़ने वाले बंधन नए चीन में गुज़रे ज़माने के हो गए। नया चीन सभी प्राचीन बंधनों को पार कर गया। इस प्रकार उसके अग्रसर होने से उसके मार्ग के रोड़े हट गए। उसके नवनिर्माण का पथ स्वच्छ हो गया। इस थोड़े से काल में चीनी जनता और चीन का शासन एक दूसरे के प्रतीक बन गए। आज माओ का शासन उस शक्ति को प्राप्त करने में समर्थ हुआ जो जनता के अधिकार में है और जिसे केवल वही प्रदान कर सकती है। आज चीन की जनता अपने देश के राज्यशासन पर न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से, किंतु व्यावहारिक रूप में अपना पूर्ण अधिकार रखती है।

यही कारण है कि चीन के नए शासन ने जनता के सहयोग बल पर समाज में क्रान्तिकारी सुधारों को जन्म देने में सफलता प्राप्त की। चीन में जो नवनिर्माण हुआ, वह बेजोड़ है। आज वहां न तो दलबन्दियां हैं, न राजनीतिक मतभेद और न निराशापूर्ण जीवन की भावनाएं ही हैं। सारा चीन साम्यवादी न होने पर भी उसमें किसी प्रकार की नारेबाजी को कोई स्थान नहीं है। जनता के किसी भी अंग का शासन से कोई विरोध नहीं है। शासन और जनता दोनों अभेद रूप में राष्ट्र की सच्ची हित-कामना से आगे बढ़ते हैं। किसी की ज़रा सी शक्ति भी विरोधी कार्य में नहीं लगती है। इस प्रकार सभी नरनारी महान् देशभक्ति की भावना

से परिपूर्ण होकर राष्ट्र की समस्याओं को हल करके आगे बढ़ते हैं। यही कारण है कि एक युद्ध की ज्वाला बाहर निकलने पर दूसरे युद्ध में कूदने पर भी चीन मजबूत खड़ा है। आज वह आर्थिक क्षेत्र में आत्म-निर्भर ही नहीं है, अपितु वह दूसरे देशों की सहायता करने में अग्रसर है। क्या नया चीन भारत के लिए चुनौती नहीं है।

चीन ही क्यों, वे देश भी, जो गले तक संकटों से फंसे थे, और जिनके पनपने की कोई आशा नहीं थी, वे भी सम्हल गए। कल तक ग्रेट-ब्रिटेन के प्रति यह कहा जाता था कि उसका सूर्य अस्त हो गया। चर्चिल का भी अपने देश के सम्बन्ध में यह सदा कहना है कि वह युद्ध में तो सदा विजयी होता है, किंतु लड़ाइयों में हार जाता है। इस बार भी विश्वव्यापी महायुद्ध में विजय प्राप्त करने पर इंगलैंड को अपने साम्राज्य के अधीनस्थ देशों के आगे हारना पड़ा। भारत, ब्रह्म देश, सीलोन, और फिलस्तीन आदि देश उसके हाथ से निकल गए। किंतु इतने पर भी वह विचलित नहीं हुआ। इतनी लम्बी अवधि तक संसार का कोई भी साम्राज्य कभी जीवित नहीं रहा। किंतु ग्रेटब्रिटेन का दीर्घकाल तक जीवित रहना अंग्रेज जाति के जीवन की विशेषता है। चार नहीं तो तीन शताब्दियों से—वह संसार की महान् शक्ति बना हुआ है। यूनान और रोम भी इतने दीर्घकाल तक जीवित नहीं रहे।

पर चतुर अंग्रेज परिस्थितियों से आंखें नहीं मूंदते हैं। वे नई स्थिति को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं। जब कोई वस्तु उनके हाथ से जा रही है, तब वे ऐसी व्यवस्था करते हैं कि फिर भी वे उसका उपयोग कर सकें। हमने अपने ही देश में उन्हें निर्दयतापूर्वक अत्याचार और शोषण करते हुए देखा है। किंतु जब देखा कि उन्हें भारत छोड़ना पड़ रहा है, तब उन्होंने इस देश में अपने लिए सद्भावना उत्पन्न करने में कमी न होने दी। जो भारतीय उनसे दिन रात संघर्ष करते थे, वे ही उनकी जय जय-कार पुकार उठे। उन्होंने ऐसे उपक्रम से देश को स्वतंत्र किया। हम यह न सोच सके कि लॉर्ड माउंटबेटन द्वारा हमारा कितना हित हो रहा है या

कितना अपघात । हम इतने मदहोश हो गए कि हमने विनाश के विष से डसने वाले को उल्टे गले लगाया। इस कूटनीतिक अंग्रेज ने स्वतंत्रता प्रदान करते समय इस देश का जो आपरेशन किया, वह सदा के लिए एक स्थायी खतरा बन गया । अब कोई क्या कह सकता है कि हमारी इस गलती का कभी परिमार्जन भी होगा ?

महायुद्ध के उपरांत संसार के ८० करोड़ मानवों में से ६० करोड़ मानवों ने स्वतंत्रता प्राप्त की । ग्रेटब्रिटेन के बंधन में इन मानवों की सब से बड़ी संख्या रही । ४० करोड़ की जन-संख्या का देश भारत भी स्वतंत्र हुआ । अतएव इंग्लैण्ड के कब्जे से इतनी मानवशक्ति निकल जाने और युद्ध के परिणामस्वरूप उसके आर्थिक स्रोतों का ह्रास होने से एक समय यह दिखाई देने लगा था कि उस का किसी भी समय दिवाला निकला । किंतु इंग्लैण्ड की लोकतंत्रता का सामाजिक आर्थिक रूप केवल निजी सम्पत्ति तक सीमित नहीं रहा । प्रत्युत वहां का लोकतन्त्र लाखों व्यक्तियों के जीवन और काम पाने के अधिकार का प्रतीक बना । पर जब राष्ट्र की शक्ति पहले तक सीमित रहती है, तो दूसरा अंग विनष्ट हो जाता है । उस अवस्था में लोकतन्त्र पर पक्षाघात लग जाता है । मानव-शक्ति ही सम्पत्ति का स्रोत है । इंग्लैण्ड ने शासनसे प्रतिक्रिया-वादी तत्वों को पृथक् कर जनसाधारण के सहयोग से अपनी स्थिति सुदृढ़ की । परिणाम यह हुआ कि वह फिर शक्तिशाली देश बन गया । जिस स्टर्लिंग-पौण्ड की संसार में पूछ नहीं थी और उसकी स्थिति कुछ अधिक गिर जाती तो इंग्लैण्ड के अवशेष उपनिवेश खत्म हो जाते और वह स्वयं बैठ जाता । पर इंग्लैण्ड ने राष्ट्रमण्डल के देशों के सहयोग से अपने व्यापार और उद्योगधंधों में जो प्रगति की, उसका परिणाम यह हुआ कि आज विश्व में डालर की समता में स्टर्लिंग का भी अभाव हो गया । महान् राष्ट्र संकट में फंसने पर किस प्रकार अपना उद्धार करते हैं, इंग्लैण्ड उसका उदाहरण है । उसने कायरता प्रकट नहीं की । वह तो सबसे बड़ा अपराध है । आज इंग्लैण्ड इस अवस्था में है कि वहां की जनता अपना

वक्ष-स्थल ऊंचा कर यह कहती है कि उसके देश को सदा अमेरिका का मुखापेक्षी न रहना चाहिए। कारण इंग्लैण्ड वासियों ने सभी आपदाओं का सामना कर अपने देश को हर दृष्टि से ऊंचा उठाया। इतना ही नहीं, उन्होंने अमेरिका और रूस के समान युद्ध सामग्री के निर्माण में भी पूर्ण क्षमता प्राप्त की। इंग्लैण्ड का विस्फोटक बम अमेरिका से भी तेज निकला।

जर्मनी और जापान महायुद्ध में मर मिट गए थे। किन्तु आज वे विदेशी नाकेबन्दी में अपने उत्थान में इतने आगे बढ़ गए कि हम स्वतंत्र वातावरण में भी आगे न बढ़ सके। इन देशों का उत्पादन संसार के लिए भारी खतरा बन गया। जर्मनी और जापान में सैनिक प्रगति हो या न हो, किन्तु उनकी औद्योगिक उन्नति ही संसार के देशों के लिए सबसे बड़ा मोर्चा है। पर हमारा देश समस्त साधन रखते हुए भी इस सोच विचार में पड़ा है कि वह किस प्रकार आगे बढ़े।

इसके सिवाय वे देश जो हमसे बहुत पिछड़े हुए थे, हमसे कहीं आगे बढ़ गए। ईरान के अधिनायक डॉक्टर मुसादिक ने उन अंग्रेजों को अपने देश से खदेड़ दिया, जो उसके आर्थिक स्रोत के शोषक थे। वह किसी महाराष्ट्र के सामने नहीं झुका। उसने रूस से भी ईरान का मछली का व्यापार हस्तगत कर लिया। मिश्र ने जो रक्तहीन क्रान्ति कर समाज का शुद्धिकरण किया, वह इस देश के लिए मार्गदर्शक है। आज मिश्र महात्मा-गांधी के पथ पर चला और कहना न होगा कि उसका उसे गर्व है। यदि उसने हिंसा का पथ भी ग्रहण किया होता तो बेजा न होता। कारण, नव-निर्माण में न बढ़ने की कायरता प्रकट करने की अपेक्षा हिंसा कहीं अधिक श्रेयस्कर है। इसलिए महात्मागांधी ने अपने देशवासियों से सदा यह कहा कि कायरता हिंसा से भी बढ़कर अभिशाप है। यदि इस देश का भी शुद्धिकरण होता तो आज हमारा सामाजिक जीवन सर्वथा नवीन आधार पर होता।

पर हमारा चित्रण देखिए। समाज के रगरग में अनीति और

भ्रष्टाचार समाया हुआ है। आज राष्ट्रनिर्माण के लिए धन चाहिए। पर देश के भ्रष्टाचारियों ने करोड़ों और अरबों रुपए की सम्पत्ति विदेशी बैंकों में जमा कर रखी है। कलकत्ते के जूट के उद्योगपति और व्यापारी, बम्बई के वस्त्र उद्योग के उद्योगपति, भ्रष्टाचार से धन जमा करने वाले—चोरबाजारी और आयकर बचाने वाले, तथा नरेश आदि ने, सोना, चांदी, आभूषण, जवाहिरात और अन्य बहुमूल्य पदार्थ भिन्न भिन्न देशों में जमा कर रखे हैं। अकेले स्विटजरलैण्ड में भारतीयों की एक अरब रुपए से अधिक की सम्पत्ति जमा है। भारतीय नरेश विशेष सुविधाओं की छत्र-छाया में अपना सारा धन और बहुमूल्य सम्पत्ति विदेशों में ले गए। दक्षिणी अमेरिका, पूर्वी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, पुर्तगाल, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, अमेरिका और कनाडा तथा मेक्सिको आदि किस देश में भारतीय समाज-द्रोहियों ने अपनी अरबों रुपए की सम्पत्ति बैंकों में जमा कर रखी है। यह धन विदेशी बैंकों में इस रूप में जमा है कि उन पर कोई कार्रवाई नहीं चल सकती है। यह है भारतीय जीवन की नैतिकता, सदाचरण और राष्ट्र के प्रति कर्तव्यपरायणता। संसार में एक भी ऐसा देश है कि जिसे धन की आवश्यकता हो, और वह दूसरों से भीख मांगे और उसकी करोड़ों तथा अरबों की सम्पत्ति बाहर जमा हो। भारतीय जीवन के अधःपतन का यह कैसा निकृष्ट रूप है। यह तो एक उदाहरण-मात्र है। इस देश में प्रचलित भ्रष्टाचार और अनीतिपूर्ण जीवन की इतनी लम्बी सूची है कि जिसका कोई अंत नहीं। इन्हीं विनाश तत्वों ने समाज के वक्ष-स्थल पर उसके अपघात के लिए वीभत्स ब्रिगेड खड़े कर रखे हैं।

हम साम्यवाद से विचलित होते हैं। पर वह तो हमारे सामाजिक जीवन में प्रसार पा गया है। वह कब मिट सकता है। उल्टे हमारी वर्तमान परिस्थितियां उसकी प्रगति का क्षेत्र प्रशस्त कर रही हैं। ऐसी अवस्था में वह कैसे रुक सकता है? आज हमारा देश सामाजिक विप्लव के कांटों के बीच में खड़ा हुआ है। जिन लोगों ने स्वतंत्रता के युद्धकाल में स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के सुखद स्वप्न देखे थे और जो नक्शे खींचे थे, वे ही आज अपने

कर्तव्य से च्युत हो गए। पर राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने अस्तित्व के लिए अब वे अपने कछुए की सी मंद-गति से चल रहे हैं। उसके मुकाबले में दूसरे दल भी आगे बढ़ रहे हैं। पर नव-निर्माण की अपेक्षा उन सब के संघर्ष में राष्ट्र की शक्ति अपव्यय हो रही है। ये सभी तत्व अपने-अपने प्रकाश से समाज की रचना करने के लिए चिंतित हैं। हर एक पक्ष अपने, आदर्श, विश्वास और कार्य पद्धति को सक्रिय-रूप देना चाहता है।

पर समाज की नव-रचना के मार्ग में अनेक बाधाएं उपस्थित हैं। किसानों के संकट, आर्थिक परिस्थितियां, और खाद्य समस्याएं राष्ट्र के सारे अंग को जरा-जीर्ण कर रही हैं। वे सब राष्ट्र में असंतोष, बेचैनी, उपद्रव और विप्लव के कारण-भूत बन रहे हैं। इसके सिवाय दूसरे संकट भी हैं, जिनसे हमारे देश का नक्शा बन व बिगड़ सकता है। आज भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में नए इतिहास की रचना हो रही है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहां क्या हो रहा है, यह हमें कुछ भी विदित नहीं है। इतना ही नहीं, हम में से कोई यह भी नहीं जानता है कि हमारे भाग्य में क्या बदा है।

भारत की समस्याओं के हल के लिए पंचवर्षीय योजना हमारा बहुत ही निर्जीव प्रयत्न है। बिना नवीन आर्थिक-सामाजिक रचना के हम इस दिशा में आगे बढ़ सकेंगे, यह सन्देहजनक है। किसी अंश तक उत्पादन-में वृद्धि हो, कुछ हद तक बेरोजगारी दूर हो, किन्तु उससे नए भारत की रचना होना संभव नहीं है। आज समाज के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपेक्षित है। अतः पंचवर्षीय योजना, रामाजहितकारी कार्य, विदेशी सहा-यता और भेंटें उसे अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुंचाते। अमेरिका हो या रूस——अथवा अन्य विदेशी राष्ट्रों की सहायता हमें उनके जालों में ही डालते हैं। हम चाहे जितने अलग रहने का दावा करें, किंतु वे हमें अपनी ओर झुका ही लेते हैं। इसलिए कोई भी विदेशी राष्ट्र बिना डोरे डाले एक पाई की भी सहायता नहीं देता है। पर विदेशी सहायता के प्राप्त होने पर भी कब यह संभव है कि हमारा देश उन्नति कर सकेगा। हम अपने नक्शे का भारत तभी बना सकेंगे, जब हमारे नव-निर्माण में

पैंतीस कोटि मानव-शक्ति रूपी सम्पत्ति का उपयोग संभव होगा। इसके लिए यह अपेक्षित है कि समाज का शुद्धिकरण हो और नवीन सामाजिक आर्थिक स्तर पर समाज का निर्माण हो । तभी पैंतीस कोटि जन-समुदाय का यह महान् राष्ट्र अपने लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ होगा और अपने सुखद स्वप्न को मूर्तिमंत देख सकेगा।

३३

दस करोड़ अल्पमत की समस्या

मध्यकालीन शताब्दियों में भारत में राजनीतिक एकता, और संगठन का अभाव नजर आता था। किंतु फिर भी उनका अपना महत्व है। वह अंधकाल नहीं था। गुप्त काल में और उस के पूर्व तथा बाद की शताब्दियों में सामाजिक संस्कृति और धार्मिक पुनर्निर्माण अद्भुत प्रगति पर था। उस समय सामाजिक-अर्थता की प्राचीन योजना विकसित होती चली गई। उस का परिणाम यह हुआ कि समाज का रूप बदलता चला गया और उस में पेचीदगियां बढ़ती गयीं।

इस मध्यकालीन युग में देश में अनेक छोटे-बड़े राज्य पैदा हो गए, जिन्होंने यहां मुसलमानों को आने का मार्ग दिया। यद्यपि भारत में मुसलमान विदेशी बन कर आए, किंतु वे विदेशी न रहे। उन्होंने इसे अपना देश बनाया। चंगेज खां, तैमूर लेन, या नादिरशाह के हमले हुए। इस के बाद भी भारत को किन्हीं मुसलिम शासकों के अत्याचार भी सहने पड़े। उस के बाद इस्लाम का इस देश में प्रभाव पड़ा। हिंदुओं के सामाजिक जीवन ने लाखों और करोड़ों व्यक्तियों को मुसलमान बनाया। सीमान्त प्रदेश के पठान मुसलमानों के सिवाय इतर भारत के हिंदू और मुसलमानों का रक्त जुदा नहीं है। भारत के सभी मुसलमान और हिन्दू एक ही रक्त के हैं। मुस्लिम बादशाह इस देश की वैसी ही संतानें थीं, जैसा कि एक साधारण हिंदू था, दोनों एक साथ रहे और एक साथ बढ़े। दोनों की सांस्कृतिक और धार्मिक भावनाओं पर समान प्रभाव पड़ा। वेदांत और सूफी दार्शनिकता के उच्च तत्त्व एक दूसरे के नजदीक आए।

हिंदुत्व और इस्लामियत दोनों के मानने वालों का यह देश आशास्थल बना। मुसलमानों के शासन में भारत इस्लाम की अन्तर्राष्ट्रीयता का अंग बना और अकबर ने एक नई संस्कृति को जन्म दिया। मुस्लिम शासन में ही भारत की साहित्य, संगीत और शिल्पकला आदि का विकास हुआ।

भारत की समृद्धि और उस के वाणिज्य-व्यवसाय ने पश्चिमी जगत् को आकर्षित किया। भारत के बाज़ार की खोज में अमेरिका और वेस्टइंडीज प्रकट हुए। जब यौरोपियनों को भारत के मार्ग का पता लगा, तो अंग्रेज फरांसीसी, डच, और पुर्तगीज सभी व्यवसायी भारतीय बाज़ारों पर अधिकार करने के लिए आए और अन्त में उनका प्रयत्न राजनीतिक सत्ता ग्रहण का हुआ। उस समय मुगल साम्राज्य क्षीण हो गया। मराठा, और सिखों का प्रभुत्व बढ़ा हुआ था। दक्षिण में हैदरअली और निज़ाम के राज्य कायम थे। अंग्रेजों ने अपना व्यापार जमाया, और अपना साम्राज्य स्थापित किया। हमने देखा कि उन्होंने डेढ़-दो सौ वर्षों तक राज्य किया।

दीर्घ काल तक भारतीयों में राष्ट्रीयता अपने असली रूप में विकसित नहीं हुई। वर्तमान रूप में हम राष्ट्रीयता को जिस रूप में समझते हैं, उसका अतीत काल में अभाव था। विक्रमादित्य के काल में भले ही एक राष्ट्रीयता हो, चन्द्रगुप्त और अशोक के काल में भी हो सकती है। किंतु इतने पर भी देश के समस्त लोगों में एक सांस्कृतिक भावना थी। विदेशी शासन काल में भी तीर्थों की यात्राएं इस देश के लोगों में एकरूपता लाने का साधन प्रकट हुईं। उन्होंने सारे देश को एक सूत्र में बांधा और सब ने उसे अपनी मातृभूमि समझा। पर हिंदू मुसलमान के बीच की खाई दो विचारधाराओं के कारण बढ़ती चली गयी। हिंदुओं की मध्य-कालीन सामाजिक भावनाओं ने मुसलमानों को पृथक् रखा। फिर तो दोनों ही जातियों के दो रुख हुए और तीसरी शक्ति के कारनामों से वे कभी एक न हुईं। शासक जाति ने मुसलमानों में जो बीज बोए, उन्होंने अखिल भारतीय राष्ट्रीयता एकता कायम न होने दी।

जब अंग्रेज जाने लगे, तब उन्होंने भारत और पाकिस्तान के रूप में

दो स्वतन्त्र राज्यों की रचना की। उन के सदियों के शासन का प्रवाह जब शुष्क हो गया, तब देश में केवल कीचड़ और मिट्टी के ढेर रह गए; सारा देश पूर्णरूप से विपत्तियों का घर बन गया। अंग्रेजों को भारत छोड़ना अनिवार्य था, क्योंकि उन में और भारतीयों में कोई सामंजस्य नहीं था। अंग्रेज विदेशी बन कर इस देश में आए, और उन्होंने विदेशी के रूप में ही १९० वर्षों तक शासन किया। उन्होंने अपने अभिमान के कारण इस देश को अपनी मातृ-भूमि नहीं बनाया। रंगभेद की अहम्मन्यता उसका कारण हुई, जिसका काम इस देश में जहर फैलाना हुआ। जो कुछ भी सत्य घटना हो, किंतु सन् १९४७ में भारत में ईसाई युग जिस रूप में समाप्त हुआ, वह भारतीय इतिहास का दुर्दशापूर्ण और विषाक्त प्रकरण है।

एक ही मातृभूमि के दो टुकड़े होने पर दो स्वतन्त्र देशों का निर्माण हुआ। खयाल किया गया था कि दोनों देशों की अल्पमत जातियां सुखपूर्वक रहेंगी और दोनों देश सगे भाई के समान एक साथ मिल कर संसार में आगे बढ़ेंगे। पर विभाजन होते ही दोनों राज्यों में आग लग गई। दोनों ओर से लाखों आदमियों का आना जाना शुरू हुआ, यह इतिहास की सब से बड़ी दुःखद और वीभत्स घटना हुई। संसार के किसी भी देश में इतने लोगों का कभी निष्कासन न हुआ होगा। दोनों स्वतन्त्र राज्यों के निर्माण-कर्ताओं को अल्पमतों के जीवन और उन की सम्पत्ति रक्षा की चिन्ता हुई। उन के सामने इन विस्थापितों के बसाने का नया संकट पैदा हुआ।

भारत के अपने नव विधान में अल्पमत जातियों को पूर्ण नागरिकता के अधिकार प्राप्त हुए। इस देश में मुसलमानों को जो अधिकार प्राप्त हैं, किसी हिंदू को उन से अधिक नहीं हैं। ब्रिटिश राज्य में मुसलमान जिस स्वतन्त्रता से रहते थे, उसी स्वतंत्रता से वे आज भी रहते हैं। न्याय, सामाजिक, राजनीतिक विचार, विश्वास, और धर्म की स्वतन्त्रता और समान सुविधाएं इस देश के सब लोगों को एक समान प्राप्त हैं, फिर वह चाहे हिंदू हो या मुसलमान। विधान की ५ वीं धारा सब को नागरिकता के अधिकार प्रदान करती है। मौलिक अधिकारों की २४ और २५ वीं धाराएं समानता के

अधिकार और धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार प्रदान करती हैं। इसके अनन्तर २९ वीं धारा सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का निर्देश करती है। सारांश यह कि भारत ने अपने लिखित विधान में जिस विशद रूप में भारत के नागरिकों के स्वत्वों का निर्देशन किया है, वह संसार में पहला ही उदाहरण है। उसने अपना राज्य शासन का धर्म निरपेक्ष लक्ष्य प्रकट कर किसी भी धर्म और जाति के अनुयायियों के प्रति कोई भेदभाव नहीं रखा है।

किंतु पाकिस्तान में अभी तक विधान की रचना नहीं हो पाई। उसने घोषित किया कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है। उस की व्यवस्था इस्लाम के आदर्शों के आधार पर होगी; इस में अल्पमत जातियों की सुरक्षा का कोई स्थान नहीं है। किसी भी मुसलिम देश का पाकिस्तान के समान साम्प्रदायिक शासन न होगा।

यह प्रकट है कि उत्तरी पाकिस्तान में आज केवल मुसलमान रह गए हैं। सिंध,पंजाब, और सीमान्त प्रदेश से समस्त हिंदुओं का निष्कासन हो गया, जब कि उत्तर भारत में करोड़ों मुसलमान सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उत्तर भारत के जो मुसलमान पाकिस्तान चले गये थे, वे पुनः इस देश में लौट आए। किंतु इसके बाद पूर्व बंगाल में जो करोड़, सवा करोड़ हिंदू थे, उन पर पाकिस्तानी शासकों ने भयंकर अत्याचार किए। उन के पाशविक जुल्मों का अन्त अप्रैल १९५० के नेहरू-लियाकत समझौते से भी नहीं हुआ। पूर्वी बंगाल से हिन्दुओं का उच्छेदन जारी है। अब मुश्किल से सत्तर-अस्सी लाख हिंदू बचे होंगे, किंतु भारत में चार साढ़े चार करोड़ मुसलमान बने हुए हैं। पाकिस्तान पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को घुट घुट कर मार रहा है। क्या यह बेहतर न होगा कि इन हिंदुओं को वापस लेकर बदले में दो करोड़ मुसलमान पाकिस्तान में भेज दिये जाएं। भारत में मसलमानों के रहने से पाकिस्तान के नित नये अड़ंगे, मिथ्या आक्षेप झूठा प्रचार और अनर्गल कार्रवाइयां जारी रहती हैं। इस अदला बदली से इस देश को स्थायी राहत मिलेगी। भारत के मुसलमान भी राहत पाएंगे,

जिन की निगाहें पाकिस्तान की ओर लगी रहती हैं।

पाकिस्तान में ईसाई, पारसी, और बौद्ध आदि अन्य जातियां भी रहती हैं, किंतु उसकी कमान हिंदुओं के विरुद्ध कसी हुई है। भारत में यह निश्चित है कि अल्पमत जातियां सुखपूर्वक जीवित रह सकती हैं। किंतु पाकिस्तान के लिए ऐसी कोई आशा करना दुराशा मात्र है। केवल मौखिक सहानुभूति और राजनीतिक समझौते से काम नहीं चल सकता, जब तक कि उनके पीछे जनता की शक्ति न हो। यह तो पाकिस्तान के मुसलमानों का कार्य है कि वे अल्पमत जातियों के जीवन के साथ खिलवाड़ न करें। यदि उन्हें यह अभीष्ट है कि पूर्वी पाकिस्तान में हिंदू न रहने पाएं, तो उन के शासन की स्पष्ट घोषणा होने में कोई हर्ज नहीं है। दोनों देशों के बीच का ठंडा युद्ध, अत्यन्त अवांछनीय है।

यह तो स्पष्ट है कि पाकिस्तान से सब हिंदुओं को वापस आ जाना पड़े, किंतु हम अपने राष्ट्रीय जीवन में उस के प्रतिगामी नहीं बनना चाहते। भूमि के खयाल से हमें भले ही आजादी की नई अदला बदली करना पड़े। यह दीखता है कि पूर्व बंगाल से हिंदुओं के आ जाने पर पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या उत्तरी पाकिस्तान से कम हो जायगी। हमारा खयाल है कि पाकिस्तान के कर्णधार यही चाहते हैं। उन्हें पूर्वी पाकिस्तान का आधिक्य बर्दाश्त नहीं है। किंतु यह साफ़ है कि जितने हिंदू पूर्वी बंगाल से लौट कर आयेंगे उन के बदले में बंगाल, बिहार और आसाम के मुसलमानों को पाकिस्तान में भेजना अनिवार्य होगा। देश कभी यह सहन न करेगा कि एक तरफ का आगमन हो। इस से बेहतर यह है कि राजकीय व्यवस्था में इन तीनों प्रदेशों के मुसलमान पाकिस्तान भेज दिये जाएं, जिस से पूर्वी बंगाल के हिंदुओं को बसाने के लिए स्थान मिले। पूर्वी बंगाल के हिंदू इस देश से रक्षा पाने के आश्रित हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें भविष्य में एक क्षण के लिए अनिश्चित अवस्था में न रहने दें।

३४

अभावों की पूर्ति की ओर कदम

स्वतन्त्रता प्राप्त कर भारत अपने नवीन इतिहास की रचना की ओर मुड़ा है। दूसरे देश भी अपना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक इतिहास लिखने आगे आए हैं। इस प्रकार अफ्रीका, अरब क्षेत्र के देश, और सुदूरपूर्व के देश अपनी स्वतन्त्रता और नव-उत्थान के लिए उठ खड़े हुए हैं। यह दीखता है कि वे सब संसार का नक्शा बदल देंगे और निकट भविष्य में पूर्व के मानव समाज की काया पलट हो जाएगी। इस दृष्टि से सर्वत्र उथलपुथल मची हुई है, और हर एक राष्ट्र अपने नव-निर्माण के लिए अग्रसर हो रहा है।

भारत के सम्बन्ध में भी यह प्रश्न उठता है कि वह भी क्या अपने करोड़ों मानव का जीवन उन्नत बना सकेगा? क्या वह धन-धान्य से परिपूर्ण बन सकेगा? उसकी सारी योजनाएं कब पूर्णता को प्राप्त होंगी। यह प्रकट है कि स्वतन्त्रता के काल से ही भारत का लक्ष्य निर्माणकारी योजनाओं को अग्रसर करना रहा है। आज से बाईस वर्ष पूर्व हमने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की थी और पिछले चार वर्षों से हम उस स्वतन्त्रता का उपयोग भी कर रहे हैं। हमने अपने देश को सर्वसत्ता सम्पन्न गणतन्त्र राज्य घोषित किया तथा राष्ट्र के लिए नव विधान की रचना की। किंतु इस के साथ एक बार हमने अपनी दृष्टि अतीतकाल पर डाली और फिर आज की स्थिति पर दृष्टिपात किया तथा भविष्य की ओर लक्ष्य किया, और उस से हमें चिन्ता हुई कि क्या इस देश के पैंतीस करोड़ मानव समाज के नव-निर्माण में अग्रसर होंगे?

पर इसका क्या उत्तर दिया जाए ? हमारी जड़ लेखनी ही रुक जाती है। हम अपनी दृष्टि अपने इर्द-गिर्द डालते है। आज क्या हम नहीं देखते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भी हमारा राष्ट्र काँटों के बीच में खड़ा है। हम चारों ओर से संकट तथा विपत्तियों से घिरे हुए हैं। कहाँ तक कहा जाए, जो वायु, जल और अन्न, हमारे जीवन के रक्षण के साधन हैं, वे ही हम से दूर चले गए हैं। क्या कभी यह सोचा गया था कि स्वतन्त्र होने पर यह देश भूखों मरेगा।

अन्य देश स्वतन्त्र होते ही अपने नव-निर्माण में जुट पड़े। उन्हें भी खाद्य का विकट युद्ध लड़ना पड़ा और अपनी ज़बर्दस्त समस्याएं हल करनी पड़ीं। पर हमने स्वतन्त्र होने पर लम्बी-चौड़ी योजनाएं तैयार कीं। खाद्य-मोर्चे पर युद्ध छेड़ा, किंतु वह जिस ढंग से आरम्भ किया गया है, उससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब खत्म होगा। यदि हम कंपते-कंपाते हुए अन्न के प्रश्न पर किसी अंश तक आत्मनिर्भर भी हुए तो यह नहीं कहा जा सकेगा कि हमने इस समस्या को वास्तविक रूप में हल कर लिया है। हम तो यह सोचते हैं कि हम अन्न केवल अपनी आवश्यकता इतनी ही नहीं पैदा करें, बल्कि अपने पड़ोसियों का भी पेट भर सकें। हमारे पड़ोसी चीन और इंडोनेशिया इतना चावल उत्पन्न करना चाहते हैं कि वे हर देश का संकट दूर करने में समर्थ हों। थोड़े काल में ही ये देश खाद्य-उत्पादन में आत्म-निर्भर वाले ही नहीं बन गए हैं, बल्कि संकटग्रस्त देशों की मदद के लिए भी आगे आते हैं। इन देशों को यह भली भांति अनुभव है कि विदेशी अन्न का आयात राष्ट्र की पीठ तोड़ देता है, वह उसे अशक्त और पंगु बना देता है।

भारत तो आज अपनी अस्त-व्यस्त आर्थिक अवस्था में खड़ा हुआ है। उस की नव-निर्माण की योजना के लिए धन चाहिए। उसके लिए राज्य सरकारों का धन जुटाना संदेह जनक है। और इस के सिवाय दूसरे उपाय सामने नज़र नहीं आते हैं। यह एक खयाल है कि लोकतंत्र शासन में राष्ट्र-निर्माण के लिए आर्थिक साधनों का पर्याप्त रूप में जुट सकना संभव

नहीं है। अतएव, पूंजीगत साधनों की कमी की पूर्ति विशाल मानव शक्ति से हो सकती है। अत: मानव शक्ति का उपयोग हमारी रचना का एक मूलभूत प्रश्न है। पर न तो निर्माण योजना और न राष्ट्रीय सरकार ही, राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन करने जा रही है। ऐसी अवस्था में मानव शक्ति का क्रियात्मक होना कब संभव है! उत्पादन के वर्तमान सम्बन्धों में मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग होना संभव नहीं है। लोकतन्त्रता में कोई दोष नहीं है, वह किसी भी अंश में आर्थिक साधनों की प्रगति में बाधक नहीं बनती है। पर संकट तब उपस्थित होता है जब कि निजी सम्पत्ति करोड़ों मानव के जीवित रहने और काम करने के लोकतन्त्र अधिकारों के विरोध का कारणभूत बनती है। जब निजी सम्पत्ति पर सारा ध्यान दिया जाता है, तब स्वभावत: जन-साधारण की उपेक्षा होती है। चाहे कोई देश औद्योगिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो, या अविकसित हो, मानव शक्ति सब के लिए सम्पत्ति के रूप में साधन है। यंत्रीकरण तो मानव श्रम में केवल योग देने वाला है। उस की भी आवश्यकता मानव शक्ति पर निर्भर है। अतएव सम्पत्ति की वृद्धि के लिए मानव शक्ति का उपयोग हर हालत में प्रयोजनीय है।

चीन ने इस मानव शक्ति के द्वारा अपना निर्माण किया। भारत के नव-निर्माण में भी लोगों को काम में लगाने के इस महत प्रश्न की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस दिशा में कुछ लोगों को काम में लगाने का प्रश्न नहीं है, बल्कि देश के एक छोर से दूसरे छोर तक के लाखों और करोड़ों व्यक्तियों को काम धंधे में लगाना है। इसलिए राष्ट्र का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह अपनी योजनाओं में सभी काम कर सकने वाले स्त्री-पुरुषों को, जिन्हें पूरा काम न मिला हो या जो पूरे बेकार हों,—सब को काम-काज में लगाएं। पर हम क्या देखते हैं कि हमारी नई योजनाओं में मशीनों का बेतरह उपयोग बढ़ रहा है। कृषि और उद्योग-धंधे, दोनों क्षेत्रों में मशीनों का उपयोग बढ़ने से बेकारी में उल्टी वृद्धि हो रही है और उधर देश की जनसंख्या बढ़ रही है। अतएव चाहे जिस गणित के हिसाब से उत्पादन बढ़ाने का

प्रयत्न किया जाए, उससे बेकारी का प्रश्न हल होना संभव नहीं है। उत्पादन में वृद्धि से किसी अंश तक बेकारी मिट सकती है, किंतु उस से बढ़ भी सकती है, जब कि हम मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग के लिए आगे बढ़ेंगे। पर केवल उत्पादन बढ़ाने से ही राष्ट्र का सुखद रूप निर्माण नहीं होता है। उपनिवेशों के समान बड़े परिणाम पर उत्पादन हो सकता है। उपनिवेश विदेशों के लिए उत्पादन बढ़ाते हैं और स्वयं विभुक्षित या अर्द्ध-विभुक्षित रहते हैं। उन की क्रय शक्ति इतनी नहीं होती है कि वे ख़रीद सकें।

इसलिए राष्ट्र के नव-निर्माण की आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन और वितरण दो पृथक् कार्य नहीं रहने चाहिएं। जो पदार्थ खपत के लिए उत्पादन हों, उनका वितरण उत्पादकों की क्रय शक्ति के आधार पर पूर्णतः हो। इस के सिवाय राष्ट्र की सारी बचत माल के उत्पादन या संग्रह के विनियोग के बराबर हो। इस अवस्था में संयोजित अर्थ-व्यवस्था में निजी सम्पत्ति की लोकतन्त्रता के लिए कोई स्थान नहीं है। अतएव हमारा प्रधान लक्ष्य यह होना चाहिए कि देश की समस्त शक्ति काम में जुटे, कोई भी व्यक्ति बेकार न रहने पाए, जिस से कि समष्टि रूप से समाज में क्रय शक्ति उत्पन्न हो। अतएव अर्थ और मानव की कार्य शक्ति दो विभिन्न न समझी जाएं। यदि इस में कदाचित् विभेद किया गया तो हमारा लोकतन्त्र शासन राष्ट्र के जीवन के लिए महान् अभिशाप बने बिना न रहेगा। उस अवस्था में देश में दो परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी। एक ओर हमें निर्माण कार्यों के लिए धन जुटाना पड़ेगा तो दूसरी ओर हमें लाखों और करोड़ों व्यक्तियों की आजीविका के लिए साधन खोजने पड़ेंगे। इन अलग-अलग प्रवृत्तियों से राष्ट्र का भव्य निर्माण कब संभव होगा! पर आज तो हम अलग-अलग जा रहे हैं। इस में एकरूपता आना तब तक संभव नहीं है, जब तक कि राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक स्तर का पुनर्निर्माण न हो। देश की लोकतन्त्रता की बुनियाद करोड़ों मनुष्यों के जीवन अधिकार की रक्षा करने वाली न बन जाए।

भारत के नव-निर्माण में यदि सभी राजनीतिक दल अपना सहयोग

साधारण तथा असाधारण मतभेद होते हुए प्रदान करें तो जनता का सहयोग बहुत अधिक प्राप्त हो सकता है। देश के सभी दलों का यह कर्त्तव्य है कि जनता को नव-निर्माण की ओर अग्रसर करें। इस दिशा में उसे आगे बढ़ने से रोकना या राष्ट्र की शक्ति वितण्डावाद में लगाना घोरतम अपराध है। हम तेजी या आहिस्ते से जिस प्रकार राष्ट्र के नव-निर्माण में आगे बढ़ें तो उससे कुछ वर्षों में ही देश की अवस्था बदले बिना न रहेगी। कोई ऐसा प्रयत्न करना कभी उचित न होगा, जिससे राष्ट्र अंततोगत्वा पूर्ण न कर सके। पर इतना तो अवश्य है कि हम अपना एक महान लक्ष्य निर्धारित करें, हम यह बताएं कि इस काल में हम कैसा निर्माण करेंगे और उसके परिणाम-स्वरूप समाज की रचना किस रूप में होगी। इस निर्देशन से ही कोटि-कोटि मानवों में नवीन उत्साह और नवीन प्रेरणाएं उत्पन्न होंगी। आज की स्थिति में जनता स्वगत आगे बढ़ने में समर्थ नहीं है। वह चाहती है कि अशिक्षा, रोग, बेकारी, का देश से उन्मूलन हो। इस दिशा में हम कहां तक आगे बढ़ना चाहते हैं? यह माना कि अशिक्षा और रोग एकबारगी नहीं मिट सकते और न मकानों की समस्या ही पूरी हल हो सकती है, किंतु यदि हमें कोटि-कोटि जनता का सहयोग प्राप्त करना है, तो देश उनके निर्मूलन और अभाव की पूर्ति करने में भारी सफलता प्राप्त कर सकता है। तब यदि मकानों का अभाव रहेगा, तो वह नाममात्र का होगा। तब अशिक्षा और रोग भी चिन्ह-मात्र में रह जाएंगे। मानव शक्ति के उपयोग से ही आसानी से साधारण धन के द्वारा नए-नए मार्ग, घर और सिंचाई के साधन निर्माण हो सकते हैं। पूंजी के अभाव में मानव शक्ति इस प्रकार योजना को सफल बनाने में साधन बन सकती है। भारत में लगी हुई ब्रिटिश पूंजी को जब्त करने में, सैनिक व्यय में भारी कमी करने और प्रशासन व्यय घटाने तथा राज्य संचालित धंधों के मुनाफों के उपयोग करने के सुझावों को अमली रूप देने में साहसपूर्ण कदम रखने की आवश्यकता है। ब्रिटिश पूंजी जब्त करने से देश को स्टर्लिंग पावने से ही हाथ न धोना पड़ेगा, बल्कि उस के लिए राष्ट्रमंडल के देशों के सहयोग से भी वंचित होना पड़ेगा। उस

अवस्था में अमेरिका और संसार के अन्य देश इस दिशा में अपनी नई पूँजी लगाने के लिए आगे न बढ़ेंगे। भारत की अनेक देशों से शत्रुता बढ़ जाएगी। भारत के पास ईरान के समान कोई ऐसा प्राकृतिक साधन नहीं है कि दूसरे देश उस के आगे झुकें। उस का व्यापार और उस की औद्योगिक प्रगति अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग पर निर्भर है। इसी प्रकार अन्य बातें संदिग्ध हैं। अलबत्ता नये करों में नमक-कर लगाया जा सकता है। नमक-कर न लगाना भावुकता की अपेक्षा और कुछ नहीं है। आर्थिक दृष्टि से उस का बहुत कम भार लोगों पर पड़ता है और आय अत्यधिक होती है। मदिरा-निषेध का भी एसा ही प्रश्न हैं। स्टेट लाटरी और प्राइज़ बांडों से भी राज्य की आय बढ़ सकती है। हम नए कर लगाने के भी विरोधी नहीं हैं, किंतु वे प्रगतिशील होने चाहिएं। साम्पत्तिक-कर, पूँजीगत-कर, और कृषि-आय-कर लगाने में साधारण जनता पर कोई बोझ नहीं पड़ता है।

नव-निर्माण के नए नए प्रयत्न जारी हैं। सिंचाई के लिए जल के अभाव को दूर करना सब से बड़ी समस्या है। राष्ट्रीय शासन ने १ करोड़ ६० लाख एकड़ नई ज़मीन को सिंचाई के अन्तर्गत लगाने का प्रयत्न किया है। इस की पूर्ति के लिए नदियों के जल-प्रपात में ट्यूब वेल लगाए गए हैं और नए तालाब तथा कुओं का निर्माण किया गया है। इस के सिवाय १३५ नदी घाटी की योजनाएं निर्माण के मार्ग में हैं। और १२२ नई नदी घाटी योजनाएँ जारी होने जा रही हैं। इन सब में ५ अरब ९० करोड़ रुपये व्यय होंगे। पर इनमें १२ नदी घाटी योजनाएँ इतनी विशाल हैं कि केवल उनके निर्माण में ४ अरब ३९ करोड़ रुपये लग जायँगे। नवीन १२२ नदी योजनाओं में भी १ अरब ३१ करोड़ रुपया अतिरिक्त व्यय होंगे। इन सब योजनाओं से जल के बाँध बाँधने पर ४ करोड़ ३२ लाख एकड़ नई ज़मीन सिंचाई के अन्तर्गत आ जायगी, जिसका परिणाम यह होगा कि १ करोड़ ४० लाख टन अन्न की उत्पत्ति बढ़ जायगी। इससे देश में अन्न का अभाव दूर होगा और राष्ट्र के स्वास्थ्य में भी वृद्धि होगी। जन-साधारण की जीवन-शक्ति का स्तर बढ़ेगा।

पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य प्रधानतः ग्रामों की समस्याएँ हल करने की ओर हैं। अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना सबसे अधिक आवश्यक है। इस दिशा में भिन्न-भिन्न रूप में १३५ योजनाएं हैं, उन सब का लक्ष्य वर्ष प्रति वर्ष अन्न-उत्पादन में वृद्धि करना है। इस प्रकार सन् १९६० तक देश ४ करोड़ तीस लाख टन अधिक अन्न उत्पादन करने में समर्थ होगा। यह देश सन् १९४७ से १९५१ तक ५ अरब ४३ करोड़ रुपये का अन्न विदेशों से आयात कर चुका है और अब भी आयात कर रहा है। अतएव देश जितना धन पिछले समय तक अन्न आयात में व्यय कर चुका है, उतने ही व्यय से नदी घाटी योजनाओं का निर्माण होता है। नई नदी घाटी योजनाओं में ५ अरब ९० करोड़ रुपये व्यय होंगे।

इन योजनाओं से केवल अधिक अन्न ही उत्पन्न न होगा, बल्कि विद्युत शक्ति भी पैदा होगी। नदी घाटी योजनाएँ विविध कार्यों की पूर्ति करने वाली हैं। सिंचाई और विद्युत-उत्पादन की पृथक् और मिश्रित भिन्न-भिन्न योजनाएँ हैं। सम्प्रति देश में विद्युत् का जितना उत्पादन होता है, उसका आधा भाग बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद और कानपुर में खप जाता है। पर इधर कुछ वर्षों से औद्योगिक प्रगति बढ़ने से अन्य नगरों में भी विद्युत का प्रसार बढ़ रहा है। पर नदी घाटी योजनाओं के परिणत होने पर भारत के ग्राम ग्राम में विद्युत् का संचार हो जायगा।

नदी-घाटी की नई योजनाएँ इतनी बड़ी हैं कि कइयों के बाँध विश्व के विशाल बाँधों से मुकाबला करने वाले होंगे। भाखरा-नांगल सतलज के तट पर ६८० फीट ऊँचा बाँध है। यह बाँध ८ मील लम्बा और ९० फीट ऊंचा है। नांगल की नहर पर तीन विशाल विद्युत-गृह होंगे। इस से तीस लाख ६० हजार जमीन में सिंचाई होगी और ४ लाख किलोवाट विद्युत उत्पन्न होगी जिस का उपयोग पंजाब, पटियाला राज्य संघ, दिल्ली और राजस्थान तक कर सकेंगे।

उड़ीसा राज्य का हीराकुड बांध भी अपनी विशालता रखता है। महानदी तट पर इस बांध का निर्माण हुआ है, जिसके द्वारा ११ लाख एकड़

जमीन म सिंचाई हो सकेगी। इस बांध के द्वारा ३० लाख ४० हज़ार टन खाद्य-पदार्थ और ३४ हज़ार टन व्यापारिक पदार्थ—गन्ना और कपास आदि का उत्पादन संभव होगा। विद्युत् की पैदावार भी २४ हज़ार किलोमीटर तक होगी। उड़ीसा भारत का सबसे पिछड़ा हुआ प्रदेश है। पर इस योजना से निर्धन प्रान्त के दिन फिरेंगे और वह सोना बरसाने वाला प्रदेश बन जायगा। आज देश के केन्द्र-केन्द्र में नदी योजनाएं परिणत हो रही हैं, देश की सभी नदियों में जल के बांध बनने जा जा रहे हैं।

इस व्यवस्था से जहां बाढ़ रुकेगी, वहां वर्षा के अभाव से भविष्य में कभी दुष्काल की समस्या उपस्थित न होगी। आज अन्य देशों में जल बरसे या न बरसे, कृषि-उत्पादन में कोई रुकावट नहीं होती है। आज तक जिन नदियों का राष्ट्र के जीवन में कोई उपयोग नहीं था, उनके जल का अब आर्थिक महत्व हो गया है। उस जल का अब मूल्यांकन होगा। कुछ योजनाएं पूरी होने के मार्ग में हैं और अनेकों के पूरी होने में लम्बा समय लगेगा। देश की नदी-घाटी योजनाओं से कई विदेशी राष्ट्र प्रभावित हुए। विश्व बैंक ने अपनी पूंजी विशाल बांधों के निर्माण में लगाई है। हीराकुड, भाखरा-नांगल और दामोदर घाटी के बांधों में ३२५ करोड़ रुपये दस वर्षों में व्यय होंगे।

बिहार और नांगल में सिंचाई तथा विद्युत् उत्पादन के लिए दामोदर घाटी बांध के निर्माण में ७६ करोड़ रुपये व्यय होगा। हीराकुड बांध ९२ करोड़ रुपये और भाखरा के निर्माण में १ अरब ५८ करोड़ रुपये व्यय होंगे। इन बांधों के व्यय का भार अन्त में राज्य सरकारें उठाएंगी। इस प्रकार भाखरा बांध का व्यय, पंजाब, पटियाला राज्य संघ और राजस्थान उठाएगा। दामोदर घाटी का व्यय बिहार और पश्चिमी बंगाल उठायगा। और हीराकुड का सारा व्यय उड़ीसा उठायगा। इस प्रकार सतलज, दामोदर और महानदी के द्वारा ६ करोड़ ५० लाख एकड़ जमीन में नई सिंचाई संभव होगी। हमारी वर्तमान सिंचाई की पद्धतियाँ गए गुजरे जमाने की

हैं और उन में भारी व्यय पड़ता है। किसानों को भी वर्तमान व्यवस्था में अधिक कर चुकाना पड़ता है। जो जमीनें नई सिंचाई में आयँगी, वे अधिकांश में उर्वरा हैं, और उनमें उत्पादन करने के लिए केवल सिंचाई की आवश्यकता है। यदि किसी जमीन में एक फसल होती है, तो सिंचाई की नई व्यवस्था होने पर उस में दो-तीन फसलें हो सकेंगी। भाखरा के बांध से लम्बे रेशे की रुई की उपज हो सकेगी। पंजाब की जमीन में सिंध के समान इज्पशियन काटन उत्पन्न किया जा सकेगा। पाट की फसल दामोदर और हीराकुड बांधों के क्षेत्र में अत्यधिक बढ़ेगी।

नई बांध योजनाओं से २० लाख टन खाद्य पदार्थ और ८ लाख टन रुई का जो उत्पादन बढ़ेगा, उससे देश १५० करोड़ विदेशी मुद्रा की बचत करने में समर्थ होगा। भाखरा के बांध से पूर्वी पंजाब और राजस्थान की भूमि हरी-भरी बनेगी। मरुभूमि के चारों ओर वृक्ष और हरियाली का घेरा होने पर उसका बढ़ता हुआ खतरा रुकेगा। आज तो यह रेगिस्तान बढ़ता चला जा रहा है। इन बांधों से देश भयंकर बाढ़ और अकालों के प्रकोप से रक्षा पायगा। नदियों की बाढ़ से प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की क्षति होती है। सन् १९४३ में दामोदर नदी की बाढ़ से ८ करोड़ रुपये की क्षति हुई थी। महानदी में प्रति वर्ष बाढ़ आती है, जिससे औसत क्षति तीस-चालीस लाख रुपये तक पहुँचती है।

इन बांधों से राज्य सरकारों की आय के नए स्रोत उत्पन्न होंगे। सिंचाई कर, लगान में वृद्धि और सुधार कर के अलावा विद्युत और नए उद्योग-धंधों द्वारा आय के साधन बढ़ेंगे।

पर राष्ट्र के नवीन प्रयत्न यहीं तक सीमित नहीं हैं। यातायात की नवीन योजनाओं में एक अरब रुपए व्यय हो रहे हैं। खाद के उत्पादन का विशाल पैमाने पर उत्पादन आरम्भ किया गया है। सिंदरी का रासायनिक कारखाना एशिया में सबसे बड़ा है। इस के सिवाय इसी स्तर के एक और नए कारखाने की नींव पड़ रही है। खाद का देश में उत्पादन अनाज की वृद्धि का निश्चयात्मक साधन है। सिंचाई और खाद दोनों ही अन्न की पैदावार

बढ़ाने के साधन है। ट्रेक्टरों का उपयोग पड़ती जमीन को उर्वरा बनाने में सहायक हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने भारत को ट्रेक्टर और कृषि ओजारों के लिए ऋण दिया है। इन ट्रेक्टरों से अनेक प्रदेशों में लाखों एकड़ जमीन साफ हो रही है। अकेले मध्य भारत ने कांस वाली २० लाख एकड़ जमीन उर्वरा बनाई।

भारत का लक्ष्य किसानों को हर प्रकार से योग्यतम बनाने की ओर है। यह आवश्यक है कि हर एक किसान खेती के काम में पूर्णतः सुरक्षित हो और उसे सभी नवीन साधन उपलब्ध हों। गहरी जुताई, उपयुक्त खाद, बढ़िया बीज और अच्छी सिंचाई आदि के उपयोग में कोई किसान पीछे न रहे। इन साधनों के उपयोग के सम्बन्ध में किसानों को तैयार करने की आवश्यकता है। अमेरिका ने ग्रामों में इस सुधार-कार्य के लिए कई करोड़ रुपये की धनराशि भारत को प्रदान की है। यह प्रकट ही है कि भारत की सर्वोपरि जनता ग्रामों में बसती है। जब तक उसकी बेकारी तथा दरिद्रता दूर न होगी, तब तक देश से अराजकता न मिटेगी।

भारत की ग्राम योजना वस्तुतः चीन की योजना के आधार पर तैयार की गई है जिसका लक्ष्य लोकतन्त्र की रक्षा करना है। इस देश में लोकतन्त्र तभी स्थिर रह सकता है, जबकि ग्रामों में फैली हुई दरिद्रता, रोग, अशिक्षा और पुरानी पद्धतियाँ दूर न हों। भारत की स्वतन्त्रता उसके सैनिक बल पर कायम नहीं है। बल्कि ग्राम-युद्ध क्षेत्र के गेहूं और चावल के खेत हैं। यहीं से स्वतन्त्रता की गहरी नींव पड़ सकती है। इस दूसरे युद्ध में विजयी होने पर देश शक्तिशाली हो सकेगा। यदि हज़ार वर्षों के उपरान्त हबशी अपने सपनों को पूरा करते हैं, तो हम अपने राष्ट्र का नव-निर्माण भर पूरा न कर सकेंगे? हम क्या चीन, इंडोनेशिया, मिस्र, ईरान और इसराइल से भी पीछे रहेंगे। क्या हम भारत को प्रथम श्रेणी का शक्तिशाली देश न बनाएँगे। यह प्रकट है कि भारत अपने इस ध्येय में विजयी हुआ तो एशिया में उसकी शक्ति का-सा दूसरा कोई देश न होगा।

पर, आज तो भारत की अवस्था पुराने चीन के समान है। परम्परागत

सामाजिक और आर्थिक जीवन के सभी तत्व और व्यवस्थाएँ राष्ट्र के जीवन को ग्रसित किए हुए है। पुराने चीन के ग्राम जिस दुरवस्था में थे, भारतीय ग्रामों की भी वही अवस्था है। इनकी दरिद्रता, बेकारी और निम्न स्तर के जीवन को लक्ष्य कर ही ग्रामीण क्षेत्रों में साम्यवाद ने प्रसार पाया है। किसान ही तो राष्ट्र की शक्ति है। यदि वे अराजक हो गए तो देश में भी कभी शांति स्थिर न रह सकेगी। यह जान कर ही, साम्यवादियों ने ग्रामों में शस्त्र प्रवेश किया है। अतः ग्रामीणों की सजगता, तत्परता और सहयोग पर ही नव-निर्माण की सफलता निर्भर है। यदि किसान उठ खड़े हुए और वे ईंट के बाद ईंट, बीज के बीज और कुएँ के बाद कुआँ खड़ा करने में समर्थ हुए, तो निश्चय ही राष्ट्र अपने कृत संकल्प तक पहुंच सकेगा।

भारत औद्योगीकरण की ओर से भी अचेत नहीं है। विभाजन के उपरान्त उसकी आर्थिक स्थिति का रूप ही बदल गया है। वह अपनी पंचवर्षीय योजना द्वारा कृषि, ग्राम विकास, सिंचाई और विद्युत्, यातायात, सामाजिक सेवाएँ, उद्योग-धंधे और पुनर्निवास आदि में १७४० करोड़ रुपये व्यय कर रहा है। इसके सिवाय २६० करोड़ रुपये ग्रामों के विकास और बुनियादी धंधों में व्यय होंगे। इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है, जिस से बड़े धंधों की प्रगति की ओट मे छोटे धंधों का विकास न रुके। अतः इस निर्माण कार्य द्वारा राष्ट्र 'कल्याण-कारी-सहकारी राज्य' की नींव डाल रहा है। बड़े उद्योगों में —सिंदरी में खाद उत्पादन का कारखाना, मशीन और पुर्जों का कारखाना, टेलिफोन और केबल फैक्टरियां, लोहा और इस्पात का नया कारखाना, जहाजरानी के नये कारखाने और अन्य बीसों संगठन करोड़ों और अरबों रुपयों की पूंजी से खुल रहे हैं। मिट्टी के तेल साफ करने का उद्योग कितना महत्वपूर्ण है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। उसके भी दो कारखाने स्थापित हुए हैं।

उत्पादन में भारत पीछे नहीं है। पाट की उपज में देश प्रायः स्वावलम्बी बन गया है। अब वह पूर्णतः पाकिस्तान पर निर्भर न रहेगा। बांध-योजनाओं के पूर्ण होने पर रुई के उत्पादन में भी देश स्वावलम्बी बन जायगा।

अन्न उत्पादन में देश आत्म-निर्भर होने के मार्ग पर है। वह समस्त नियंत्रणों को समाप्त कर रहा है। इसके सिवाय कपड़ा, चीनी, पाट, हेशियन, चाय, अबरक और अनेक वस्तुओं के निर्यात में एशिया में उसका प्रथम स्थान है। यदि भारतीय उद्योगपतियों ने सस्ता उत्पादन किया, तो यह प्रकट है कि इस देश का कोई मुकाबला न कर सकेगा। पर यह तभी संभव है, जब कि भारतीय उद्योगपति और व्यापारी स्वार्थ त्याग करेंगे।

ग्रामों में छोटे-छोटे धंधे स्थापित करने की ओर कदम बढ़ाया जा रहा है। वस्त्र तैयार करने के छोटे-छोटे कारखाने, घर बनाने की फैक्टरियां, धान, दाल और तेल की फैक्टरियां, कृषि-औजार तैयार करने के कारखाने और अन्य कई प्रकार के संगठन ग्रामों में स्थापित हो रहे हैं। इन सबका निर्माण इस ढंग से हो रहा है कि वे ग्रामों की बेकार मानव-शक्ति को काम देने के साधन बनें। यह प्रकट है कि आज ज़मीन पर बहुत भार है। आज ज़मीन का चाहे जिस रूप में बंटवारा किया जाय वह सब किसानों को नहीं मिल सकती है। अतएव अवशेष किसान और मजदूरों की आजीविका के लिए ये धंधे सहायक होंगे। आवश्यकता है कि ग्राम स्वयं आत्म-निर्भर बनें। सहकारी प्रथा सेइन उद्योगों के संचालन से ग्रामों का जीवन सम्पन्न बनेगा। इससे वे सब लोग काम पायेंगे, जो दिल, दिमाग़ और से परिश्रम कम करना चाहते हैं।

आज का प्रश्न क्या है? हमारा देश अपनी समस्याओं का अनुभव करे। वह निश्चय करे कि उसकी सारी शक्ति नव-निर्माण में लगेगी। समय की माँग है कि हम अपने साधनों द्वारा मनोयोगपूर्वक जुट पड़ें। यह कोई विवाद का अवसर नहीं है। कारण, हमारी उपेक्षामात्र से राष्ट्र का भविष्य अनन्त काल तक के लिए संदिग्ध बन जायगा। तब सिवाय पछताने के क्या होगा? अतः हमारा देश दो टूक पर खड़ा हुआ है। भविष्य अधर में झूल रहा है।

पर आशा की किरणें सामने दिखाई दे रही हैं, जिनसे विश्वास होता है कि भारत का भविष्य महान् और गौरवपूर्ण है। वह अपने ध्येय में विजयी होकर रहेगा।

३५

नई आशाएँ और नए ख़तरे

दो विश्व-व्यापी महायुद्ध हमारे सामने आए। उन्होंने हमें यह सचेत किया कि स्वतन्त्र-देश के सम्पूर्ण आवरण में चाहे वह आन्तरिक हो, या बाह्य, एक प्राणमय सजीव एकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। संकट काल में जागरूकता, समझौते की भावना और सर्वस्व त्याग करने की सदा तत्परता जिस राष्ट्र में विद्यमान होती है, वही अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में भली भांति समर्थ होता है। परिस्थितियाँ यह बताती हैं कि वही राष्ट्र जीवित रहता है जो समय के अनुसार अपना जीवन निर्माण करता है। समय की गतिविधि पर किस राष्ट्र को अपना जीवन नहीं मोड़ना पड़ता। बड़े-बड़े देश झुकने के लिए विवश होते हैं कि वे अपना परिवर्तन करें।

बीसवीं शताब्दी का युग लोकतन्त्र का प्रतीक है। पर उसे भी अपनी व्यवस्थाएं हल करने के लिए नियोजित पथ ग्रहण करना पड़ा। लोकतन्त्र शासन का समूचा ढांचा एक परिवर्तित रूप में ढाला गया। उसके अन्तर्गत सुरक्षात्मक व्यवस्था को सर्वाधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार शासन के अन्य अंगों के लिए भी विशेषज्ञों का प्राधान्य कायम हुआ। उनकी ही मान्यताएं शासन की प्रतीक बनीं। राष्ट्र भी उन्हें मानने के लिए बाध्य हुआ। देखा गया कि आर्थिक अंग का नेतृत्व राष्ट्र की व्यवस्था का सर्वेसर्वा बना। इन व्यवस्थाओं से जनतन्त्रात्मक शासन का कहाँ तक प्रतिनिधि रूप रहा हो, और कहां तक उस में निरंकुशता आई हो तथा एकाधिकार का समावेश हुआ हो, किंतु वे सब प्रयत्न व्यवस्थित शासन के लिए किये

गए। स्वतन्त्र देशों की जनता ने इन नियंत्रणों के विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठाई, प्रत्युत अपने देश के कल्याण के लिए उनका स्वागत किया। लोकतन्त्र शासन शासितों की स्वीकृति पर आधारित है। वह जन-साधारण के प्रतिनिधि से संचालित होता है। जनता का प्रतिनिधित्व केवल शासन में ही नहीं होता प्रत्युत वह उस में हस्तक्षेप करने वाला भी होता है। जनता शासन के अन्यायपूर्ण निर्णयों के विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार रखती है। भारतीय विधान में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है।

भारत के शासन का लक्ष्य 'लोक-कल्याण-कारी सहकारी राज्य' है इस दृष्टि से राष्ट्रीय जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आदि सभी प्रवृत्तियों की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह देश में समाज का ऐसा रूप दे, जिससे कि सबको अपने जीवन-निर्वाह के कोई उपयुक्त साधन प्राप्त हों, कोई बेरोजगार न रहे और प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक के स्वास्थ्य और शक्ति की रक्षा हो। इस लक्ष्य से भारत का लोक-कल्याण राज्य किस हद तक बढ़ा है ? हम देखते हैं कि गांधी जी का रचनात्मक कार्यक्रम उनके जीवन के साथ चला गया। खादी का उत्पादन कथन-मात्र के लिए रह गया। मादक वस्तुओं के उपयोग से देश को निजात दिलाना उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य था। गांधी जी ने शराबबन्दी पर लिखा था:—

यदि मैं एक घंटे के लिए भी भारत का डिक्टेटर बना दिया जाऊँ, तो पहला काम जो मैं करूँ कि मैं बिना कसी मुआवजे के शराब की सभी दूकानें बन्द करा दूँ और कारखानों के मालिकों को मजबूर करूं कि वे मजदूरों के प्रति मानवोचित व्यवहार करें और उनके लिये एक जलपान-गृह खोलें यहाँ वे निर्दोष पेय और पदार्थ प्राप्त कर सकें।

मद्य-निषेध व्यक्तिगत तथा सामाजिक नीति का प्रश्न नहीं है,

बल्कि लोक-कल्याण का है। यदि मद्य-पान मानव जीवन के लिए हानिकारक है, तो उसका परित्याग करना आवश्यक है। मद्य-निषेध से राज्यों को आर्थिक क्षति पहुँचती है। लोगों का कहना है कि जिन राज्यों में मद्य-निषेध योजनाएं जारी हुईं, उनके परिणाम प्रभावोत्पादक नहीं हुए। अतः इस समय इन निषेधों को हटा देना चाहिए, जिन से कि राष्ट्र के निर्माण-कार्यों के लिए आय भी अच्छी हो सके। यह बताया गया कि उत्तर प्रदेश, बम्बई और मद्रास आदि जिन प्रान्तों में न्यूनाधिक या सर्वांश में मद्य निषेध जारी है, उन में अकेले मद्रास को १७ करोड़ रुपये वार्षिक की क्षति होती है और केन्द्र को १०० करोड़ रुपये की क्षति होती है। पर इस पापमय कृत्य से क्या राष्ट्र स्वस्थ और बलवान होता है। जिस साधन से राष्ट्र का विनाश हो, उसकी आय कितनी घातक है। दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था तो यह है कि देश के अनेक तत्व मद्य-निषेध के विरोधी हैं। अन्यथा, राष्ट्र के सम्पूर्ण सहयोग से यदि मद्य-निषेध जारी किया जाय, तो कोई कारण नहीं कि इस देश में इस दुर्गुण का अस्तित्व तक न रहे।

आज राष्ट्र के जीवन में पांच महा दुर्गुण समाए हुए हैं आवश्यकताएं, रोग, अज्ञानता, आलस्य और अनेकताग्रस्त समाज कब लोक-कल्याण शासन के आदर्श पर चल सकता है। इन दुर्गुणों के कारण राष्ट्र और समाज अरक्षित रहता है। किंतु फिर भी भारत इस दिशा में अग्रसर है। जन साधारण की नई भावनाएं बल पा गई हैं। यह प्रकट है कि जो राज्य अपने शासन का ढांचा लोक-कल्याण व्यवस्था के आधार पर निर्माण करता है, उसकी प्रगति अपने राष्ट्र के नव-निर्माण में क्रांतिकारी होती है। भारत इस आदर्श पर चल कर कोटि-कोटि भारतीयों में नई प्रेरणाएं और नई आशाएं उत्पन्न कर सकता है, जिससे कि वे अपने जीवन की समस्याएं हल करने में समर्थ हों। अन्यथा, समाज की वर्तमान अवस्था पशुओं से भी बदतर है। आज इस देश में मानव-जीवन और पशु-जीवन में कोई अन्तर नहीं है।

इस स्थिति में राष्ट्र अपने पुनरुत्थान के लिए भिन्न-भिन्न योजनाओं द्वारा अग्रसर हो रहा है। वह अगले पांच वर्षों में ३५ करोड़ लोगों के

जीवन की समस्याएं हल करना चाहता है। यदि हमारी योजनाएं सफल हुईं तो देश अराजकता से बच सकता है। कार्य बड़ा महान् और दुस्तर है और सामने संकट के बड़े पहाड़ खड़े हैं। यदि पैंतीस कोटि जनता कमर कस ले और कार्यक्षेत्र में उतर आए, तो वह दिन दूर न होगा, जब यह देश महान् बन कर संसार में अपना मस्तक ऊँचा कर सकेगा। तब हमारी स्वतन्त्र ता की नींव ही मज़बूत न होगी, अपितु हमारा भविष्य भी महान् बनेगा।

हमारा देश अपने नव-जीवन के प्रथम चरण में प्रवेश कर रहा है। यह समय कठिन परीक्षा का है। यही अवसर है जबकि उसे अपने आदर्श और सिद्धान्तों को सफल कर दखाना है। आज देश का अगला कदम तलवार की धार पर चलने के समान है। राष्ट्र का जीवन बाज़ी पर लगा है। जीवन-मरण का संघर्ष उपस्थित है।

पर इस घड़ी में भी हमारे जीवन की क्या गति है। समष्टिगत जीवन की महान् विशेषताओं का दुर्लक्ष कर आज भी जन-जन पृथक् खड़ा हुआ है। स्वाधीनता के पूर्व के स्वप्न खिलते ही मुर्झा गए, झुलस गए,। हमारे आदर्श और हमारे संकल्प अंकुरित होते ही ठिठुर गए। जीवन के संघर्ष का हमने वह रूप खो दिया, जो हमने राष्ट्र पिता से वरदान में प्राप्त किया था। किस प्रकार हमारा अधःपतन हुआ कि हम उस महामानव को ही भूल बैठे। हमारे जिन बापू ने अपने तीस वर्ष की कठोर साधना से इस देश को जो नव-जीवन प्रदान किया था, जो मार्ग बताया था, हम उससे भटक गए। जिन आदर्शों और सिद्धान्तों पर हम नवभारत की रचना करने के लिए कृत-संकल्प हुए थे, स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर हम इतने मदहोश हो गए कि हमने यह नहीं सोचा कि हमारी स्वार्थ-परायणता और निजी उदर-पूर्ति हमें और हमारे राष्ट्र को कहाँ ले जायगी। हम ने बड़ी निर्लज्जता से अपने कर्तव्य की ओर से मुँह मोड़ लिया। यही कारण है कि व्यक्तिगत स्वार्थ और वैभव-लिप्सा में उस महात्मा के बताए हुए क्रांतिकारी जीवन को दफ़ना दिया। हम अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो गए। स्वतन्त्रता के प्रथम चरण में ही हमारा

अधःपतन, विशृंखलता और शक्ति का ह्रास यह प्रकट करता है कि सारा राष्ट्र पक्षाघात से पीड़ित है ।

आज राष्ट्र किस पथ पर चले, राष्ट्र क्या चिन्त ना करे, जबकि उसके राजनीतिक जीवन का हाट व मेला सा लगा हुआ है । राजनीति के बाजार में सभी दल अपना-अपना राग अलाप रहे हैं, राष्ट्र में शत प्रतिशत अनुशासन हीनता और अनर्गलता समा गई है । एक दल उत्तरी ध्रुव को जाता है तो दूसरा दक्षिणी ध्रुव को । किसी में जरा भी सामंजस्य नहीं है । सबके बेसुरे रागों से देश गूंज उठा है । ऐसी स्थिति में किस ओर राष्ट्र जाय ? किसी एक दिशा में सारा राष्ट्र एक दिल से आगे बढ़ने में असमर्थ हो गया है । इससे बाहर और भीतर के सभी दुर्गुण राष्ट्र के रोम-रोम में समा गए हैं । आज देश के पल्ले गति-अवरोधता, अनेकता और विग्रह आदि पड़े हैं । इस स्थिति में सारा राष्ट्र कब सक्रियता धारण कर सकता है ! आज सारा राष्ट्र निष्क्रिय हो गया है । नैतिकता तो उसके जीवन में रही ही नहीं है । एक काल था, जब देश की पृष्ठ भूमि आध्यात्मिक थी, लोग पाप, अनीति और स्वार्थपूर्ण आचरण से भय खाते थे, उसका आज यह पतन है ! ! संसार में आज कोई भी ऐसा देश हो, जिसका इतना नैतिक पतन हुआ हो । राष्ट्र आज गल रहा है, छीज रहा है ।

इस स्थिति में यह कभी संभव नहीं है कि राष्ट्र के जीवन में स्वस्थ गतिशीलता उत्पन्न हो । जब जीवन में उदात्त भावनाएँ ही नहीं रहीं, तब यह कब संभव है कि वह सृजनात्मक विकास की ओर मुड़े । अनीतिपूर्ण और पथभ्रष्ट जीवन निर्माण और रचनात्मक कार्यों में कब जुट सकता है । असंगठित और निर्बल समाज कभी तेजस्विता धारण नहीं कर सकता, आज उसकी शक्ति का विभाजन उस सरिता के समान विभक्त हो गया है । जो ऊँचे टीले पर से बह कर अनेक धाराओं में बट गई हो ।

आज यह समस्या उपस्थित है कि देश में किस दल का नेतृत्व हो ? हम किस राजनीति को अपनायें । गांधीवाद, फासिज्म, समाजवाद और साम्यवाद सभी मस्तक उठायें हुए हैं । ये तो राष्ट्र के मस्तक पर सवार

ही हैं, किन्तु इनके अलावा धर्म और साम्प्रदायिकता हमारे ऊपर लदे हैं। यह कैसा दृश्य है! सब देश को अपनी-अपनी ओर ले जाना चाहते हैं। एकता, संगठन और राष्ट्र-निर्माण का सब नारा लगाते हैं। किन्तु ध्रुव-सा निश्चित मार्ग दिखाने में सभी असमर्थ हैं। जिस बल से हम रक्षा पाते, आगे बढ़ते, और शक्ति अर्जन करते, जब वही चूर-चूर हो रहा है, तब हम पर मानो वज्राघात ही पड़ता है। इन नाजुक घड़ियों में भी राजनीतिक वादों को भूलकर क्या पैंतीस-कोटि नर-नारी एक हृदय और एक संकल्प से राष्ट्र-निर्माण में न जुटेंगे! यदि इस मौके पर भी हम में चेतना न आई, और हम जहाँ के तहाँ ही खड़े रहे, तो निश्चय ही हमारा देश अन्धकार के गर्त में पड़ जायगा। उस अवस्था में भी राष्ट्र की कैसी वीभत्स अवस्था हो जाएगी, वह कहा ही नहीं जा सकता।

आज हममें चेतना और अनुभूति होने की मांग है, जिससे कि हम एक जीवित राष्ट्र के समान अनेक झंझावात और संकटों को पार करते हुए आगे बढ़ें। एक बार यदि सारा राष्ट्र अपने पैरों पर खड़ा हो जाए, अपनी आज की समस्याएँ हल कर ले, स्वतन्त्रता की नींव को मज़बूत कर दे, तो फिर उसके उपरान्त हमारे सन्मुख पर्याप्त अवसर होगा कि तब हम सोचें-विचारें कि हम किस राजनीति की ओर बढ़ें। उस समय हम अनेक नई समस्याएं हल कर सकते हैं। अनेक जोखिमें उठा सकते हैं। आज एक-दो प्रदेशों में नए निर्माण की बात है, किन्तु तब हम सारे देश का ढांचा बदल सकते हैं। उस समय हम पर कोई आंच न आयगी।

पर यदि आज हम बदकिस्मती से विनाशकारी भावनाओं की जद्दो-जहद, सत्याग्रह, हड़ताल, तोड़-फोड़, हिंसा और नित नई समस्याएँ और नए संकट खड़े करने में अपनी शक्ति लगायँगे, तो उसका परिणाम यही होगा कि राष्ट्र ग्रह-युद्ध का केन्द्र बन जायगा। भारत-भूमि रक्त-रंजित हो जाएगी, खूंरेजी होगी और तब यह कोई ग़ैर-मुमकिन नहीं है कि हम फिर परमुखापेक्षी न बन जायँ। हमारी स्वाधीनता का अपहरण हो जाय। हमें स्मरण रहे कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने की अपेक्षा स्वतन्त्रता की रक्षा

कहीं अधिक दुस्तर है। राष्ट्र असंगठित होने पर शक्तिशाली नहीं रहता। वह दिन पर दिन मृतप्राय: होता जाता है। पर आज हम कैसी भी निर्बल अवस्था में हों, किन्तु यदि हम एक साथ खड़े हों तो हम अपने शत्रुओं के लिए अभेद्य दीवार खड़ी कर सकते हैं।

हम कहाँ खड़े हैं। हम अपने देश का नव-निर्माण करने की कामना करते हैं। हमने योजनाएं तैयार की हैं और आगे बढ़ने के अवसर पर हैं। पर क्या हम असंगठित अवस्था में बढ़ सकेंगे। पिछले दिनों दूसरे देश क्या हमारी तरह आगे बढ़े हैं। सभी देश एक सूत्र में ग्रथित होकर आगे बढ़ सके हैं। इस लिए हमारा नव-निर्माण तभी संभव है कि जब हम एक साथ खड़े हों। तभी हम अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेंगे और अपना अभ्युत्थान कर सकेंगे तथा संसार का भी नेतृत्व कर सकेंगे, जिसकी ओर कि सारे संसार की निगाह लगी हुई है। हमारे उत्थान में ही संसार का कल्याण निहित है। पूर्व हमारी ओर दृष्टिपात किये हुए है। आज हमारी इस क्षीण अवस्था में हमने विदेशों में जो स्थान प्राप्त किया है, उससे संसार के राष्ट्र हमारा आह्वान करते हैं कि हम उनकी समस्याएँ हल करने में योग दें। बड़े राष्ट्र की जिच दूर करने, कोरिया तथा मिश्र आदि के मामलों में भारत के नेतृत्व की मांग होना कुछ कम गौरव की बात नहीं है। पर यह स्थिति तभी कायम रह सकती है कि हम अपनी आंतरिक अवस्था शक्तिशाली बनाने में पूर्ण समर्थ हों। संसार को यह न दिखाई दे कि हम अलग-अलग खड़े हुए हैं। इस समय हमें देश विदेश के जो भी साधन उपलब्ध हों, जो भी शक्तियां प्राप्त हों, उन्हें राष्ट्र के निर्माण में लगा दें।

हम संसार को क्या कहना चाहते हैं? पूर्व नहीं, पश्चिम के लिए भी भारत एक अकेला देश है जो राष्ट्र के पिता के नेतृत्व में इस प्रकार निर्माण हुआ है कि वह पीड़ित मानवता के लिए संदेश रखता है। वह संसार को नए मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकता है, अतएव हमारी आन्तरिक समस्याएं ऐसी नहीं हैं कि जिन्हें हम हल न कर सकें। जिस दिन हम एक होकर खड़े हो जायेंगे, और अपनी सारी शक्ति उनके हल में

लगा देंगे, तो हमें अपने लक्ष्य पर पहुँचने में विलम्ब न लगेगा। जिस दिन हमने अपने नव-निर्माण में सफलता प्राप्त कर ली, उस दिन सारा संसार हमारी ओर देखता रह जायगा। हम एक क्षण के लिये सोचे कि जिस राष्ट्र में संगठन है, जीवन है, एकता है, वही विजयी होता है, वही संसार के युद्ध में कामयाब होता है। किंतु असंगठित, प्राणहीन और निर्बल राष्ट्र कभी नहीं उठते और उन की संसार में कोई पूछ नहीं होती। अतएव यदि हम इतनी शक्ति अर्जित कर लें कि हमारी आवाज़ से विश्व की राजनीति दहल उठे, तो उस समय कौन ऐसा देश होगा जो भारतीयों का किसी भी स्थान पर मानमर्दन करने का दु:साहस करेगा।

उन्नत राष्ट्र की प्रजा अपने राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का खयाल करती है। वह अपनी राष्ट्र की प्रगति में किसी प्रकार के रोड़े नहीं डालती। इस से बढ़ कर क्या देशद्रोह हो सकता है। जिस देश के निर्माण में विघटन हों, षड्यंत्रों की वृद्धि हो और पग-पग पर संकट किये जायँ, वह कभी नहीं उठ सकता। दलबन्दियों के बीच में कोई भी शासन राष्ट्र का उत्थान करने में समर्थ नहीं हो सकता है।

लोकतन्त्र में किसी दल का शासन बदलने का प्रजा को अधिकार प्राप्त है। पर इस के लिए देश में शीतयुद्ध जारी न हो, जिस से कि उस की अवस्था सदा अनिश्चित-सी बनी रहे और राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध हो जाय। कारण, निरन्तर के शासन-परिवर्तन से देश इतना निर्बल हो जाता है कि उस में आए दिन क्रांतियां होती रहती हैं। उस अवस्था में कोई भी शासन स्थायित्व ग्रहण नहीं कर पाता है। योरप में फ्रांस प्रत्यक्ष उदाहरण है, यद्यपि वह इस देश से कहीं अधिक शक्तिशाली और उन्नत है।

शासन और प्रजा—दोनों का ही राष्ट्र के प्रति समान कर्त्तव्य और समान जिम्मेदारियां हैं। प्रजा के सच्चे सहयोग पर शासन उन्नत और शक्तिशाली बनता है। उस की प्रगति पर ही राष्ट्र की सुख-समृद्धि निर्भर है। जिस देश के लोग अपने राष्ट्र के लिए जीवन उत्सर्ग करते हैं, उसके लिए जीते मरते हैं, उसका सच्चा गौरव और अभिमान करते हैं, उसके

उत्थान के लिए निजी तथा दलगत मतभेदों को भुलाकर एक पंक्ति में खड़े होते हैं, वे ही उसे ऊँचा उठाते हैं, उसे बलशाली बनाते हैं। किंतु जिस राष्ट्र के लोग स्वार्थ और विषमताओं की खाइयों में गिरते हैं, वे उसे कभी ऊपर नहीं उठा पाते। स्वतन्त्रता उन्नत राष्ट्र में ही अठखेलियां करती है, वही सुख और वैभव का अगार बनता है।

देश के उत्थान और नव-निर्माण के मार्ग में राष्ट्र की एकता सर्वोपरि है। जब हम उसे उपलब्ध कर सकें, तब यह समझा जा सकता है कि देश में राष्ट्रीयता का वास्तविक विकास हुआ है। इस के अभाव में समाज का जीवन पशु-पक्षियों से भी गया-बीता होता है। हम क्या उन के समान आत्म-त्याग कर सकते हैं? पक्षीगण जिस वृक्ष पर निवास करते थे, उसमें आग लगने से सब पत्ते वगैरह जलने लगे, किंतु उस पर फिर भी बैठे रहे। उन से पूछा गया कि वे क्यों नहीं उड़ जाते हैं, उनके तो पर हैं? किस लिए वृक्ष के साथ अपना जीवन स्वाहा करते हैं? किंतु उन पक्षियों ने उत्तर दिया कि इस वृक्ष के हमने फल खाये हैं, हमारा बीट इसके पत्तों में लिपटा है इसलिए अपने आश्रय-दाता की इस अवस्था में उड़ना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। हम भी वृक्ष के साथ खाक हो जायँगे। पर आज यह कहाँ भावना है कि हम भी पक्षियों के समान अपना जीवन अपने देश के लिए, अपने राष्ट्र के लिए, अपने समाज के लिए उत्सर्ग करें।

हम तो मानसिक हीनता के भावों में तिरोहित हैं। उन्हीं में हम पल रहे हैं और उन्हीं में हम बढ़ रहे हैं। अपने स्वार्थों के लिए हम चाहे जो कृत्य करते हैं और चाहे जिधर योग देते हैं और चाहे जो नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। हमारा कोई ध्येय नहीं है, कोई हमारा संकल्प नहीं है, और न कोई लक्ष्य है। हम परिस्थितियों का निर्माण करने वाले नहीं रहे, उल्टे उन के दास बन गये हैं। हम ऐसे साँचों में ढल रहे हैं कि हमारे विघटन की खाई अधिक गहरी और अधिक चौड़ी होती चली जा रही है। ऐसी अवस्था में हम अपनी नव-वरण स्वतन्त्रता का क्या उपयोग कर सकेंगे और क्या युग के संदेशवाहक बनेंगे! ऐसे निर्बल राष्ट्र में क्या स्पंदन होगा!

हमारी स्वतन्त्रता के काल का यह नवीन प्रभात है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम सभी विकृतियों और संकीर्णताओं को मिटा दें। राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के सचेत होने की आवश्यकता है। उस के ही स्कन्धों पर महान् कर्त्तव्य का भार है। वह इस संकट-काल में हलाहल का पान कर नव प्राप्त स्वतन्त्रता को शक्तिशाली बनाये। भारत के भविष्य की सुरक्षा उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा और संसार के मध्य में उस के गौरवपूर्ण स्थान की प्राप्ति के लिए राष्ट्र का पूर्ण सजग होना प्रयोजनीय है। क्रांति के नवीन पथ पर राष्ट्र एकसाथ अग्रसर हो। आज जन-जन के सक्रिय होने की आवश्यकता है। सबका समान कर्त्तव्य है कि अपने इस देश को वर्तमान स्थिति से हर उपाय से ऊँचा उठायें। यह स्थिति गवारा नहीं है। यदि इस से उद्धार पाने के लिये हिंसापूर्ण क्रांति भी अपेक्षित हो, तो वह कहीं अधिक श्रेष्ठतम होगी। यह प्रकट है कि देश इस समय हिंसा एवं अहिंसा के सीमान्त पर खड़ा है। यदि शान्तिपूर्ण मार्ग से राष्ट्र का नव-निर्माण-संभव न हुआ तो हिंसापूर्ण क्रांति का मार्ग रह जायगा। तब प्रश्न यह है कि क्या प्रत्येक जन भारत की शाश्वत कीर्ति और अभ्युदय के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए कटिबद्ध होगा? यह उसके ही हाथ में है कि स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि हो और राष्ट्र अजेय शक्ति प्राप्त करे।